—जैनेन्द्रकुमार

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकरका ८४ वाँ ग्रन्थ

एक रात
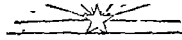
उच्च-कोटिकी १९ मौलिक कहानियाँ

लेखक

बाबू जैनेन्द्रकुमार

प्रकाशक

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय

जुलाई, १९३५

मूल्य सवा रुपया

सजिल्दका १।।।)

प्रस्तावना

कहानी आजकल साहित्यका सर्वमान्य रूप है। जो तत्त्व देना हो उसे व्यावहारिक, जीवित रूप दे सकिए तो ठीक। तब आपके उस तत्त्वको लोग सुनेंगे, समझेंगे, सराहेंगे। मात्र शुष्क तत्त्व ही यदि आप देते हैं तो वह चाहे कितना गम्भीर हो, कितना भी सूक्ष्म और तथ्यात्मक हो, लोग उसे न लेंगे। ऐसे सभावना यही होगी कि वह बहुधा नाकारा ही रह जाएगा।

जमाना भी ऐसा आगया है कि लोगोको मनन और अध्ययनकी फुरसत नही है। अपने अपने काममे सबको रहना होता है। अपने लिए रोटी-कपड़ा पा लेना ही अधिकाशके साथ अपने आपमे सदा एक सवाल बना रहता है। फिर भी सत्यकी तो हर किसीको ज़रूरत ही है। वह सत्य व्यस्त और अनुत्सुक लोगोको कैसे दिया जाय कि उन्हें अङ्गीकृत हो, जिसमे उन्हे रस हो, दिलचस्पी हो? यह प्रश्न विचारकके सम्मुख आता है।

दार्शनिक तत्त्वके रूपमे सत्य अत्यन्त गरिष्ठ है। उस रूपमे वह सत्य अपरीक्षित भी है। वह अधिकाशके लिए अग्राह्य है। उसको दृष्टान्तगत, चित्रगत और कथारूपमे परिवर्तित करो, तभी वह रुचिकर और कार्यकारी बनता है।

ज्यो-ज्यो जीवन विषम होता गया और सामाजिकता बढ़ती गई, त्यो त्यो इस बातकी आवश्यकता व्यक्त होती गई कि शास्त्रीय सत्योंको व्यवहार्य तथ्य बनाया जावे। त्यो-ही-त्यो कथाकी मान्यता और उपादेयता बढती गई। उसीके साथ साथ, स्वभावतः, कथाकी जिम्मेदारी भी बढती गई। पहले कथा कल्पना-प्रधान होती थी और लोगोका जीबहलाव करती थी। धीरे धीरे उस कथाके शरीरमे अधिक प्राण डाला जाने लगा। उसमे मनुष्यने अपनी आकाक्षाये और अपनी समस्याये भी उडेल देनी चाही। कथाके शरीरके गढनेमें आलोचना और विवेचना भी दरकार होने लगी। कहानीसे आशा की जाने लगी कि वह जीवनके भेदोंपर भी प्रकाश डाले, और उलझनोको सुलझाए।

शास्त्रने तो कह दिया—'सत्य वद'। लेकिन असली जिन्दगीमे 'सत्य वद' सीधी साधी चीज़ नही रह जाती। 'सत्य वद' पर जब चलना आरम्भ करते हैं, तो पेचपर पेच पैदा होते हैं।

उस सीधे साधे कथनमे शकाये निकलती ही जाती हैं। तब आदमी कहता है, शास्त्रका 'सत्य वद' हमको मत दो। दुनियाको सामने रख-कर दृष्टान्तसे हमे दिखलाओ 'सत्य वद' क्या है? कैसे वह टिकता है?

निःसदेह मनुष्यकी यह मॉग ठीक ही है। सत्य किताबी रहकर तो निर्जीव रहता है। दुनियाकी कसौटीपर वह कसकर देखा जाए तब तो उसके खरेपनका पता चले।

इस तरह कथा जनमी, बढी और आज साहित्यके क्षेत्रमे सर्वाधिक स्वीकृत एव मान्य हुई।

कथा कही जाती रही, सुनी जाती रही। लिखी जाकर फिर वही सग्रहीत हुई और साहित्य बन गई। जहॉ हुआ उसने इतिहासका, वास्तवका आधार ले लिया, नही तो कल्पनाके और हृद्गत अनुभूतिके बलपर ही वह खडी हो गई। बहरहाल कथा जीवनके साथ अनिवार्य बनी चलती गई। कथाको नाटकका रूप मिला। उसका अभिनय हुआ और वह दृश्य बनी। आगे विज्ञानने बढकर साधन प्रस्तुत किये कि वह दृश्य-कथा स्थायी और यहॉसे उठाकर वहॉ ले जाने योग्य बन जाए। सिनेमेटोग्राफ बने और चलती फिरती कथाये हम चित्र-पटपर देखने लगे। हम और भी आगे बढे और यही सम्भव नहीं रहा कि पटपर जीते-जागते मनुष्य, चलती-फिरती कथाये दिखाई दे, वरन् यह भी घटित हो आया कि वह हमे बोलते गाते और हॅसते भी नजर आऍ। इसी टॉकी-युगमे हम आज हैं, और कौन जानता है कि देखते देखते रेडियो-युग भी अब जल्दी ही आ पहुँचने-वाला नही है।

किन्तु पाषाण-युगसे टॉकी-युग तक एक चीज तो बराबर हमारे साथ लगी है। वह है कथा। वह कथा अधिकसे अधिक मूर्त्त और सजीव होकर हमारे सामने अवतरित हो, इसकी चेष्टामे हम बढते ही आए हैं। किन्तु इस तमाम चेष्टाके मध्यमे वह कथा ही प्रधान अभीष्ट-की भॉति विराज रही है।

विलायतोंमें कहानी बहुत आगे बढ़ गई है। आगे बढ़नेका मतलब यही है कि वह स्थूलसे सूक्ष्म और सूक्ष्मसे सूक्ष्म-तर वस्तुके आकलनकी ओर बढ रही है।

यह बात अच्छी तरह समझ लेनी होगी कि शरीरसे प्राणोंकी ओर बढना होगा। बनावटसे स्वाभाविकताकी ओर बढना होगा। सजावटसे रुचिरताकी ओर और आडम्बरसे प्रसादकी ओर बढना होगा। स्थूल वासनाके नीचे धरातलपर इस प्रगति-शील जगतमें टिकना नही हो सकेगा, सूक्ष्मकी ओर अग्रसर होना ही होगा। इसीका नाम विकास है।

इस पुस्तककी कई कहानियोंके विषयमे लोगोंको शका है। लेकिन वे समाधान मुझसे न मॉगे, मै इकार कर दूँगा। इसलिए नहीं कि समाधानके नामपर मै उन्हें बहुत कुछ नही दे सकता, प्रत्युत इसलिए कि मै मानता हूँ कि मनमे शका, उद्वेलन पैदा करना भी मेरी कहानियोंका एक इष्ट है। आपके मनमे शका है, आप स्वयं उससे छुट्टी पाइए। मदद मुझसे जितनी चाहे लीजिए, पर समाधान मत लीजिए। क्योंकि समाधान तो वही है जो अपने चित्तमेंसे मिलता है, बाहरसे नही।

'एक रात' कहानी पहले-पहल इसी पुस्तकमे आई है, अन्यत्र नही छपी। फिर भी कुछ मित्रोने उसे देखा है। वह पूछते रहे हैं कि यह क्या है? मै कह देता रहा हूँ कि जो है, वही है। मै उनकी शकाके प्रति अविनयी नहीं बना हूँ। किन्तु जब उन्होने मुझे सुनाया कि कहानी पढते पढते उन्हे लगी अवश्य अच्छी है, तभी मैंने भर पाया। इसके आगे बढनेपर जब वे उसका अर्थ मॉगते देखे गए, तब मैंने कहा कि रस लेकर वे मुझसे और अधिक मॉगते ही क्यो हैं! समझ ले कि मेरे पास अर्थ बॉटनेके लिए है ही नही।

कुछ कहानियॉ हैं जो 'अलौकिक' हैं। कुटुम्ब-परिवारवाला, नाम-गोत्रवाला जो सामाजिक मनुज दुनियामे रहता है, वे कहा-नियॉ उसकी कुछ बात ही नही कहती। जाने हवा-आसमानकी

और क्या-क्या बाते कहती हैं। हम तो धरतीपर रहते हैं, हमे वहींकी बात कहो। ऐसी बात कहो, जो हमारे आजके कामकी और यहाँके कामकी हो। 'अलौकिक' नहीं चाहिए, जो लौकिक कर्त्तव्य सुझाए, वैसी बात हमे चाहिए।

आलोचक और पाठक जरूर यह कह सकते हैं। लेकिन मै उन्हे बताना चाहता हूँ कि वे भूलते हैं, जब कि वह मानते हैं कि आसमानसे उनका सम्बन्ध नही, धरतीपर ही वह रहते हैं। रहते होगे धरती-पर, लेकिन देखते आसमान भी हैं। धरतीपर ही रहना है, तो ऑख क्यो माथेमे हैं, वह पैरके तलुओंमे क्यों नही है? मैं किसी ऐसे व्यक्तिको नहीं जानता, जो मात्र 'लौकिक' हो, जो सम्पूर्णतासे शारीरिक धरातलपर ही रहता हो। अरे, सबके भीतर हृदय है, जो सपने लेता है। सबके भीतर आत्मा है, जो जगती रहती है, जिसे शस्त्र छूता नही, आग जलाती नही। सबके भीतर वह है जो 'अलौकिक' है। मै वह स्थल नहीं जानता जहॉ 'अलौकिक' न हो। कहॉ वह कण है, जहाँ परमात्माका निवास नहीं है?

इसलिए आलोचकसे मै कहता हूँ कि जो 'अलौकिक' है वह भी कहानी तुम्हारी ही है, तुमसे अलग नही है। रोजके जीवनमे काम आनेवाली, तुम्हारी जानी-पहचानी चीजोका और व्यक्तियोका वहॉ हवाला नहीं है तो क्या, उन कहानियोमे तो वह 'अलौकिक' है जो तुम्हारे ही भीतर अधिक गहरेमे पैठा है। जो और भी घनिष्ठ और नित्य रूपमे तुम्हारा अपना है।

उस आलोचकके प्रति अपनी सद्भावनाको ध्यानमे लाकर मैं तो यह भी सोच उठता हूँ कि लौकिक, सामाजिक और रीय-लिस्टक कहानियॉ छोड़कर एकदम 'अलौकिक' अनपेक्षित और आइडियालिस्टिक कथाये लिखने लगूँ, तो क्या यह अच्छा न हो?

भाषाके विषयमे भी लोग कहते है। लेकिन उस बारेमे तो न कुछ कहना ही अच्छा।

७, दरियागज, दिल्ली
२०।६।३५

—जैनेन्द्रकुमार

सूची

		पृष्ठ
१	एक रात ...	१
२	मास्टरजी ...	३७
३	रानी महामाया ...	५५
४	राजीव और भाभी ...	६५
५	नारदका अर्घ्य ..	८१
६	बाहुबली ...	८७
७	वह बिचारा साँप ...	९४
८	अपना पराया ...	१०२
९	बिल्ली-बच्चा ...	१०९
१०	राज-पथिक ...	११५
११	मौतकी कहानी ...	१२१
१२	जनता ...	१३८
१३	एक टाइप ...	१५१
१४	मित्र विद्याधर ...	१५७
१५	रामूकी दादी ...	१६४
१६	पढ़ाई ...	१६९
१७	आलोचक ...	१७७
१८	नादिरा ...	१८४
१९	क्या हो ? ...	१९८

एक रात

जयराजकी तीस वर्षकी अवस्था होगी। धुनमे बँधा, सदा काम-काजमें रहता है। अपने प्रान्तकी कॉग्रेसका वही प्राण है। लोग उसे बहुत मानते हैं। उन्हे छोड़ और वह रहता किसके लिए है? अविवाहित है और उससे विवाहका प्रस्ताव करनेकी हिम्मत किसीको नही होती। जैसे उसे विवाह तो क्या मौतकी फुरसत नही है।

सबेरेका वक्त था। नौका समय होगा। आधी बॉहोका कुर्ता और जॉघिया पहने वह एक परिषद्के लिए अपना भाषण लिख रहा था।

उसी समय उससे पूछा गया कि एक डेपुटेशन मिलनेके लिए आया है, क्या जयराज मिल सकेंगे? क्या डेपुटेशन अन्दर आए?

"अवश्य।"

जयराजने कागज वही छोड़ दिये और वह डेपुटेशनकी प्रतीक्षामें खडा हो गया।

डेपुटेशनके सज्जन आये और उसने जानना चाहा कि उसके लिए क्या आज्ञा है?

प्रतिनिधिगण जयराजको अपने कस्बेमे ले जाना चाहते हैं। कस्बेका नाम, हरीपुर।

जयराजने कहा—'हरीपुर!'

"आप कभी वहॉ नही पधारे हैं। हमारे यहॉ सन् ३० मे कई बार लाठी-चार्ज हुआ। तहसीलसे दोसौसे ऊपर वालटियर जेल गये। बीस तो महिलायें थी। हमने कई बार अनुरोध किया कि आप आये। हम बिना नेताके कब तक काम कर सकते हैं?..."

जयराज सुन रहा था। सुनते सुनते वह चटाईसे उठा और टहलने लगा। टहलते टहलते उसने कहा—हरीपुर! कितनी दूर है?

"...कुल तीन स्टेशन है। इस बार तो आपको जाना ही होगा। जनतामें बहुत उत्साह है। तहसील-कान्फ्रेसकी कलकी तारीख है, आपको मालूम ही होगा। जनता आपके दर्शनके लिए बहुत उत्सुक है। प्रान्तमें आप सब जगह जाते हैं, एक बार हमारे देहातमें भी चलनेकी कृपा कीजिए। देखिए, आप हताश न करें।..."

जयराजके टहलनेकी चालमें तेज़ी आ गई और वह सुनता रहा—

"...महात्माजी भी अब गाँवोंकी तरफ़ जोर दे रहे हैं। हम पूरे विश्वाससे आये हैं। हम निराश नहीं जायँगे।..."

जयराज टहल रहा था। उसने कहा—हरीपुर! ...क्या, कल? कितने स्टेशन आपने बताया? हाँ, तीन स्टेशन। क्या टिकट है?

कई कठोंने कहा—सात आने।

"सात आने।...कान्फ्रेसका क्या वक्त है?"

"चार बजे शाम।"

"चार बजे शाम! शामको गाड़ी कब वापिस आती है? मैं रातको नही ठहर सकता।...अँ—अँ...हाँ, रातमें बिलकुल नहीं टिक सकता।...हरीपुर!" मानो वह कुछ स्मृतिमें लाना चाह रहा है, या वहाँसे हटाना चाह रहा है। चलते चलते शेल्फमेंसे रेलवेका टाइम-टेबिल निकालकर वह देखने लगा—

डेपुटेशनके कई व्यक्तियोंने कहा—एक छै पैतीसपर आती है, दूसरी रातके साढ़े ग्यारह बजे। आप रातको आ जाइएगा। आपको किसी तरहकी तकलीफ नहीं होने दी जायगी।

"साढ़े छै बजे! हाँ—आँ, लेकिन, मैं साढ़े ग्यारहकी गाड़ीसे नहीं आ सकता। इतनी राततक मै नही रुक सकता। बिलकुल नही रुक सकता। मुझे बहुत काम रहता है।"

हरीपुरके प्रतिनिधियोंने कहा—बहुत जरूरी समझें, तो फिर पौने सातकी गाड़ीसे ही आजाइएगा।

"हाँ, पौने सातपर भी गाड़ी आती है। मैं आठ तक यहाँ आसकता हूँ। ठीक!...लेकिन ठहरिए, मैं जरा देख लूँ।" उसने चलते चलते मेजपरसे

उठाकर डायरी देखी। देखकर रख दी। "नहीं, नही, मैं नहीं आसकूँगा। मुझे क्षमा करे। देखिए, नेतृत्वके मामलेमे गाँवोंको आत्म-निर्भर बनना होगा। नेताओंका भरोसा आप क्यों रक्खे ? इस तरह सरकार हमे हरा सकती है। चुन-चुनकर कुछ आदमियोको जेलमें डाल दिया और राष्ट्रकी रीढ़ टूट गई। नहीं, नहीं, प्रत्येक व्यक्ति नेता हो, प्रत्येक व्यक्ति कृत-निश्चय हो। तब तो स्वराज्य मिलेगा। नहीं तो अगर स्वराज्य मिला भी, तो जनताका स्वराज्य वह कब हुआ ? हम लोगोका आसरा अब छोड़ दीजिए। मैं आप-सा ही आदमी हूँ, दो टॉगे, दो हाथ। आप दिलमें इरादा पैदा कीजिए और मुल्कके लिए रहिए, तो आपमे मुझमे क्या फर्क रह जाता है ? तो यह ठीक है न ? आप मुझे छोड़ें। सब बाहरी लीडरोकी आस छोड़ो। खुद लीडर बनो। आपकी तहसीलका आपकी तरह मै प्रतिनिधि हो सकता हूँ ?...देखिए, मैं जरूर चलता, लेकिन मजबूरी आ गई है।"

प्रतिनिधि लोगोको बहुत दुःख हुआ। जयराजकी वहाँ बहुत ही माँग थी और उन्हे भरोसा था कि जयराज उनके हृदयको तोड़ नही सकेगा। उन्होंने कहा—तो हम लोग जायँ ?

जयराजने टहलते टहलते कहा—हाँ, आप मुझे माफ कर दे।...आपने कहा, तीन स्टेशन हैं, पोने सात बजे गाड़ी वापिस आती है। देखिए, मै कोशिश करूँगा। मोटरका रास्ता तो नहीं है ?...नहीं ? अच्छा, आपको तक-लीफ करनेकी जरूरत नहीं है। आसकूँगा तो मैं अकेला ही आजाऊँगा। स्टेशन बस्तीसे कितनी दूर है ?...तीन मील है ? तो अच्छी बात है। आप विश्वास रक्खे, मै भरसक प्रयत्न करूँगा।

प्रतिनिधियोने कहा—गाड़ीपर सवारी तैयार मिलेगी।

"अच्छा, अच्छा।...आप लोगोको कष्ट हुआ। देखिए, मैं आऊँगा। लेकिन वादा नही कर सकता। यहाँ दो बजे गाड़ी जाती है न ?...नहीं, नहीं आदमी भजनेकी कोई जरूरत नही है। और फिर कहीं आदमी भेजना बेकार न हो।...जी हाँ, जी हाँ। लेकिन गाँवोको स्वावलम्बी होना होगा। अच्छी बात है।...वन्दे।"

डेपुटेशनके लोग चले गये और वह लम्बे डगोंसे टहलता ही रहा। आरम्भ किया हुआ भाषण पूरा करने मेजपर जल्दी नहीं आ गया। अन्तमें टहलते

टहलते वह मेजपर आ बैठा और होल्डरसे ब्लाटिंग-पैडपर लिखा, लिखा कहें कि खींचा—

Swaraj is our birthright—as indisputable elsewhere as in politics.

Swaraj
Love
Independence
Marriage?

But there is marriage too Marriage gives man a foothold, society a unit. It gives a home.

Alright. Perfectly alright. But—?

And there is Love in the human breast. Love gives us glow, gives us bliss. Love makes us transcend the physical & touch the spiritual. That makes us reach out beyond the here & the now, reach out with the eternal vanity of life.

God made love. Did God make marriage also? No, man did the making of it. And I say Love is not chaos. It is never that Never. Never!

Ah, how slavish of me thus unwittingly to use English Must write Hindi! हिन्दी–हिन्दी। हिन्द हमारा देश, हिन्दुस्तानी हैं हम, हिन्दी हमारी भाषा, हिन्दी हमारा बाना—भाइयो!

हरीपुर—२३ मील, सबेरेकी गाड़ी। मैं नहीं जा सकता। Oh Damn it all! Why make a misery of it—Dear Jairaj, mind, lest—

इतना बनाकर वह सिरको हाथोंमें थामे मेजसे उठ खड़ा हुआ और भूल गया कि एक हफ्तेमें उसे अपना सभापतिका भाषण जिला-कान्फ्रेंसके स्वागत-मन्त्रीको छपनेके लिए भेज देना है।

५

बिना ताले और बिना प्राइवेसी जयराज सबका बनकर अकेला रहता है। अब तक जीवनके पाँच वर्ष जेलमें बिता चुका है। खाली रहना ही नहीं। कालेजके चौथे वर्षमें पढ़ना छोड़ दिया, तभी सगाई भी तोड़ दी। हाँ, यही कहना होगा कि तोड़ दी, क्योंकि दूसरी ओरसे तो उसके टूटनेकी बात ऊपर आई सुनी गई नहीं। बात यह भी हुई कि जो दुनियामें सीधी, शाही सड़क है, जयराजने अपनेको कुछ उससे भटक चलता हुआ पाया। उसे इसमें शंका होने लगी कि ठीक-ठीक कमाने और खिलानेवाला पत्नीव्रत पति उसके स्वभावमें होना लिखा है। क्या जाने कोई संकट, कोई चुनौती अँधेरेमेंसे उसे

कभी भी पुकार नहीं उठेगी। उसे लगता था कि उस समय उससे घरपर बाल-बच्चोंसे घिरा किस भाँति बैठा रहा जायगा ? तब उसने अपने साथ तर्क करके सोचा—तब मैं कौन हूँ कि एक कन्याको अपने साथ गुँथने दूँ ? मैं संकटकी ओर मुँह करके भागूँगा; उसका वही मुँह पकड़नेके लिए जो डराता है, ताकि जग निर्भय बने। लेकिन इसी उद्देश्यके साथ परिणयमें किसी किशोरिकाको बाँधनेवाला मैं कौन ? चलते चलते राहमें एक बेचारी लड़कीके साथ खिंचकर, बँधकर, अपनी अलग झोपड़ी बसाकर रुक जानेवाला मैं कौन हूँ ?

इस दुनियामें मुझे रुक पड़नेकी छुट्टी कैसे है ? किसी भी लालचमें पड़कर राहके किनारे मुझे रम जाना क्यों है ? अकेले ही अकेले चलते ही चलना है। क्योंकि जिधर मुझे चलना है उधर अँधेरा ही अँधेरा है—उधर अकिंचनता है। अँधेरेके भीतर तहपर तह भेदकर मुझे वह पा लेना है और ढा देना है, जो ज्योतिको छेकता है।

उसने सोच लिया—जो उसकी ही बनती बनती रह गई वही अब किसी और दूसरेकी हो। सहर्ष उसकी हो जो उसे विलास और विपुलतामें ले जाय। अभावमें और विपदमें ले चलनेके लिए उसे साथ लेनेवाला मैं नहीं हूँ, नहीं हूँ।

सो उसने सगाई तोड़ दी। या कहो, खुश हुआ कि सगाई टूट गई। सच, क्या उसने सुना था कि कन्याके पिता कहीं अन्यत्र वैभव और विपुलता देखकर उस ओर झुकनेकी छुट्टी चाहते हैं ? कौन जाने। जयराजके मनका हाल बाहर नहीं होता है। लेकिन यह पूर्णतया विदित है कि वह अविवाहित ही रहा है, विपदाके आतिथ्यसे कभी उसने मुँह नहीं मोड़ा है और कभी वह हरिपुर नहीं गया है।

❦

सबेरे नौ बजे एक जवाबी तार आ गया। हरिपुरवालोंका तार था, लिखा था—"आपकी उपस्थिति अत्यन्त अनिवार्य्य है। क्या सहस्रोंको निराश करेंगे ?"

तार हाथमें लेकर वह थोड़ी देर घूमता रहा। कुछ देर बाद मेजपर आकर

उत्तरमे लिख दिया—" असमर्थतापर अत्यन्त खिन्न हूँ। स्वावलम्बन स्वराज्य है। सफलताकी हार्दिक कामनायें।"

यह लिख देकर उसके चित्तने चैनकी साँस ली और मानो अन्दर ही अन्दर मुसकिराकर जयराजने अपने अधलिखे कागजोको खीचकर सामने ले लिया। उन्हे पढ़ा, पढकर खुश हुआ। आगे लिखनेके लिए उत्साहसे कलम उठाया। वह कलम कागजपर टिका,–टिका ही रहा, बढ़ा नहीं। और जब वह कलम वहाँसे उठा तब स्याहीकी एक मोटी काली बूँद वहाँ बैठी शेष रह गई। थोड़ी देर वह कुर्सीपर खाली बैठा उस बूँदको ही देखता रहा। फिर उठकर बालोको खुजलाता हुआ टहलने लगा।

'...ठहरो, मुझे साफ साफ देखने दो। मै क्या हूँ ? मैं एक उद्देश्यपर समर्पित व्यक्ति हूँ। मेरा निजत्व क्या है ? कुछ नही है। मेरा स्वार्थ क्या है ? कुछ नही है। क्या मेरे लिए परमार्थ भी कुछ है ? कुछ नही है। मेरे लिए एक ही वस्तु है। वही मेरा स्वार्थ, वही मेरा परमार्थ, वही मेरा निजत्व, वही मेरा लक्ष्य। जब मै समर्पित हूँ तब मै किसी भी और अन्य विचारके लिए खाली नही हूँ, बचा नही हूँ, जीवित नहीं हूँ। मेरी देह, मेरे मन, मेरी बुद्धिमे कही भी कुछ औरके लिए अवकाश कैसे हो, सिवाय उसके जिसके लिए मै न्योछावर हूँ ?.. किसके लिए मै न्योछावर हूँ ? राष्ट्रके लिए। राष्ट्रके स्वराज्यके लिए। राष्ट्र क्या ? वह राष्ट्र कहाँ है ? मेरे हृदयमे वह राष्ट्र कहाँ है ? क्या अमुक और अमुक भौगोलिक परिधियोसे परिमित भारतवर्ष नामक भूखडका चित्र मेरे भीतर गहरा उतर कर सदा जाग्रत रहता है ? क्या वही यो जीकी धड़कनमे सदा स्पन्दन करता रहता है ? नहीं, स्पन्दन करता हृदय है, राष्ट्रकी भावनाके बिना भी वह स्पन्दन करता है। जान शेष, और विश्वात्माका निर्देश है तब तक वह स्पन्दन रुकेगा नही, होता ही रहेगा। तब राष्ट्र क्या है ?...लेकिन ठहरो, मैं शंकितचित्त नही बनूँगा।...' संशयात्मा विनश्यति।' यह प्रश्नातीत रहे कि राष्ट्र है। मैं राष्ट्रसेवक हूँ। और कुछ भी नही हूँ। जयराज मात्र नाम है। जयराजका कोई पार्थक्य नहीं, कोई व्यक्तित्व नही है। जयराज राष्ट्रसेवक है, एक, निरा, बस।...

'. .हरिपुरके आदमी आये। हरिपुर मुझे माँगता हैं। मैं राष्ट्रका हूँ, प्रान्तका हूँ, जिलेका हूँ, गाँवका हूँ, हर आदमीका हूँ। मै किसकी माँगसे विमुख

हो सकता हूँ, जब तक कि मेरे उद्देश्यकी ही दिशाकी कोई दूसरी अधिक हार्दिक, अधिक बृहत् पुकार सामने न हो। जयराज, हरिपुर है कि रामपुर है कि जनकपुर है, तेरा उनमें अपना-पराया क्या है? कैसे एकसे बच सकता, दूसरेसे खिंच सकता है? तैंने यह क्या अपने साथ जुल्म किया है कि हरिपुरके प्रतिनिधियोंके हृदयोंको चोट दी है? तू तारके जवाबमें भी भीरु बना है! तेरे पास क्या और कुछ है, कौनसा वह राष्ट्रका काम है जो हरिपुरवालोंकी माँगको अस्वीकार कर देनेको औचित्य दे सकता है?...

'...देखो जयराज, तुम जरा भी अपने नहीं हो। तुमको अपने सेवा-कार्य्यके साथ अशेषरूपमें एकाकार रहना होगा। वही रहे, तुम न रहो। राष्ट्र रहे और राष्ट्रके सेवकके अतिरिक्त तुम और कुछ न रहो।...'

२

जब जयराज अचानक ही भरी सभामें जा पहुँचा और उसे अध्यक्षके आसनके पासके आसनपर ला बिठाया गया, तब सभा उसके ऊँचे जय-घोषसे गूँज उठी। जयराजने निस्पृह भावसे उपस्थित नरनारियोंकी भीड़को देखा। देखकर उसका हृदय भर आया। उसका हृदय भारतके गौरवपर फूल आना चाहता था।

सभा आरम्भ हुई और थोड़ी देर बाद सभापतिने कहा—श्रीमती सुदर्शना-देवी अपना स्वागत-गान पढ़ेंगीं।

महिलाओंके बीचमेंसे ही एक ओरसे सुदर्शनादेवीने उठ आकर पहले जयराजके गलेमें खद्दरके फूलोंकी माला डाली, प्रणाम किया और मंचके पास जाकर स्वागत-गान आरम्भ किया।

जयराज स्वागत-गान गाती हुई उस नारी-मूर्तिके उस पार श्रोताओंके समूहको बिना देखे निर्निमेष देखता रहा।

'...वह मात्र राष्ट्र-सेवक है और यदि यहाँ उपस्थित राष्ट्रकी जनता उसका सम्मान करने आई है तो वह राष्ट्रकी टेकका सम्मान है।' उसीके नामको निमित्त बनाकर स्वागत-गानका अर्घ्य देती हुई जो महिला मञ्चपर खड़ी गा रही है उसकी ओर बिना देखे जयराज अपने मनमें कहने लगा—'यह भारतकी नारी-शक्ति मुझमें केवल राष्ट्र-सकल्पका ही स्वागत कर रही है। मैं स्वागतको लेकर राष्ट्रके चरणोंमें ही तो दे सकता हूँ। मेरा स्वागत यह नहीं

है—मेरा नहीं है। यह स्वागत-गान प्रदान करनेवाली, मात्र नारी-शक्तिकी ही प्रतिनिधि होकर, मेरे गलेमे यह माला डाल गई है। यह माला न मेरे लिये है, न उसकी है। वह कौन है? उसका नाम सुदर्शना है। पर सुदर्शना नाम ही है। वह इस समय भारतीय नारीकी गरिमाको अपने कल-कंठके गुंजारसे मुझको उपलक्ष्य बनाकर भारत-माताके पद-पद्मोमे भेंट देने प्रस्तुत हुई एक सेविका है...।'

और जयराजने गलेमेंसे माला उतार कर सामने रख दी—

'...सेविका है। हाँ, नाम उसका सुदर्शना है। सुदर्शना न होकर सुनयना भी हो सकती थी। जयराज, भारतीय नारीत्वकी यह भेंट, भारतीय वीरत्वके संकल्पके प्रति है। तेरा अपना इसमे निजत्व कुछ नही है। कुछ भी नहीं है। सुदर्शनाको तू सुनयना या सुलोचना ही समझ। बस एक इकाई, भारतके राष्ट्रकी एक आदरणीय नारी...'

और उसने सुनयना अथवा सुलोचना नामकी एक इकाई बन गई हुई सुदर्शनाकी ओर पहली बार देखा। वह सामनेकी भीडको देखती हुई स्वागत-गीत गा रही थी। क्या उसके स्वरमे राष्ट्रप्रेमका ही दर्द था? उसके गानमें क्या राष्ट्र-स्नेहहीकी मिठास थी? क्या वाणीके कम्पनमें स्वराज्य-युद्धका ही आह्लाद था? क्या उसमे राष्ट्रके एक वीरको निस्पृह पूजा देनेका ही उल्लास था? क्या उसमे अत्यन्त निजी भी कुछ न था? कुछ बिलकुल व्यक्तिगत, हृद्गत, मर्मगत, देशके भावसे भी कुछ गहरे तल तक गया हुआ? कुछ वह जो राष्ट्र-देवसे किसी अधिक मूर्तिमन्त, अधिक जीवन्त, अधिक निजीय देवताके प्रति समपर्णीय हो...।

गरदनको झटका देकर, उसे सीधी करके और फिर सामने निगाह स्थापित कर जैसे जयराजने एकाएक लगाम खीची।

'जयराज, राष्ट्रपर चढ़ते हुए अर्घ्यमे कुछ भी अपना निजत्व मान कर अर्घ्यको अपवित्र न करो। चोर न बनो। यज्ञ अशुचि न बनाओ। तुम्हारा कुछ नहीं है—कुछ नहीं है। कुछ तुम्हारे लिए नहीं है, कुछ तुम्हारी स्वीकृतिके लिए नहीं है। सुदर्शना सुनयना भी हो सकती है, सुलोचना भी हो सकती है। माला भारतीय नारीके हाथों भारतीय पौरुषके गलेमे पड़ी है। नारी-शक्तिने युद्ध-पौरुषका स्वागत-गान किया है, जयराज!...'

स्वागत-गान गाती हुई सुदर्शनाकी ओर जाती जाती अपनी निगाहको मोड़-कर सीधी रखते हुए जयराजने सोचा—

'जयराज, सीधे देखो। राष्ट्रकी आरतीको पवित्र रहने दो। तुम्हारी अमानतमें देकर यह स्वागत राष्ट्रके भविष्यके अभिवंदनमें किया जा रहा है। खबरदार, जो उस अमानतको स्निग्ध निगाहसे भी तुम देखो, जो ज़रा भी तुम छुओ। राष्ट्रके उदीयमान भविष्यके चरणोंकी ओर उस अभिनंदनको बढ़ने दो, वहीं चढ़ने दो। तुम उपादान रहो, अपनी गृद्धि उसमें कुछ मत रक्खो!...'

एकाएक घड़ी दीखी—साढ़े चार! उसने झुककर सभापतिसे कहा—गाड़ी कब जाती है?

"क्या आज ही जाइएगा?"

"शायद पौने सात बजे जाती है। मैं रह नहीं सकता।"

इसी समय वह जैसे एकाएक अतिशय उद्विग्न और अत्यन्त व्यस्त हो उठा—"मैं नहीं रुक सकता। जी नहीं, मैं किसी तरह रुक नहीं सकता। देखिए—"

और सुदर्शनादेवीने धीरे धीरे उसकी ओर आकर, समक्ष ठहर कर, फ्रेममें जड़े हुए और अपने हाथके सुन्दर सुन्दर अक्षरोंमें लिखे हुए स्वागत-गानको उसके चरणोंमें रख दिया और मस्तकको उन चरणोंके पास झुकाकर प्रणाम किया।

जयराजने बिना सुदर्शनाकी ओर निगाह उठाए झपटकर उस फ्रेमको लिया और सामने रक्खी मालापर औंधा कर दिया!

"देखिए, मैं हर्गिज—हर्गिज नहीं रुक सकता। बहुत जरूरी मुझे काम है—"

अध्यक्षने कहा—सबेरे आरामसे चले जाइएगा। तहसीलके कांग्रेस-कार्यकर्त्ता सब जमा हैं। कांग्रेस-कार्यक्रमके सम्बन्धमे आपसे परामर्श चाहते हैं। नौ बजे मैंने उनकी सभा बुला ली है।

जयराजने झींककर कहा—ओह, यह आप क्या करते हैं! मुझे चले जाना चाहिए। सभा आप अपनी करते रहिएगा। मै कह चुका हूँ, स्वावलम्बी बने बिना न चलेगा। मैं रातको नहीं ठहर सकता।

अध्यक्षने विनीत भावसे कहा—सबेरे छै बजे एक गाड़ी जाती है। आरामसे आपको उसमें बिठा दिया जायगा। सात बजते बजते आप मकानपर होंगे। अगर—

जयराजने कुछ अधीर होकर कहा—"नहीं—नहीं, साहब।" और फिर

एकाएक स्वयं सावधान होकर तथा अध्यक्षको सावधान करते हुए कहा—" लेकिन, अपने मंचकी तरफ तो देखिए, वह खाली है। " सभापतिने उठकर कहा—" भाइयो—"

जयराज फिर गरदन सीधी कर सामने अनिमेष देखने लगा। सभापति उसका स्तुति-गान कर रहे थे। वह एक ओर भारतके भाग्यपर गर्वित होता, दूसरी ओर रोना चाहता था। वह रह-रहकर घड़ीकी ओर देखता था। घड़ीकी सुई मिनट मिनटपर आगे आती थी। वह मण्डपमें एकत्रित जनताको देख रहा था। इस दृष्टि-प्रसारमें सभाका रंग-बिरंग विभाग भी बिछा दीखता था। वह यदि आँख उठाकर उस महिला-ब्लाककी ओर देखता था तो उसमें स्त्रियोंको अलग अलग नहीं देखता था। मानो भारतीय स्त्रीत्वकी गरिमाको समग्र अविभक्त रूपमें ही देखता था। सब नारियोंके चित्र विचित्र परिधानोंने एक साथ इकट्ठे होकर मानो उस गरिमाके रूपमें अद्भुत छटा ला दी है। इस चित्रमें कहाँ सुदर्शना है? कहाँ सुलोचना है? कहाँ सुनयना है?—इसका कुछ भी पता नहीं है। सब मिलकर चित्रको जीवन दे रही हैं, ऐश्वर्य दे रही हैं। वह जीवन और वह आभा ही ध्यान देनेके लिए है। भारतके प्राणोंका लालित्य ही वहाँ फूट पड़ा है। वह सब, समष्टिरूपमें, भारतीय नारी-गौरवके उपमानकी अपेक्षा ही जयराजके आकर्षणके लिए है। यो सुदर्शना, सुनयना भी हो सकती है, सुलोचना भी हो सकती है।

सभापति आ बैठे। घड़ी पाँचसे आगे पहुँच गई है और जयराजको अब सहस्रो दृष्टियोंका मध्यप्राण बनकर बोलना होगा। वह उठा और करतल ध्वनिके घोर रवने उसे पूरी तरह डुबो लिया। वह जाने कहाँ पहुँच गया था। मंचपर पहुँचकर उसने बोलना शुरू किया—

लौट कर देखा—घड़ीमें साढ़े छैसे ऊपर हो गया है! उसने झल्लाकर सभापतिसे कहा—सवारीका इन्तज़ाम है? मुझे अभी जाना चाहिए।

सभापतिने उत्तरमें घड़ीकी ओर देखा।—मानो घड़ीके मुँहके सामने उन्हें बोलनेका सामर्थ्य नहीं है।

जयराजने कहा—देखिए, नहीं, सवारी मँगा भेजिए। आपने मुझे बीचमें वक्तकी याद क्यों नहीं दिलाई?

सभापतिने निवेदन किया—गाड़ी मिलना मुश्किल है।

जयराजने कहा—ठीक है, आप कान्फ्रेंस चलाइए। मुमकिन है, गाड़ी ही लेट हो। मुझे इजाजत दीजिए, मैं चलूँ।

सभापतिने साश्चर्य कहा—अब आप कहाँ जाइएगा ? पैदल ?

जयराजने उस माला और स्वागत-गानको उठाया, वह रुका। फिर सभापतिको उन्हें सौंपते हुए उसने कहा—जी हाँ, पैदल जा रहा हूँ। स्टेशन ढाई मील ही तो है। देखिए, इन चीजोको कॉंग्रेस-दफ्तरमे रख लीजिएगा।

सभापति उठ खड़े हुए। जयराजने बिदा ली और कुछ लोग उसके साथ साथ चले।

जयराजने कहा—आप बैठें—बैठें।

किन्तु लोग उसके साथ ही रहे। वह निःशब्द तेज़ीसे बढ़ने लगा और धीरे धीरे लोगोंका साथ छूट गया। वह एक साँस बढता हुआ स्टेशनपर आया।

पर गाड़ी निकल चुकी ही थी। वह प्लेटफार्मकी बेंचपर बैठ गया। बैठा रहा, बैठा रहा—

'...थोड़ी देरमें रात हो जायगी।' उसने सोचा। 'मुझे रातमें बेकाम क्यों अपने स्थानसे दूर रहना होगा ? अब गाड़ी साढ़े ग्यारह बजे जायगी। मैं क्यो अपने भाषणमे वक्तका ख्याल नहीं रख सका ? भाषणका मेरे लिये नशा क्यो है ?...यह मैने ठीक किया कि माला और स्वागत-गान कॉंग्रेस-दफ्तरमे रखनेके लिए छोड़ आया और कह आया हूँ। क्या उस गीतके नीचे उसके हस्ताक्षर हैं ? उनकी कोई वहाँ आवश्यकता नहीं है। राष्ट्रको दी हुई भेटपर अपने नामकी मुहरकी कोई जरूरत नही है। मैंने उसे देख ही क्यों न लिया ? किन्तु मैं समझता हूँ, सुदर्शना,—हाँ, वह सुनयना भी हो सकती है, सुलोचना भी हो सकती है—इतनी लड़की नहीं होगी कि अपना नाम वहाँ अवश्य रक्खे। यदि उसका नाम अपने हस्ताक्षरोंमें वहाँ है, तो, तो इसमे सन्देह है कि वह फिर काग्रेस-दफ्तरके लायक चीज़ है। तब वह मेरे यहाँ रह सकती थी, या, या किसीके यहाँ रह सकती है।

'...ठहरो, नौ बजे इन लोगोंने काग्रेस-कार्यकर्त्ताओकी सभा बुला ली है। मैं यहाँ स्टेशनपर पॉंच घटोका क्या बनाऊँगा ? लेकिन वह लोग गलती करते हैं कि मुझे बिना पूछे मेरे आसरे सभा बुला लेते हैं। और वक्त क्या बुरा है, नौ बजे !—'

वह उठकर प्लेटफार्मपर टहलने लगा। टहलता रहा, टहलता रहा, और वापिस फिर बस्तीकी ओर चल पड़ा।

चलते चलते वह कातर हो-हो आया—

'बस्तीमें हजारों घर हैं। हजारों प्राणी उनके नीचे बसते हैं। ओ मेरे घट-घट रमते राम, मुझे शक्ति दे, मैं तेरे अनुरूप घट-घटमें खो जाऊँ, जन-जनमें बसूँ। मैं किसी एकका होकर नहीं रहना चाहता। कोई भी एक विशिष्ट रूपमें मेरा नहीं है। जब इस हरिपुर नगरमे जारहा हूँ, तब समस्त हरिपुरके प्राणोंके लिए मेरा प्राण हो। दरिद्रातिदरिद्र, निम्नातिनिम्न, हीनातिहीन जनके प्रति मैं अधिकसे अधिक प्रदत्त बनूँ। इस नगरमे मेरे लिए विशिष्ट कोई नहीं है। मेरे राम, कोई नही है।' वह मानो प्रण करता हुआ चला—

' विशिष्ट कोई नहीं है, कोई भी नहीं है।'

शामसे ही कुछ बादलोके आसार थे। नैऋत्यसे ठंडी वायु उमड़ रही थी और दूर क्षितिजके पास काले नागके सत-फणसा बादल शनैः शनैः ऊपर उठ रहा था।

कांग्रेस-कार्य्यकर्त्ता लोग दफ्तरमे जमा थे। जयराजने वहाँ पहुँचकर सभाके अध्यक्षसे कहा—लीजिए, रेल नहीं मिली और मैं आपकी सेवामे उपस्थित हूँ।

अध्यक्ष अति धन्य हुए। उन्होंने कहा—आइए,—आइए।

जयराजने कहा—आप अपनी सभा जरा जल्दी कर ले, और जो लोग आनेवाले हो उन्हे बुला ले। मेरी गाड़ी साढ़े ग्यारह बजे जाती है न ? दस बजे तक मै सभामे सहयोग दे सकता हूँ। तब तक आपकी सभा क्यो न हो जाय ?

सभापति महोदयने कहा—जीहाँ, मै अभी बुलाता हूँ। लेकिन आप रात-को ठहर सकें तो अच्छा है।

" जी नही। रातको किसी तरह नहीं ठहर सकता। " जयराजने कहा—" लेकिन आप सभा शुरू कीजिए। मुझे मुझपर छोड़िए। "

नौ बजेके लगभग सभा शुरू हुई। उस समय तक हवा आँधी हो चली थी और बादल सारे आसमानपर छा भरा था। और बिजली भी बीच बीचमें तड़क-ती थी। सभा हो रही थी और कुछ लोगोका ध्यान जयराजके गभीर प्रवचनसे हटकर हठात् उस प्रकृतिकी हुकारके अर्थकी ओर जा रहा था। परन्तु जयराज अशेष रूपसे प्रस्तुत विषयमे दत्तचित्त था।

हालकी खिड़कियाँ काँपने लगीं, गड़गड़ाहट बढ़ गई। उस समय जय-
राज कह रहा था—

"...कासट्रूक्टिव वर्क ही वर्क है। हमे राजनीतिज्ञ नहीं चाहिए, सेवक चाहिए। सेवक अपनेको सेवामें खो दे। अपनेको खोनेका अर्थ अपने प्राण-रसको जनताके मूलमे सींच देनेका है। भूखेके साथ, बेरोजगारके साथ अपनेको मिला देनेकी कोशिश हमें करनी है। भूखेको खाना, बेकामको काम और आशंकितको ढाढस हमें देना है। चर्खा यह सब देता है।..."

और, बादल घुमड़ रहे थे, बिजली कड़क रही थी, और वक्त बढ़ रहा था। बीच बीचमें कुछ भारी भारी बूँदें भी, टप, आ टपकी थीं। इसी समय अनायास घडीकी ओर देखकर उसने अध्यक्षसे कहा—देखिए, किसी सवारीका इन्तजाम हो सके तो।

अध्यक्ष धीमेसे बोले—बादल बहुत हो रहे हैं। मैं आदमीको भेजता हूँ।

सभा चलती रही और आदमीने सूचना लाकर दी कि घटा घनघोर है, सवारी हो तो जायगी, पर गाड़ीवाले दो रुपया माँगते हैं। सभापतिने उसे चुप करते हुए कहा—अच्छा-अच्छा, रुपयेकी क्या बात है। (जयराजसे) सवारी हो जायगी। मँगवा दी जावे?

"जी हाँ, मँगवाइए, बस दस होते हैं।"

उस आदमीको गाड़ी ले आनेके लिए फिर भेज दिया गया और सभा चलती रही।

किवाड़ खड़ खड खड़कते थे। हवा साँय साँय करती थी। वह किवाड़ोंको थपेड़से उधेड कर भीतर घिर आना चाहती थी। अँधेरा कालपर काला था जिसको बिजली और घोर कर जाती थी। और दुनिया घरोंमें बन्द थी।

जयराजने घड़ीकी ओर देखा। दसपर पाँच मिनट हो गये, दस हो गये, अब पन्द्रह भी हो जावेंगे। उसने सभापतिजीसे पूछा—सवारी आगई?

उन्होने कहा—अभी आदमी लौटा नहीं।

जयराजने व्यस्त भावसे कहा—'तो ठहरिए मुझे चलना चाहिए।' और वह उठ खडा हुआ।

लोगोने कहा— देखिए तो साहब, बाहर क्या हाल है? आज यहाँ रहिए, सबेरे चले जाइएगा।

जयराज मुस्कुराया। मानों कहा— वर्षा और हवा हमे मोड़े तो हम कैसे कृतसकल्प ! कैसे राष्ट्रकर्मी ?

इतनेमे उस आदमीने आकर जवाब दिया कि गाडीवाला बादलोंकी ओर देखकर जानेको तैयार नहीं है। वह पॉच रुपये माँगता है।

"क्या ?" जयराजने साश्चर्य्य कहा—" गाड़ीके रुपये काग्रेसको देने होगे ? नहीं नहीं। तब तो मै पैदल ही जाऊँगा।"

बात उसकी पूरी तरह खत्म न हुई थी कि तड़-तड चोट देकर बाहरके टीन-पर ओले गिर चले।

लोगोने जयराजकी ओर देखा। जयराज प्रसन्न मालूम होता था। उसने कहा— ओहो, ओले गिर रहे हैं ! (सभापतिकी ओर मुड़कर) दो कम्बल मुझे दीजिए और एक छतरी। दे सकेंगे ?

सभापति परिपक्व अवस्थाके पुरुष थे। जयराज अभी युवा था। उन्हे विचार भी आया कि क्या वह पिताकी भाँति आगे बढ़कर उस लड़केको मूर्खतासे नहीं रोक सकते ? लेकिन जयराजकी ओर देखकर उनका आत्म-विश्वास उड़ जाता था और वह प्रार्थी ही हो रहते थे। उन्होंने कहा—आप सबेरे जावे तो ?

जयराजने कहा—दो कम्बल दे सकते हैं तो आप दे दे। आपकी कृपा होगी।

कम्बल लिये। एकको बदनसे लपेटा, दूसरेको ओढ़ा, छतरी सम्हाली और जयराजने कहा—अच्छा, आप लोग मुझे इजाजत दे।

उसके कहनेके साथ ही एक पैने तीरोंकी नोंक-सी बूंदोंकी बौछार हवाकी बाढ़के साथ आकर टीनको उधेड़ गई !

जयराज अनायास कुछ ठिठक गया।

'...हरिपुरमे आखिर यह रात वह क्यो बिता नहीं सकता ? सबेरा होते ही यहॉसे चला जा सकता है . ।' किन्तु तभी उसने सभी लोगोकी ओर मुँह करके दोबारा कहा—" अच्छा वन्दे।" और स्थिर डग बढ़ाकर दरवाजेके बाहर हो गया।

❦

उसी हरिपुरमे एक छतके नीचे कुछ और भी घट रहा था।

सुदर्शनादेवीने माला जयराजके गलेमे डाली, स्वागत-गान पढ़ा, उसको चरणोंमें चढ़ा दिया और उन चरणोंको प्रणाम कर अपनी जगहपर आ बैठी।

इसके बाद जयराजका उसने भाषण सुना। खद्दरका मोटा कुर्ता, मोटी धोती, उन्नत ललाट, निर्भीक और संकल्पयुक्त वाणीके साथ जयराज भाषण करता रहा, तब सुदर्शना उसे सुनती रही, और नहीं भी सुनती रही। देखती रही और नहीं भी देखती रही।

जयराज बीचहीमे मण्डपसे उठकर बाहर चला गया। सुदर्शना अपनी जगह ही बैठी रही। जब आसपासकी और सब स्त्रियाँ उठकर चलने लगीं तब वह भी उठकर चल दी।

वह जयराजको क्या जानती है? मालूम नही, क्या जानती है। कांग्रेस-नेताकी हैसियतसे जो वह है, उतनेका तो परिचय सार्वजनिक सम्पत्ति है। सो उसको भी प्राप्त है। उसके आगे भी यदि कुछ जानती है तो पता नहीं। आज पहली बार उसने इन जयराजको देखा है।

सभामेसे जब सब उठीं तब वह भी उठकर चलती चली आई। चलती चली ही आई। घर आकर एक चटाईपर बिना कपड़े बदले बैठ गई। फिर एकाएक माथेपर दोहत्था मारकर वह वहाँ औंधी लेट गई। उसने अपने मनको वहाँ मसोस मसोस लिया। पर समझ न पड़ता था, वहाँ क्या उठ रहा है।

कुछ भी उसके निकट स्पष्ट होता ही नही था। दो एक बार उसने अपना सिर भी चटाई पर दे-दे मारा, पर तो भी उस आग हो रहे सिरकी समझमे कुछ नहीं आता था।

बहुत देर तक ऐसे पड़े रहकर वह उठी। हाथ मुँह धो लिया, कपड़े बदलकर निरी धौली एक साड़ी पहन ली। पहनकर अपने पतिकी तस्वीरके सामने घुटनो जा बैठी। उस चित्रके आगे उसने भक्तिपूर्वक अपना मस्तक नवाया और उसके बाद भरसे आते हुए कलेजेको लेकर घरके काम-धंधेमे लग गई।

सध्याके भोजनके अनन्तर वह अपने पतिके कमरेमे गई। पति आराम-कुर्सीपर लेटे हुए सिगार पी रहे थे और धुआँ देख रहे थे। उन्होने मूछोंमें ही मुस्कुराकर कहा—आओ। कैसे आई?

वह आती ही आई और आलमारीकी ओर बढ़ गई। खोलकर उसे देखने भालने लगी, मानो इसीके लिए वह आई थी।

"क्या चाहिए?"

पत्नी कुछ धर-उठा करती ही रही और चुप रही।

पति फिर टाँग सामने फेंककर सिगार पीने लगे और धुआँ देखने लगे। थोड़ी देर बाद सुदर्शना उनके सामने आकर एक कुर्सीकी पीठको पकड़कर खड़ी हो गई। कुछ देर खडी रही और पतिको पता न चला। सुदर्शनाने कहा–मुझे तुमसे एक बात कहनी है।

आँख खोलकर सामने खडी सुदर्शनाकी पूरी मूर्तिको देखकर पतिने कहा—कहो।

सुदर्शनाने कहा—तुम मुझे क्या समझते हो ?

पतिकी समझमे एकाएक यह बात नहीं आई। सामने कुर्सीकी पुश्तको पकड़कर खड़ी होकर भारी चेहरेसे जब पत्नी पूछती है–' तुम मुझे क्या समझते हो, ' बिना भूमिका, बिना प्रस्तावनाके जब वह एक-टूक यही पूछती है कि 'तुम मुझे क्या समझते हो ?' तब उसे क्या समझना होगा ? पतिने कहा—मैं तुम्हे अपने प्रेमकी प्रतिमा, प्राणकी प्राण, घरकी रानी, आँखकी पुतली समझता हूँ मेरी रानी, और क्या समझता हूँ ?

और उन्होने जोरसे सिगारमेसे एक दम खीच लिया और मुँहको गोलाकार बनाकर धुएँको कुडलाकार रूपमे छतकी ओर धीमे धीमे उड़ा दिया।

पत्नीने कहा—मैं पतिव्रता नही हूँ।

कहकहेके साथ पतिने हँसकर कहा—तुम मेरी रानी हो, मेरी मलका, मेरी जारीना !

" आजसे पहले मैं यह नहीं जानती थी। आज जानी हूँ, तो तुमसे कहने आ गई हूँ।..."

पतिका सिगार हाथोमे रहा और वह सामने मानो उड़ गए हुए धुएँमें खोये, गुम हो रहे।

"...तुमसे मैंने बहुत प्रेम पाया है, बहुत आदर लिया है। वह सब मैंने चोरी की है। ठगी की है। मैं उसकी मालिक बननेवाली कोई न थी। मैं अपात्र थी। आज मुझे पता चला है कि अपना सब कुछ मैं तुमपर नहीं वार चुकी। भीतर ही भीतर कुछ बच गया था जो, आज देखती हूँ, तुम्हारे चरणोंमे मैं अर्पण नही कर सकी थी।...यों न देखो...मुझे देखो। मैं तुम्हें धोखा देती रही। तुमसे पाती सब कुछ रही, देनेमें चोरी करती रही।..."

पतिने किं-विमूढ भावसे कहा—क्या है ? क्या बात है ?

" बात कुछ नहीं है । मैं अब तुम्हारे प्रति चोर नहीं रहूँगी । विश्वासघातिनी नहीं रहूँगी । तुमने मुझे इतना दिया, उस सबके लिए मैं ऋणी भी तो नहीं हो सकती, कृतज्ञ भी तो नहीं हो सकती । क्यों कि वह सब मैंने ठगाई की है । लेकिन अब जाननेके बाद तो मैं कुछ भी लूँगी तो जलूँगी । मैं पतिव्रता नहीं हूँ । आज मैं तुम्हे यही बताती हूँ कि मैं पतिव्रता नहीं हूँ ।..."

अविश्वस्त, किंतु संतप्त, पतिने कहा—

" तो क्या है ? पतिव्रता नहीं, तो तू क्या है ? "

"...मैं तुम्हारे घरसे निकाल देने लायक हूँ । मैं सच कहती हूँ, जान बूझकर मैं तुम्हें धोखा देनेवाली न थी । लेकिन यह मुझे आज ही मालूम हुआ कि मैं पूरी तरह तुम्हारी नहीं हूँ, कि मै पूरी तरह समर्पित नहीं हूँ । सो आज ही तुम्हारे सामने खड़ी हूँ कि मुझे काला मुँह कर जाने दो । अपनी कृपाके नीचे मुझे एक क्षण भी मत टिकने दो । तुम अपनी कृपाकी छाया तो उठाओगे नहीं, तब मुझे ही इजाजत दो कि मैं उसे कलंकित न करूँ ।..."

" सुदर्शना ! सुदर्शना !! "

" जान कर मुझसे तुम्हारा अमंगल न होगा । तुम्हारे प्रेमको मैं जूठा न बनाऊँगी । तुम्हारे प्रेमको, मै विफल नहीं कर सकती । तुम्हारेसे पतिको पाकर मैं घरको आनन्दसे भरा क्यों न रख सकी ? घरपर क्यो सदा उदासीकी छाया आ-आ मँड़राती रही ? क्यो हमारे घरमें शून्यता जमी रहती थी जब कि वहाँ पूर्णता उमगी रहनी चाहिए थी ? कारण मैंने आज जाना है । मेरे समर्पणमे त्रुटि थी, मेरे पातिव्रतमे शल्य था । मेरे मनमे चोरी थी, चलनमे खोट थी । अब मैं तुम्हारे दानको लांछित नहीं करूँगी ।—"

" सुदर्शना ! सुदर्शना !! "

" देखो, बादल गरजता है । आसमान काला है । बिजली तड़पती है । मैं आज इसी काली दुनियाँमे चली जाऊँगी, आसमान ऊपर होगा, धरती नीचे । और मेरा हृदय और उसके भीतरका पाप-पुण्य मेरे साथ । मेरे कलंककी छाया मुझ तक ही सिमटी रहेगी, मुझे ही डसे रहेगी, वह छूनेको न बढ़ेगी । "

पति कुर्सीसे उठ आया, कुर्सीकी पुश्तपर रखे हुए पत्नीके हाथोंपर अपने हाथ रखकर और उसकी आँखोंमें देखते हुए उसने कहा—

पत्नी कुछ धर-उठा करती ही रही और चुप रही ।

पति फिर टाँग सामने फैंककर सिगार पीने लगे और धुआँ देखने लगे। थोड़ी देर बाद सुदर्शना उनके सामने आकर एक कुर्सीकी पीठको पकड़कर खड़ी हो गई । कुछ देर खडी रही और पतिको पता न चला । सुदर्शनाने कहा—मुझे तुमसे एक बात कहनी है ।

आँख खोलकर सामने खडी सुदर्शनाकी पूरी मूर्तिको देखकर पतिने कहा—कहो ।

सुदर्शनाने कहा—तुम मुझे क्या समझते हो ?

पतिकी समझमे एकाएक यह बात नहीं आई । सामने कुर्सीकी पुश्तको पकड़कर खड़ी होकर भारी चेहरेसे जब पत्नी पूछती है–'तुम मुझे क्या समझते हो,' बिना भूमिका, बिना प्रस्तावनाके जब वह एक-टूक यही पूछती है कि 'तुम मुझे क्या समझते हो ?' तब उसे क्या समझना होगा ? पतिने कहा—मै तुम्हे अपने प्रेमकी प्रतिमा, प्राणकी प्राण, घरकी रानी, आँखकी पुतली समझता हूँ मेरी रानी, और क्या समझता हूँ ?

और उन्होंने जोरसे सिगारमेसे एक दम खींच लिया और मुँहको गोलाकार बनाकर धुएँको कुडलाकार रूपमे छतकी ओर धीमे धीमे उड़ा दिया ।

पत्नीने कहा—मैं पतिव्रता नहीं हूँ ।

कहकहेके साथ पतिने हँसकर कहा—तुम मेरी रानी हो, मेरी मलका, मेरी जारीना !

"आजसे पहले मैं यह नहीं जानती थी । आज जानी हूँ, तो तुमसे कहने आ गई हूँ ।..."

पतिका सिगार हाथोमे रहा और वह सामने मानो उड़ गए हुए धुएँमें खोये, गुम हो रहे ।

"...तुमसे मैने बहुत प्रेम पाया है, बहुत आदर लिया है । वह सब मैने चोरी की है । ठगी की है । मैं उसकी मालिक बननेवाली कोई न थी । मैं अपात्र थी । आज मुझे पता चला है कि अपना सब कुछ मैं तुमपर नहीं वार चुकी । भीतर ही भीतर कुछ बच गया था जो, आज देखती हूँ, तुम्हारे चरणोंमें मैं अर्पण नही कर सकी थी ।...यों न देखो...मुझे देखो । मैं तुम्हें धोखा देती रही । तुमसे पाती सब कुछ रही, देनेमे चोरी करती रही ।..."

पतिने किं-विमूढ भावसे कहा—क्या है ? क्या बात है ?

"बात कुछ नहीं है। मैं अब तुम्हारे प्रति चोर नहीं रहूँगी। विश्वासघातिनी नहीं रहूँगी। तुमने मुझे इतना दिया, उस सबके लिए मैं ऋणी भी तो नहीं हो सकती, कृतज्ञ भी तो नहीं हो सकती। क्यों कि वह सब मैंने ठगाई की है। लेकिन अब जाननेके बाद तो मैं कुछ भी लूँगी तो जलूँगी। मैं पतिव्रता नही हूँ। आज मैं तुम्हें यही बताती हूँ कि मैं पतिव्रता नहीं हूँ।..."

अविश्वस्त, किंतु संतप्त, पतिने कहा—

"तो क्या है ? पतिव्रता नहीं, तो तू क्या है ?"

"...मैं तुम्हारे घरसे निकाल देने लायक हूँ। मैं सच कहती हूँ, जान बूझ-कर मैं तुम्हें धोखा देनेवाली न थी। लेकिन यह मुझे आज ही मालूम हुआ कि मैं पूरी तरह तुम्हारी नही हूँ, कि मै पूरी तरह समर्पित नहीं हूँ। सो आज ही तुम्हारे सामने खड़ी हूँ कि मुझे काला मुँह कर जाने दो। अपनी कृपाके नीचे मुझे एक क्षण भी मत टिकने दो। तुम अपनी कृपाकी छाया तो उठाओगे नहीं, तब मुझे ही इजाजत दो कि मै उसे कलंकित न करूँ।..."

"सुदर्शना ! सुदर्शना !!"

"जान कर मुझसे तुम्हारा अमगल न होगा। तुम्हारे प्रेमको मैं जूठा न बनाऊँगी। तुम्हारे प्रेमको, मै विफल नहीं कर सकती। तुम्हारेसे पतिको पाकर मैं घरको आनन्दसे भरा क्यो न रख सकी ? घरपर क्यो सदा उदासीकी छाया आ-आ मँड़राती रही ? क्यों हमारे घरमे शून्यता जमी रहती थी जब कि वहाँ पूर्णता उमगी रहनी चाहिए थी ? कारण मैने आज जाना है। मेरे समर्पण-में त्रुटि थी, मेरे पातिव्रतमे शल्य था। मेरे मनमें चोरी थी, चलनमे खोट थी। अब मैं तुम्हारे दानको लाछित नहीं करूँगी।—"

"सुदर्शना ! सुदर्शना !!"

"देखो, बादल गरजता है। आसमान काला है। बिजली तड़पती है। मै आज इसी काली दुनियाँमें चली जाऊँगी, आसमान ऊपर होगा, धरती नीचे। और मेरा हृदय और उसके भीतरका पाप-पुण्य मेरे साथ। मेरे कलंककी छाया मुझ तक ही सिमटी रहेगी, मुझे ही डसे रहेगी, वह छूनेको न बढ़ेगी।"

पति कुर्सीसे उठ आया, कुर्सीकी पुश्तपर रखे हुए पत्नीके हाथोंपर अपने हाथ रखकर और उसकी आँखोंमे देखते हुए उसने कहा—

"सुदर्शना, मुझे बताओ क्या है ? इस तुम्हारे धड़कते हुए दिलको मैं समझना चाहता हूँ, समझ नहीं सकता। मैं नहीं समझता, आत्मा। मैं नहीं समझता, धर्म। मैं नहीं समझता, सदाचरण। लेकिन मैं समझता हूँ, प्रेम। सुदर्शना, मै तुम्हे प्रेम करता हूँ। जानता हूँ, तुम मेरी समझसे बाहर रही हो। मुट्ठीकी पकड़मे समाई नहीं हो। तुम मुझ सदा बचा ही गई हो। लेकिन सुदर्शना, मै तुम्हे प्रेम करता हूँ। मैं शराबी हूँ, ठीक है। मै ऐबी हूँ, ठीक है। मैं झूठा हूँ, ठीक है। लेकिन मै तुम्हे प्रेम करता हूँ। सुदर्शना, तुम यह जानती हो। मैंने कभी पतिव्रतके बारेमे पूछा है ? मैंने क्या कभी अपनेको उसका हकदार समझा है ? मैंने क्या अपनेमे उसकी लियाकत पैदा की है ? कुछ चाहूँ, इससे पहले मै अपनी तरफ बिना देखे कैसे रहूँ ? मुझे नहीं चाहिए कुछ, सुदर्शना, बस तुम मुझे प्रेम दो। प्रेम न दो, तुम मेरे प्रेमकी स्वीकृति भर दो। तुम देखोगी, मेरी शराब भाग जाती है, ऐब छूट जाते है, झूठ उड़ जाता है। सुदर्शना, मैं तुमसे कम बोला। तुमसे अलग-अलग रहा। क्यो कि मेरा मुँह न खुलता था। मुझे हिम्मत न होती थी। क्यो कि मै जानता था—मैं खोटा हूँ। लेकिन तुम छूटने या छोड़नेकी बात करोगी तो खोटा दिल भी थोड़ा-बहुत तुमपर अपना दावा बताना चाहेगा, सुदर्शना। आज इस गरजते आसमानके नीचे खड़े होकर मै कहता हूँ, तुमपर मेरे पतिपनका कोई दावा नही है। मेरे प्रेमका ही जो समझो दावा है। और वह प्रेम किसी तरहकी कैफियत तुमसे नही माँगता। मै असभ्य हूँ, व्यसनी हूँ, दुराचारी हूँ। मैं माने लेता हूँ, मैं हूँ। लेकिन तुम्हे मै नही छोड़ सकता हूँ। तुम छोड़ना भी चाहो, तो भी एक बार तुम्हारे हाथ जोरसे पकड़ कर मै कहूँगा—'मै नही, मैं नही छोड़ सकता'।"

सुदर्शनाके आँसू एक एक कर टपकने लगे। पतिकी भी वाणी भरी गई थी और चश्मेके नीचे उसकी भी आँखे सजल हो आई थी।

सुदर्शनाने कहा—मेरे स्वामी, मुझे भरोसा है सब कुछ अच्छा ही होगा। आपके प्रेमको मै स्पर्श नही कर सकती, यह मेरा ही दुर्भाग्य है। मै कैसे उसे छूनेका साहस करूँ जब कि मै उसके प्रतिदानमे चूकती हूँ। नहीं, ऐसा मै नही कर सकूँगी। (ओले तड-तड़ पडे, दरवाजेके शीशोपर वे छर्रोंसे आकर लगे) स्वामी, तुमने मुझे कब टोका है ? (घुटनो बैठकर) मै जानती

हूँ तुम्हारा प्रेम वह है, जो तुमसे अलग होती हूँ तब भी मुझे नहीं रोकेगा। मैं —"

सुदर्शनाने पकडनेके लिए पतिके पैरोकी ओर हाथ बढ़ाया—पतिकी ऑखें सूनी थीं। पत्नीके हाथकी उँगलीका स्पर्श उसके पैरको हुआ कि अतिशय विपन्न भावसे पतिने जोरसे अपने पैर खींच लिये। वह तेज चालसे कमरेमें चलने लगा। चलने लगा और चलने लगा। चलते चलते अतमे एक आलमारीमेंसे बोतल खींची, गिलास लिया और मेजके सामने बैठ गिलासपर गिलास पीने लगा।

सुदर्शना ऑसूभरे नैनोसे धीरे धीरे उठी और कमरेसे बाहर निकल गई।

ॐ

अँधेरी रात है। बूंदे पड़ रही हैं। बादल घुमड़ रहे हैं। सब सुनसान है। बिजली अपनी चमकसे अँधेरेको और घना करके छिप जाती है। और जयराज सिरपर छतरी ठहराये, कम्बल ओढ़े, लम्बे डग बढाता हुआ चला जा रहा है। छतरी बेकाम हो चुकी है फिर भी सिरपर है। कम्बल पानीसे भीगकर भारी हो रहा है। और जयराज चला जा रहा है। बस्तीके भीतर ही एक चौराहेपर एक बिजलीकी कौधने उसे दिखाया—कोई स्त्री भीगती हुई सड़कके किनारे खड़ी है। पास पहुँच कर जयराजने कहा—कौन हो, बाई?

तब तक गुप अँधेरा हो गया था। उस अँधेरेमेंसे ही सुदर्शनाने कहा—स्टेशन जाना चाहती हूँ। कौन सड़क जाती है?

जयराज नही पूछ सका, वह कौन, क्यो इस समय स्टेशन जाना चाह रही है? उसने कहा—मै स्टेशन ही जा रहा हूँ।

इतना सुनते ही वह आगे बढ़ आई और जयराजके साथ हो ली।

उस समय एकाएक जयराजके मनमे उदय हो आया कि ओले-पानीमे, अँधेरे एकान्तमे, दुनियाको आराममे बन्द और सोती छोड़कर उसका साथ पकड, स्टेशन चलनेवाली यह नारी सुलोचना अथवा सुनयना अथवा सुवदना नहीं है। वह तो कोई विशेष विशिष्ट ही है जो किसीकी प्रतिनिधि नही है, मात्र स्वय है। और वह भी भारत-राष्ट्रकी सेवामे समर्पित अगण्य सेवकोंमेंसे एक नगण्य सेवक नही है जो जयराज न होकर प्रियराज अथवा बलराज हो सकता है। नहीं, इस सहस्रो नर-नारियोकी बस्तीके बीचोबीच निर्जन चौराहेपर, जिसकी

ओरसे जगत् बेखबर है और बन्द है, इस झरते आसमानके नीचे और आप्ला-वित पृथ्वीके वक्षपर, वह, देश और राष्ट्र, सेवा और साधना, इन सबसे ऊँचा होकर विश्वात्माके समक्ष इस अकेली नारीके बराबर, अत्यन्त एक और अकेला, ठेठ और वास्तव जयराज होकर चल रहा है। वह सब ओरसे मुक्त है, स्वयं है। इस अँधेरेके गर्भमें सब शंकाओंके बीचमे सारवान्, सब व्यर्थता-ओंके बीचमें अव्यर्थ।

और, सुदर्शना ? जयराजको जान लेनेमे उसने कब पलभर भी खोया है ?

जयराजने कहा—इधर छतरीके नीचे आ जाओ। बहुत पानी है।

सुदर्शना पास आकर सटी-सटी चलने लगी। 'कौन हो ?' 'क्या हो ?' 'क्यों ऐसी हालतमे हो ?—' ये प्रश्न भी कहनेके लिए ऐसे समय एक दूसरेके बीचमे हो सकते हैं, यह बात उन दोनोंके मन किसी ओरसे उठकर आई ही नहीं। मण्डलाकार विश्वके बीचमे, अँधेरेमे ढँके, अस्पष्ट राहपर एक छतरीके नीचे वे ही दोनो बराबर बराबर जा रहे हैं। वे ही दो हैं। वे ही दोनों आपसमे एकके लिए दूसरे हैं। चारो ओरका और सब साथ उनसे छूटा है।

तीसरा कहीं भी कोई और नहीं है। इतना वे जानते हैं। यही उनके लिए बहुत है। यही उनके लिए बस है। यहाँ उन्हे और क्या इष्ट शेष है ?...

चलते चलते जयराजने कहा—ओ ! तुम तो सारी भीग रही हो, लो यह कम्बल ले लो।

भीतर कमरसे लिपटा कम्बल खोलकर जयराजने उसे उढ़ा दिया। उस कम्बलको ओढ़कर वह चुपचाप फिर साथ चलने लगी।

पानी थोडी ही देरमे खूब पड़ गया था। जगह जगह उसकी सतहे बिछी थीं। सड़कपर छोटी छोटी तलैयाँ बन रहीं थीं, वे बिजलीके प्रकाशमें थोडा हँस लेतीं और फिर अँधेरा उन्हे गँस लेता।

सुदर्शनाका छपसे पैर एक तलैयामें पडा। पानी उछलकर जयराजकी टाँगोपर लगा। और सुदर्शनाने एक धीमी 'ऑय !' की।

"क्या हुआ ?"—जयराजने पूछा और वह रुक गया।

सुदर्शना, चुप, पैर निकाल कर जरा लँगड़ाती हुई फिर आगे बढ़ चली।

"मोच आ गई ?"

सुदर्शना, चुप, आगे बढ़ती ही चलती रही। जयराज भी दोनोंके सिरोंपर

छतरी सम्हाले रखे चल रहा था। रुककर एकाएक उसने कहा—पैरोंमें जूते भी नहीं हैं?

उसने अकस्मात् बिजलीके प्रकाशमें देखा था कि पैरोंकी उँगलियाँ बारीक बारीक और लम्बी हैं और वे नगी हैं। वे पैर नन्हें गोरे गोरे हैं, और चले नहीं हैं, यह भी अनायास उसे दीख गया।

सुदर्शना चुपचुपानी चलती ही गई। और देखा गया कि एकाएक जयराजकी चालमें भी तेजी आगई। उसने मानो परुष पड जाकर कहा—जल्दी चलो, मुझे रेलसे जाना है।

सुदर्शना तेज तेज़ चलने लगी। उसका वह पैर लँगडा ही रहा था। किन्तु उस ओरसे हठात् मुँह मोडकर जयराज तेज ही चलता रहा। कुछ देरमें चालमें एकाएक मद्धम होकर उसने कहा—ओह तुम्हें मोच आई है! मुझे माफ करना।

उसके बाद काफी दूर तक वे लोग निःशब्द, बन्द, एक छतरीके नीचे सटे ही सटे चलते रहे। वर्षा धीमी होती दीखती थी। बादल फट रहे थे। जहाँ तहाँ वायुके स्पर्शसे राहके पेडोंके पत्तोपरसे कुछ टप-टप बूँदें टपकती थीं। जुगनू मुँह चमकाने लगे थे। रात सन्नाटा भर रही थी। अँधेरेमें कम स्याही रह गई थी। और वे दोनो एक दूसरेकी साँस सुनते, मौन और मानो परस्पर अनपेक्ष्य चले जा रहे थे। स्टेशनके पासके सिगनलकी लाल लाल आँखे दीख आईं। कहीं हराहरा भी कुछ दिखता था। मानों नींदके अँधेरेके पटपे टँके रगीन सपने हो।

"कहाँ जाओगी?"

चुप।

"मेरी गाड़ी साढ़े ग्यारह बजे चली जाती है!"

चुप।

"ओह, जाडा लग रहा है? वह स्टेशन आ गया। आज बहुत जाड़ा है। कम्बल ठीक लपेट लो। (सुदर्शनाके कम्बलको हाथ लगाकर) ओः यह भी खूब तर हो गया। खैर। स्टेशनपर देखें आग-वाग कुछ मिलती है क्या? कम्बल भारी है? देखो, यों नहीं, इस तरह ओढ़ो।" और उसे कम्बल ठीक उढ़ा दिया।

सुदर्शना सब ओरसे छुटी, इस समूचे अँधेरे, सन्नाटेभरे शून्यके बीचमेंसे निरुद्देश्य अनजानी राहपर जिसके साथ चली जा रही है उसीके प्रति वह अपनेमें

शंका कहाँसे लाये ? वह चली ही जा रही है, शब्दहीन, सन्देहहीन, निर्व्याज और सम्यग्भावसे, जिसे करनेको न प्रश्नकी आवश्यकता है न उत्तरकी अपेक्षा है। जिसमे जिज्ञासाका अवकाश नहीं है। भवितव्यताके सम्बन्धमें किसी प्रकारकी आशंकाके लिए गुंजाइश नहीं है। संपूर्ण, असंदिग्ध, निःकांक्ष्य, और निश्शंक, वह चली ही जा रही है। कहाँ ?—नहीं जानती। क्यों ?—नहीं जानती। और जाननेकी इच्छा भी हो, इतना भर भी अभाव, इतना भी रिक्त उसमें नहीं है।

स्टेशनके पास पहुँचते पहुँचते उसने कहा—आपकी गाड़ी साढ़े ग्यारह बजे चली जाती है ?

बारिश रुक गई थी और हवा भी थमी थी। तीसरे दरजेके मुसाफिरखानेमे एक दो व्यक्ति गठरी हुए पड़े थे। दफ्तरमे बाबू काउंटरपर माथा टेके ऊँघ रहा था। दफ्तरके बाहर एक बेंच पड़ी थी। भीतर तारकी डमी गट्ट-गर-गर कर रही थी। बाबूका सिर हथेलीपर टिका था और मुँहसे लारसी निकल रही थी। वह कम्बलमे लिपटा था।

जयराज सुदर्शनाको बेंचपर बैठा छोड़कर दफ्तरमे आया। उसने कहा—बाबूजी !

बाबू सपना ले रहा था। उसने चौंककर आँखें खोलीं। मुँहकी लार पोंछी। तभी उसने पिछले स्टेशनसे रेलके छूटनेकी घंटी सुनी। और तभी सुना, एक आदमी कह रहा है—' बाबूजी ! '—उसने कहा—

" क्या है ? "

जयराजने कहा—एक कम्बलकी जरूरत है। आप दे सकेंगे ?

बाबूने अँगडाई ली, घड़ीकी ओर देखा, कम्बलको उतार कर अलग रक्खा, कहा—' नहीं है, बाहर निकलो। '

जयराजने कहा—सरदी ज्यादा है। अभी बारिश हो कर चुकी है। कम्बल आपको लौटा दिया जायगा।

नींद-जडी मुद्रासे बाबूने कहा—' नहीं है, दफ्तरसे बाहर जाओ। '

जयराजने आगे बढ़कर कम्बल उठा लिया, कहा—" कम्बल तो यह है। तो आपका नहीं है ? यह यहीं पहुँच जायगा " कहकर कम्बल लेकर जयराज चुपचाप बाहर निकल गया।

सुदर्शना बेंचपर बैठी सामने देख रही थी। रेलें बिछी थीं और आपसमें

कटती–फँटतीं जहाँ तहाँ चली जा रहीं थीं । उनपर पानीकी चमक ठहरी थी, और स्टेशनके धुँधले प्रकाशमें वहाँ कभी कभी चाँदीकी किरनें बिछीसी लगती थीं। सुदर्शना कम्बल ओढ़े थी। भीतरके वस्त्र उसके भीगे थे। उसे सरदी लग रही थी और रह-रहकर वह काँपती थी। ओढ़े हुए कम्बलमेंसे भी पानी पार हो गया था और वह बदनको ठंडा ठंडा लगता था।

जयराजने कहा—कम्बल भीगा है, उतार डालो। लाओ, मैं फैला दूँ।

उसने कम्बलको हाथ लगाया और सुदर्शनाने उसे झट उतार कर अलग कर दिया।

जयराजने बेंचके पीछे उसे सुखा दिया और नया कम्बल सुदर्शनाके हाथमें देते हुए कहा—लो इसे ओढ़ लो। कुर्ता गीला है, लाओ मुझे दो, निचो-ड़कर सुखा दूँ।

सुदर्शनाने सुना, कम्बल हाथमें लिया और बराबर बेंचपर रख दिया, ओढ़ा नहीं।

जयराजने एक एक कर अपने सब कपड़े उतार दिये। वह सिर्फ धोतीके ऊपर बनियान पहने हुए था।

सुदर्शनाने कम्बल बराबरमे रख दिया और यह नहीं कहा कि कम्बल यह रखा है, तुम ओढ़ लो। और लटके हुए पैर बेंचपर लेकर गीली धोतीके पल्लेको तान, दोनों हाथोंके बीच अपना सिर लिए वह ऐसी बैठ गई मानो अब कुछ देखना नहीं है, करना नहीं है। जयराज व्यस्त होकर उसके पास बेंचपर आ बैठा और कम्बल खोलकर उसे उढ़ाने लगा।

सुदर्शना मानो नींदमे थी, उसे कुछ जैसे पता नहीं चल रहा था।

जयराजने कहा—कुर्ता उतार दो और जरा लेट जाओ, आराम कर लो।

सुदर्शना मानो सुषुप्तिमे सब कुछ करने लगी। वह कुर्त्ता भी उतार देगी, लेट भी जायगी। उसने कुर्त्ता उतारकर अलग कर दिया और जैसे नींदकी झोकमे वह झुकी पड़ने लगी। बीचहीमे सम्हाल लेकर जयराजने कहा—

"सुदर्शना, सुदर्शना! देखो गिर मत जाओ, ठीकसे लेटो।"

और सुदर्शना उसकी गोदमें ढुरक पड़ी।

जयराज न समझ सका कि क्या करे और वह अपनी उस गोदको यथाव-स्थित रखकर बेंचपर इस प्रकार बैठ गया कि अब तो मानो उसे उठना नहीं

है। उसकी गोदमें यों पड़ी हुई असहायाको किस प्रकार हटा देकर वह यहाँसे उठेगा? वह इस भाँति बैठ गया कि गोदवालीको कोई असुविधा न हो। सुदर्शना गोदमें गिर पड़कर, कुलबुला लेकर मानो वहाँ अपना स्थान ठीक करने लगी। पैर और हाथ चलाकर उसने कम्बलको ठीक ठीक ऊपर ले लिया। कम्बल इस भाँति कुछ जयराजके ऊपर भी आ गया। घोंसलासा बनाकर वहाँ फिर अपनी जगहको ठीक ठीक करके उसकी गोदमें जो चिड़िया चिपक सोई है, जयराज मानो थपका-थपकाकर उसे सुलाना चाहने लगा। उसने कहा—सरदी लगती है?

सुदर्शना उत्तरमे गोदमें कुछ कुलबुलाकर और सिमट गई।

जयराज अत्यन्त उत्तिष्ठ होकर सामने देखता हुआ बैठा रहा।

उसके निर्वस्त्र गातपर कभी अत्यन्त शीतल कोमल-स्पर्श देहका स्पर्श होता था। वह देह मानो उसके गातपर अपनेको छोडे दे रही थी। ऐसे समय उसके शरीरमे बिजली दौड जाती थी। तब वह जपता—राम, राम, राम, राम।

राम क्या है उसने नही जाना। वह कभी नहीं जानेगा। पर रामके नामके जपको वह ऐसा कातर बनकर, ऐसा प्रार्थी बनकर थामे रहता मानो यही उसका अन्तिम सहारा है। वह जल्दी जल्दी कहता—राम, राम, राम, राम।

चिड़िया घोंसलेमें अब आरामसे सोई पड़ी है। आरामसे? हाँ, आराम जब कम होता है, वह कुलबुलाकर करवट ठीक कर लेती है। उसकी धोती भीगी है सही, पर कम्बलके नीचे उसे गर्मी भी मिल रही है।

जयराजको लगता है, इस भटक गई हुई चिड़ियाकी छातीकी धड़कन उसे सुन पड़ रही है। उसे मालूम होता है कि उसे चैन मिल रहा है। उसे मालूम होता है कि उसकी अपनी देहमे भी गर्मी आ रही है। मालूम होता है कि उसकी देहमे उद्धतता भी चढ़ती आ रही है। कि...और जल्दी-जल्दी मन-मनमे वह कह रहा है—राम, राम, राम, राम।

सुदर्शनाने 'अँह' किया, 'उँह' किया, और इस बार जो उसने अपनी करवट ठीक की, तो दोनो बाँहे जयराजके इधर उधर पड़ गई और शरीरका उत्तर-भाग जँघाओंपर आरामसे टिक गया।

उस समय जयराजका साँस तेजीसे आने जाने लगा। वह सीधा उठकर भाग जा सकता तो भाग जाता। पर वह बालभर भी हिला डुला नहीं। उस शरीरके कोमल दबावको और उस जीवित नारी-मांस-स्पंदनको जो श्वास-प्रश्वासके साथ नीचे ऊपर होता था अपने ही शरीरपर सटा पाकर वह उस शरीरको निस्पन्द जड़, अचेतन बना देना चाहता था। पर——वह जप रहा है–राम, राम, राम, राम।

इस जगतीतलपर हे राम यह क्या है?...हे राम, राम राम, राम।

इतनेमे प्लेटफार्मको हिलाती हुई रेल स्टेशनपर आई और जयराजकी आँखोंके सामने ठहर गई। जयराजकी गोदीमें पडी एक चिड़िया सुखकी नींद सो रही है। वह अब क्या करे? इस गाड़ीसे तो उसे जाना है। रेलगाडियोंकी खिड़कियोंसे रोशनी आरही है। रेलगाड़ीके उन कमरोंमे लोग सोये होंगे और सबेरा होगा कि वे अपने अपने घर होगे। उसमे बारिश भी नहीं जाती है और हवासे बचनेको खिडकियाँ भी लगाई जा सकती हैं।

उसने मानो अपनी टाँग कुछ हिलाई। उसके मनमें आया कि वह कुछ कदम आगे बढ़कर एक दूसरे दरजेके डिब्बेमें पहुँच सकता है। वहाँ बिछा गद्दा होगा, जो सूखा होगा। हाँ, यह बेचारी भी क्या दूसरे दरजेकी बैंचके गद्देपर अधिक आराम नहीं पायगी? कुछ मिनटोंमें फिर कहाँ रहेगा हरिपुर और कहाँ रहेगा स्टेशन। उसने मानों चाहा कि उसे जगा दे और कहे कि देखो, रेल आ गई है, चलो, चले। लेकिन मानों उसने सहसा ही अपनेको सावधान कर लिया। वह स्थिर दृष्टिसे रेलको देखता रहा, जो उन दोनोंको आराम भी दे सकती है और छुटकारा भी दे सकती है। वह रेल अभी चल देगी और बातकी बातमे हरिपुरसे दूर हो जावेगी। उसने अपनी गोदमें सोई हुई नारीको देखा। मानों पूछना चाहा–क्या तुमको सोना ही है? क्या मेरी गोद सदा इसी तरह बनी रहनेको है? क्या तुम्हे कहीं आना जाना नहीं है? रेल आई है, उठो, खड़ी होओ।

लेकिन वह चिड़िया आरामसे साँस लेती [illegible] रही।

जयराजने अपनेको कुछ समेटा-सा। उसने जोरकी आवाज देकर एक आदमीको पास बुलाया और उससे कहा—[illegible] बिलासपुरका एक टिकट ला सकते हो? यह उसने इस तरह कहा कि सुदर्शनाको बिना सुनाई दिये न रहा।

सुदर्शना इसपर गोदमें कुलबुलाई और उठ बैठी। बैठकर झट ऊपरसे कम्बल उतार कर अलग करते हुए उसने कहा—लो।

जयराजने कहा—क्यों–क्यो ?

सुदर्शनाने उसी भाँति कम्बल उसकी ओरको अलग थामे रहकर कहा—लो, तुम जाओ।

उस समय जयराजको कुछ भी नहीं सूझा। वह सुदर्शनाको देखता रह गया। सुदर्शनाकी आँखोमें न अभियोग था, न निराशा। वे आँखे कहती थी कि वह कुछ नहीं है। और तुम जहाँ चाहो चले जाओ। वह दुनियामे जी चाहे जैसे रह लेगी। तुम उसके लिए अपना एक पल भी क्यो खोओगे ? निरुपाय ?–तो रह लूँगी निरुपाय। लेकिन तुम अवश्य ही चले जा सकते हो। वह अपनी फैली बाँहोमें कम्बल थामे अपनी इकहरी गीली धोतीमे बैठी है, कि लो और जाओ, और भगवान तुम्हें सुखी रक्खे।—मै ? मै सब ठीक हूँ।

जयराजने कहा–क्यों, क्या बात है ?

सुदर्शनाने कहा–इस गाड़ीसे तुम्हे जाना है, तो लो।

जयराजने कहा–कि, कि कोई बात नहीं। दूसरीसे चला जाऊँगा।

सुदर्शना कुछ क्षण तो उसे देखती रही। फिर कम्बल खोल और उसे अपने ऊपर लेकर चुपचाप उस गोदीहीमें लेट गई।

इतनेमे रेलने सीटी दि। वह सरकती जाने लगी। जयराज पराजित दृष्टिसे जाती हुई रेलको सामने देखन लगा। वह सामनेसे निकलती हुई चली गई। निकल जानेपर उसकी जगहमे समाकर अँधेरा फिर वैसा ही सुन्न खडा हो गया।

उस शून्यको भेदकर टिकनेयोग्य आधार पानेके यत्नमे जयराज आँख गड़ा-कर उस अँधेरेको देखने लगा। पर, वहाँ कुछ न था। शून्य सूना था, रेल निकल गई थी और सुदर्शना गोदमे सोई थी। वह कहने लगा–राम राम, राम।

रेलके निकल जाते ही उसे बेहद सरदी मालूम होने लगी। उसने हाथ मले, सीटी बजाई, सिर खुजलाया, फिर वह कम्बलके नीचे लेटी हुई सुदर्शनाके सिरको धीरे धीरे थपकाने लगा।

सोई-सोई सुदर्शनाने भीतरहीसे कूजकर कहा—' कम्बल ओढ़ लो। सरदी बहुत हो रही है। ' और एक हाथसे उसने कम्बलको ऊपर उठा दिया। जयराजने भी कम्बलको अपने कंधों तक ले लिया और उसके हाथकी

उँगलियाँ कमर तक गए और फैले हुए सुदर्शनाके बालोंमें फिरने लगीं। उसकी उँगलियाँ अव्यवस्थित पडे और ठडे हो रहे बालोंको सुरझाती और उरझाती सुदर्शनाके सिरसे कटितक और कटिसे सिर तक अलस-गतिसे फिर रहीं थीं और वह वेगपूर्वक राम-राम जप रहा था।

सुदर्शनाका शरीर उसके गातपर दबाव देकर चिपटता ही आया। तब उसने सुदर्शनाके बालोमें घूमते हुए हाथोंको एक दम उठा लिया और वह सीधी निगाहसे अँधेरेमें देखने लगा। दुनियासे हटा और उसके विधि-निषेधसे मुक्त, दो घडी रुककर वहाँसे चले जानेके लिए जब सब आखोंके अभावमें यहाँ वह स्टेशनकी बेंचपर बैठा है, तब क्या है जिसकी उसे आशंका हो? क्या है जिसे उसे रोकनेकी जरूरत हो? क्यो नहीं निर्भय होकर सब कुछके प्रति वह अपनेको खोल देता है? द्वन्द्व काहेका? 'न'कार किसके प्रति?

पर उसकी देही गरमा रही है और वह कह रहा है,—राम, राम, राम, राम।

सुदर्शना क्या चाहती है? लेकिन, वह तो कुछ भी नही चाहती। वह सो रही है, क्योंकि यह सोनेका समय है और उसकी आँखोंमें नींद है। वह गोद-मे सो रही है, क्योंकि यह गोद उसके और बेंचके बीचमे आगई है। एक-वस्त्रा होकर सो रही है, क्योंकि और कपड़ा भीगने पर सुखाने डालनेके लिए उससे माँग लिया गया है। वह तो इस अँधेरे पहरमे सोना ही चाहती है, क्यो कि यह सोनेका समय है और उसकी आँखोमे नींद है।

आजकी रातमे सब कुछसे छूटकर, आकाश और धरतीके बीचमे अपने लिये वह अकेली बन गई है। वहीं, उसी खोखले अज्ञातमे यह आदमी आ मिला है, जिसको इतना जानती है कि वह जयराज है। इसके ऊपर और नहीं उसे जानना मिला कि वह क्या है? जयराजमे उसको क्या निषिद्ध है? विधि-निषेध, इस सबसे तो वह परे हट आई है। किसके लिए अब उसमे अपनापन है कि किसीसे बँधने और किसी ओरसे हटनेका विधान उसके लिए भी हो? जब कुछ उसने अपने लिये अनिवार्य्य नहीं रक्खा है, तब निषिद्ध भी क्या उसके लिए हो सकता है?

इस लिए चिपट चिपटकर, कुलबुलाकर और करवटें ले-लेकर ठीक आरामकी व्यवस्था बनाकर वह इस गोदमें लेटी है।...हम पूछें, क्यों बालक माँकी गोदके साथ अधिकसे अधिक घनिष्ठ न हो? बालकके आरामपर कौन उँगली उठा सकता है? उसमें लज्जा कहाँ है, उल्लंघन कहाँ है, उस रसमें मैल भी कहाँ है?

और सुदर्शना जयराजकी गोदमें लेटी है, क्योंकि दुनिया दखल देनेको उपस्थित नहीं है और यह समय सोनेका है। उसमे बाधा कहाँ है? अविश्वास कहाँ है! उसने चिन्तापूर्वक कुलबुलाकर उस गोदमें अपने अतिशय आरामकी व्यवस्था कर ली है। उसने वहाँ तकिया भी बना लिया है, गद्दा भी पा लिया है और रजाईकी गर्मी भी उसने बना ली है। जगसे टूटी, अतीतसे परोक्ष, सब तरहके नातोंके अभावमे वह निरी शावक, निरी चिड़िया बनी यहाँ आरामसे सो रही है। कल क्या था,—राम जाने। कल क्या होगा,—नहीं हिसाब। अगले ही मिनट क्या हो जायगा,—नहीं प्रतीक्षा। कैफियत उसे कही भी पहुँचानी नहीं है। वह अतीतसे दबी नहीं है, वर्त्तमानसे शंकित नहीं है, भविष्यसे प्रार्थी नहीं है।

जो है, है। वह उसीमे सम्पूर्ण है, उसीमे उपलब्ध है। वह आरामसे सो रही है। और यह समय सोनेका है।

उसने कूजकर पूछा—तुम्हे नींद नही आरही है?

जयराजने अँधेरेमें आँख फाड़कर देखनेकी कोशिशसे हैरान होकर, इस मानो अपने ही भीतरसे आते हुए प्रश्नको सुना। जैसे दूरसे फिर भी बिलकुल पाससे कहीं कोई पूछ रहा है—'तुम्हे नीद नहीं आरही है?' उस समय मानो अपनेसे झगडकर उसने उत्तर फेका,—नहीं, बिलकुल नहीं।

किसीने फिर कूजा—रात बहुत हो गई है।

जयराजने जैसे आगे बढ़ती आती हुई चुनौतीको ललकारके साथ स्वीकार किया हो, कहा—हॉ रात बहुत हो गई है।

इन शब्दोकी ध्वनिके भीतर भरे अप्रेम और परुषताने मानो सुदर्शनाके भीतर पहुँचकर चैनसे कूज उठे उसके जीको ठोकर दी। वह उठ कर बैठ गई।

"क्यो, क्यो?"

बोली—मैं बैठ जाती हूँ। तुम इतने लेट लो।

जयराजने सुदर्शनाको देखा। उन आँखोमें न अभियोग था न निराशा। उनमे कुछ भी माँग न थी, स्निग्ध स्वीकृत ही थी। किन्तु जयराज फिर भी अपने आप एक व्यर्थताके बोधसे घबरा सा गया। यह नारी उससे कहे—"मैं बैठती हूँ तुम लेट जाओ?" उसने रूखे पड़कर कहा—"नहीं, मुझे नींद नहीं है।"

सुदर्शनाने थोड़ी देर बाद धीमेसे पूछा—क्या बजा होगा ?

" साढे बारह तो हो गया होगा । "

" बहुत सरदी है । "

" हाँ, बहुत सरदी है । "

कुछ देर हो गई और दोनों चुप रहे । तदनन्तर धीमे स्वरमे सुदर्शना बोली–

" तुम लेट न जाओ, मैं कहती हूँ । "

मानों सुदर्शनाके भीतरकी माताने यह कहा ।

इस निर्व्याज भावसे प्रकट हुई सुदर्शनाकी सत्-चिन्ताने जयराजके व्यर्थ भावसे कठोर हो रहे चित्तको हलकेसे छू दिया । जयराजके भीतरका तनाव मानो एक साथ ही ढील गया । उसने बिलकुल ही बदल गई हुई वाणीसे कहा—नही, नहीं...।

सुदर्शना कहना विचारती थी कि खाली बेंचपर मै आरामसे सो जाऊँगी, तुम मेरी फिकर न करो । लेकिन 'नहीं–नहीं' कहती हुई जयराजकी इस स्निग्ध वाणीके प्रति वह ऐसी कृतज्ञ हो उठी कि उसके मुँहसे यह बात निकल ही न सकी ।

उस समय दोनोके भीतर यह एक साथ ही उदय हो आया कि इन दोनोंके बीच किसी प्रश्न और किसी उत्तरकी अपेक्षा नही है । इन दोनोंमें किसी परिचयापेक्षाका भी व्यवधान नहीं है । दोनो जैसे कालके आदिसे चिर परिचित हैं, चिर अभिन्न हैं । कि दोनोंके बीचकी वाणी मौन है और शब्द झमेला हैं। शब्द मात्र अपने आवरणके ही लिए हैं । जब अपना सामना करते कठिनता होती है, जब यत्नपूर्वक अपने प्रति विमुखता अपनानी होती है—तब बीचमें मानों अन्तर डालनेके लिए वह भाषा और ये शब्द हैं । और ये दोनों तो मानों वहाँ पहुँचकर परस्परप्राप्त हैं जहाँ शब्द मौनमे ऐसा खोया है जैसे बूँद सागरमें ।

सुदर्शना कृतज्ञतामें विभोर हो गई और एक क्षण भी बैठी न रहकर फिर जयराजकी गोदमें उसी भाँति गिर गई और उसी मिनट सो गई ।

उस समय जयराजके आग्रहग्रस्त पौरुषमे हठात स्निग्धता आगई और उसने प्रतीति पाई कि सुदर्शना ऐसी अछूत नहीं है, ऐसी भूत नहीं है कि राम नामके जापसे उसकी छूत भगानी ही हो । उसके भीतरके तने हुए बंधन

शिथिल हो आए और, स्नेह-स्निग्ध, उसने सुदर्शनाके सिरको थपकते हुए कहा—सुदर्शना, तुम क्या सोचती थी कि मै तुम्हे याद करता हूँगा ?

सुदर्शनाने कहा—हमे नींद आ रही है।

यह सुनकर जयराजके मानस तथा शरीरके स्नायुओका उत्तेजन एकदम अनावश्यक होने लगा। तब उत्तरोत्तर स्वस्थ और अनुद्विग्न और अकुंठित भावसे सुदर्शनाको गोदमे लिये रहकर उसके बालोंमे वह अपने हाथ फेरता रहा।

सुदर्शनाने थोड़ी देरमे कहा—सोते नहीं हो ?

जयराजने उसका सिर थपकाकर कहा—नहीं, मुझे नींद नही आ रही है।

कुछ देर बाद उसने भी पूछा—सुदर्शना, तुम सोती हो ?

सुदर्शनाने मानो आधी नींदमे कहा—हमे जी नींद आ रही है।

सुदर्शनाके सिर और गालपर धीरे धीरे थपककर जयराजने कहा—अच्छा, तुम सोओ—कम्बल ठीक ओढ़ लो।...सुदर्शना, मै अभी सोचता था, मैं तुमसे कहूँ कि आओ, यह रात हम जागे जागे काट दे। आओ, हम बातें करे कि रात सबेरेसे मिल जाय। लेकिन तुम सोओ। मैं स्वार्थी नही बनूँगा।

सुदर्शनाने कुनमुनाकर कहा—हमे जी नींद आ रही है।

"हाँ हाँ, तुम सोओ।"

जयराज कहने लगा—मै नही जानता था सुदर्शना, कि मुझमे तुम अभी हो और तुमसे इस तरह मिलकर अपने भीतरवाली तुमको मुझे पा लेना है। और इस तरह तुम्हारे द्वारा ही मै अपनेको ज्यादा पाऊँगा, मै नहीं जानता था। अकेला चलता रहा। आशा हार हार रहती थी और जीवन रेगिस्तान लगता था। लेकिन फिर फिर कर मैं राष्ट्रके नामको पकड़ लेता रहा और चला चलता रहा। मै चलता ही चला आ रहा हूँ। मैने पीछेकी तरफ नहीं देखा, आगे राष्ट्रको रखकर वही ऑख गाड मै भागता रहा। जी हारता और मै ऑख मीच लेता। मैं कहता—'राष्ट्रदेवो भव।' कोई हिम्मत देनेवाला न था, न कोई ढाढस बँधाता था। कोई न था जिसमें अपनेको बाँट लेता, कोई न था, जो कहता, चले चलो, मैं भी हूँ। सब थे जो कहते थे, आइए, व्याख्यान दे जाइए। कोई न था जो कहे, आओ पानी पी लो। चला चलूँ, यह सबको अभीष्ट था। चलनेका सामर्थ्य और हौंस देनेवाला कोई न था। लेकिन यह झूठ था। अपनी पीठकी तरफ कैसे कोई भाग सकता

है । लेकिन मैं यही करता रहा। अपनेसे मुँह मोड़कर पाखंड करता रहा। अपनेको इकार करनेसे क्या चलेगा, सुदर्शना!"

करवट बदलते हुए सुदर्शनाने कहा---हमें जी नीद आ रही है।

"हाँ! सोओ, सोओ, सुदर्शना। मुझे माफ करो।" और वह आग्रहपूर्वक चुप हो गया।

उसने देखा, आधी रात बीत गई है। बादल उड़ गये हैं, तारे, आँख खोल-मीचकर दुनियाको देख रहे हैं।

उसने कहा—सुदर्शना सोती हो ?

नींदमे सुदर्शना कुनमुनाई—उँ–उँ–ऊँ!

"सुदर्शना, मै राष्ट्रके लिए जिया। लेकिन जीवन रस तो मुझमेंसे चुकता ही गया। कहाँसे विसर्जित करनेके लिए प्राण पाता रहा, मै नहीं जानता था। लेकिन अब तो जानता हूँ। मुदर्शना, तुम युग युग जिओ। जहाँ रहो सुखसे रहो। हम क्या उस स्रोतको जानते हैं जहाँसे हमे जीवन-रस मिलता है! लेकिन वहाँ स्नेह है, यज्ञ है। अब मैं देखता हूँ, मैं कभी अकेला न था। सदा ही अमृतसे रक्षित मै चलता रहा। सुदर्शना...तुम सोती हो ?"

सुदर्शनाने जैसे गाढ़ी नीदमे कुनमुनाया—उँ–उँ–ऊँ!

"सोओ, सुदर्शना, सोओ।" जयराजने उसके गालोपर थपकते हुए कहा—"जहाँ रहो, सुखकी नीद सोओ। एक रोज मट्टीकी गोद भी होगी। लेकिन, मै कहता हूँ वहाँ भी तुम सुखी रहोगी। मै अनत जीवन नहीं मानता। न अनत प्रणय मानता हूँ। लेकिन मेरे लिए तो प्रणयका क्षण भी अनत है। सत्य जीवनका क्षण भी शाश्वत है।...क्या पतिको छोड़कर यहाँ आगई हो ? किन्तु स्नेहमयीके लिए भगवान कहाँ नही हैं ? और उसके लिए वर्ज्य क्या है ? नियम कहाँ है ? मै आज जानता हूँ, यज्ञाहुत स्नेह सदा विजयी होता है। वह बन्धन तोडता है, क्योकि वह मुक्तिदाता है। वह कभी असयत नहीं है। क्योकि सदैव वह निर्बंध है, निर्बाध है।..."

सुदर्शनाने बेचैन एक करवट ली।

"सुदर्शना, सोओ, सोओ। मैने अपने स्नेहको अस्वीकार करना चाहा। मैंने उसे इकार कर नष्ट कर देना चाहा। आज तुमने मुझे सीख दी कि यह सब वृथा था। मेरा अहंकार था। इस अहकारमे मुझसे यज्ञ क्या बनता ? राष्ट्र-

सेवा क्या बनती ? आज मैंने जाना, स्नेह अंगीकरणके लिए है, अस्वीकरणके लिए नहीं ।...सुदर्शना, सोओ, सोओ ।"

फिर उसने तारोंकी ओर देखा । ये तारे सैकड़ों बार उसने देखे हैं । आज जैसे वे तारे उसके बिलकुल निकट, बिलकुल अपने ही हो गये हैं । उनमेंके एक एकको मानों 'तुम' सम्बोधनसे पुकार कर पूछना चाहता है–"जयरामजीकी, भाई, कहो, तुम हँस रहे हो, अच्छे तो हो !"

उसने कहा—सुदर्शना सोती हो !

सुदर्शना कुलबुलाई और अपने दोनो ओरसे कम्बल समेटकर सटा लेनेके लिए वह उठनासा चाहने लगी ।

"क्या है, क्या है ?"

"ऊँह, इधर जाने कहाँसे हवा ठडी ठडी लगती है !"

जहाँ बताया गया उधरसे जयराजने टटोलकर देखा । टाँगोके पासकी धोती बहुत गीली थी, और वहाँ बेंचमेंकी दर्जोंसे हवा आकर बेहद सर्द लगती थी । बोला—ओ हो, धोती तो बेहद भीगी है !

ऊपर अनवगुठित तारे खिले थे । काला व्योम तना था । और नीचे धरती स्थिर और नग्न, तारोंकी आँखोंके नीचे खुली और मग्न बिछी पडी थी । इस महा व्योमके तले स्त्री क्या है, पुरुष क्या है ? आवरण क्या है और निवारणता भी क्या है ?

वे सब एकदम कुछ नही हैं । मात्र सुदर्शना सुदर्शना और जयराज जयराज है । इस बोधके अतिरिक्त किसी भी और तुच्छताके लिए वहाँ अवकाश न था।

उसने कहा—सुदर्शना, धोती उतार डालो । सूखे हिस्सेकी तह करके मै नीचे बिछाये देता हूँ, तब सो जाना । यह कहकर वह अपेक्षा करने लगा कि धोती उसे मिले और वह तह करके उसे बिछा दे ।

सुदर्शनाने उठकर उसकी ओर देखा—

निकट था कि जयराजको अपने शब्दोंमें कुछ अनौचित्यका भान हो आवे कि तभी सुदर्शनाने मानो झींककर धोती अलग करते हुए कहा—हमें नींद आ रही है, हाँ तो ।

जयराजने तुरत उठकर धोतीकी तह कर दी और सूखे हिस्सेको ऊपर रख कर बिछाते हुए कहा—लो, अब लेट जाओ ।

कहकर वह चलने लगा। सुदर्शनाने अपनेको सर्दीसे अच्छी तरह ढँकते हुए पूछा—तुम कहाँ जाते हो?

"मैं जरा वक्त देख आऊँ। अभी आया।"

"नहीं..."

"अभी आया। मैं अभी आया।"

"नहीं, नहीं..."

जयराज आकर बेंचपर सुदर्शनाके पास बैठ गया। तब सुदर्शना अनायास उसकी गोदमे ढुलक गिरी। जयराजने अत्यन्त निराविष्ट भाव और हल्के चित्तसे हँसकर कहा—क्यो जी, तुम्हें यह ख्याल नहीं होता कि मैं बैठे बैठे थक भी सकता हूँ?

सुदर्शनाने करवट बदलते हुए किया—ऊँ–ऊँ–ऊँ–ऊँ।

इस कुनमुन कुनमुन कूजती हुई जयराजके गोदमें पड़ी चिडियाको क्या यह मालूम है कि यह स्टेशन है, स्टेशनका प्लेटफार्म है, प्लेटफार्मकी बेंच है और यह कि न वह चार सालकी बच्ची है और न चोंच-परवाली चिड़िया ही है? क्या उसे मालूम है कि यह स्टेशन, यह प्लेटफार्म, यह बेंच, और यह जयराज उसी दुनियाके अन्तर्गत हैं जहाँ विधि-निषेधका असद्भाव नही है और जहाँ उचित अनुचित भी है, हया शर्म भी है। पर, हमें नही मालूम। इतना हम जानते हैं कि धोतीके बिछ जानेसे सर्दी सचमुच रुक गई है और वह कूजती और कुनमुनाती बड़े सुखसे गोदीमे सोई है।

...अरे ओ, ढँके-ढँके मानव, जो दूसरेकी आँखसे अपनेको ढँकता है, सूरजकी धूपसे अपनेको ढँकता है, हवाके स्पर्शसे अपनेको ढँकता है, सचकी जोतसे अपनेको ढँकता है, अरे क्यों, कपड़ोंसे लदा-लदा ही क्या तू सभ्य है? कपड़ोंको उतारनेके साथ साथ क्या तेरी सभ्यता, तेरी संभावना तिरोहित हो जावेगी? क्यों रे, लदे-ढँके मानव?...

लेकिन सुदर्शना गीली धोतीको अलग करके कुनमुन कुलबुल करती हुई जयराजकी गोदमें पड़ी है। और जयराज अपने हाथके स्पर्शसे उसे गर्मी दे रहा है।

जयराजने कहा—सुदर्शना सोती हो?

सुदर्शनाने किया—ऊँ–ऊँ–ऊँ।

"मेरी गाड़ी चार बजे और जाती है।"

" ऊँ—ऊँ—ऊँ।"

" दो बज गया होगा!"

फिर वही—" ऊँ—ऊँ—ऊँ।"

" सुदर्शना, अब तुम क्या करोगी?"

" ऊँ—ऊँ—ऊँ।"

सुदर्शनाके गालपर, कुछ रीझमे और कुछ खीझमे, थपकते हुए जयराजने कहा—अच्छा, सोओ सुदर्शना। मत ही सुनो और सोती ही रहो।

और तारे, उज्ज्वल, अगणित, बुदियोंसे तारे, काले व्योमपर खिले टॅके थे। और धरती अनावृतवक्षा, प्रमदाकी नाई प्रतीक्षामे थकी उनके नीचे चुप सोई थी।

सबेरा होने लगा। पक्षी चहचहा आये। तारे खो गये। उस समय सुदर्शना जागकर उठी। जयराज बेंचकी पीठपर सिर टेके ऊँघ रहा था। प्लेटफार्म सुनसान था। उसने धोती उठाकर पहन ली, कुर्ता पहन लिया, फैले हुए कम्बलोंको तह कर बेंचपर रख दिया। उसके मनमे न अभाव था, न अभियोग। जैसे अब उसे कुछ पाना शेष न था। सबेरा उसे प्यारा लग रहा था और उसके मनमे पूर्णता उमगी आ रही थी। किसीके प्रति उसमे धिक्कारका लेश न था। उसने सोते हुए जयराजको देखा। जिसकी गोदमें अभी वह शावककी भाँति पडी थी, उसीके लिए उसके हृदयमे एक मातृत्वका-सा भाव हिलोर ले आया। वह सोचने लगी कि क्या मैं अपनी गोदमे तकिया देकर कम्बल उढ़ाकर इस बेचारेको नही सुला ले सकती? किन्तु इसमे इसकी नींद भग हो जायगी।

वह इस रातके गर्भमेंसे फटते उठते प्रभातको देखने लगी। उसके मनमेका सब सशय भाग गया। अभाव विलय हो गया। अशेष प्रश्न, उसका जी मानो चारो दिशाओको एक साथ अभिवादन देना चाहता है। सब ओर उसे प्रीति, सब ओर उसे मगल है। इस प्रभातकालीन उषाके प्रकाशमे उसने जयराजको देखा। कौन उसके लिए आज वर्जित है, कौन उसके लिए निषिद्ध है। किसके साथ पार्थक्य उसके लिए अनिवार्य्य है। 'अरे कोई नहीं, कोई नही।' उसका हृदय मानो चारो दिशाओमे आलिगन प्रसार करता हुआ आवाहनका गान गा उठा। मानो बाँहे फैलाकर उषासे, वनस्पतिसे, आकाशसे,

सबसे वह चाहने लगी 'मुझे लेओ, मुझे लेओ। मैं अस्वीकृति नहीं दूँगी, अस्वीकृति नहीं लूँगी। सब मुझमे आ जाओ। और सब मुझे लेओ, मुझे लेओ।'

उसका मन स्वच्छतासे भरता ही गया। उसे सामने मानों सब कुछ सद्यःस्नात, ताजा, प्रस्तुत प्रतीत होने लगा। प्लेटफार्मके किनारे जाकर समानान्तर बनी प्रतिकूल दिशाओमे मानो अनन्त दूर जाती हुई उन लोहेकी रेलोको वह देखने लगी। मानो इनसे भी उसकी मैत्री है। मानो इनमे भी वह चिर रहस्य और उसका वह चिर-रहस्याधिप अनुपस्थित नही है। इसमें भी वह रम-रम रहा है।

जयराजकी ऑख खुली। उसने देखा, गोद खाली है, और उसके पास दो कम्बल तेह हुए रक्खे हैं, एक उसके कधेपर उढाया हुआ है। उसने देखा, तडका काफी फूट चुका है। उसे ख्याल हुआ—उसकी चार बजेकी गाड़ी!! वह झपटकर उठा, कुर्तेको बॉहमे डाला और देखा—एक ओर, दूर, सुदर्शना प्लेटफार्मके पास खडी है। उसने निकट जाकर कहा—सुदर्शना!

सुदर्शना ईषत्स्मितसे मुसकुराई—तुम उठ गये! देखो कैसा सुहावना है और उसने प्राचीकी लालिमाकी ओर सकेत किया।

जयराजने कहा–सुदर्शना!

सुदर्शनाने कहा—कम्बल मैं रख आई थी—

जयराजने कहा—सुदर्शना!

वह पूछना चाहता है कि, सुदर्शना, अब?

किन्तु सुदर्शनाके भीतर सब प्रश्न शान्त हो गये हैं। उसने कहा–'कम्बल वहाँ रक्खे हैं न?'

जयराज चुप।

सुदर्शना जयराजकी वाग्बद्धताको अन्यथा नहीं समझ सकी। किन्तु स्नेह तो यश है। इसमे मेरा–तेरा कहाँ है? इससे स्नेहको लेकर समाजमे उलझन कैसे पैदा की जा सकती है? उसने कहा—जयराज मुझे कुछ आज्ञा देना चाहते हो?

जयराज इतना ही कह सका—"सुदर्शना!" और चुप रह गया।

सुदर्शनाने कहा—मैं जानती हूँ, तुममें मेरे लिये अपेक्षा नहीं है। जयराज, यही अनपेक्षता सब कुछ है...। मैं अब जाती हूँ।

" कहाँ ? "

" जाती हूँ । "

अब जयराज क्या पूछे कि--' कहाँ ? '

" मेरा प्रणाम लो जयराज, और मेरा आशीर्वाद लो । क्योंकि एक बात मैं तुम्हें बताती हूँ । मैं इसी वर्ष माता हो जाऊँगी । प्रभू तुम्हे सदा सुखी रक्खे। "

जयराजने पुकारा--" सुदर्शना ! "

सुदर्शना नहीं ठिठकी, सो नहीं, पर जयराजके चरण छूकर प्रस्थानोद्यत उसने कहा--मैं जाती हूँ ।

जयराजने पाया वह कह रहा है--" जाओ, " क्यों कि वह और कुछ भी नहीं कह सकता है ।

" प्रणाम--"

--और, वह जयराजके सामने सामने पीठ मोडकर प्लेटफार्मके किनारे किनारे फूटती उषाकी ओर बढ़ती चली गई, बढ़ती चली गई ।

जयराज देखता रहा, देखता रहा । फिर लौट आया ।

मास्टरजी

जबसे लड़के जानते हैं, स्कूलके सेकेण्ड मास्टर मोशा बाबू ही हैं। पूरा नाम है, महामहिम घोषाल। अवस्था चालीस वर्ष होगी। पक्का रंग है और बड़े विनोदी स्वभावके जीव हैं। लडकोको 'मोहामोहिम' कहनेमे दिक्कत होती है, इससे उन्होने छोटा नाम रखा है, मोशा बाबू।

बङ्गाला देश छोडकर यहाँ अलीगढ जिलेके अतरौली कस्बेमे यह घोषाल महामहिम कैसे आ गये, इसकी कथा कहनेमें बहुत-सी उपकथाओंको छोड़ना कठिन हो जायगा। संक्षेपमे यह समझ लो कि जब एफ० ए० पार हुआ, पिता ऊपरसे उठ गये, आगे पढ़ाईका सुभीता न रहा, माताके बहू पानेकी जल्दी मचानेसे बहू घरमे आ गई और बहूका मुँह देखनेके बाद माता शीघ्र धराधामसे प्रयाण कर गई, तब महामहिमने अखबारोके कालमोसे पते ले-लेकर चारों ओर दरख्वास्तोंके तीर छोडने शुरू किये। महीनो बाद जो तीर ठीक बैठकर फलोत्पादक हुआ, वह डाकसे अलीगढ़ जिलेके अतरौली कस्बेपर छोड़ा गया था। तबसे अपनी बहूके साथ महामहिम यहाँ ही बसे हैं।

बहूका नाम है, श्यामकला। वह श्यामा उतनी नही है जितनी कलासे सन्नद्ध। अपनी श्यामताको कलाद्वारा ऐसा कुछ वह सँवारती है कि उजला रङ्ग पानी भरे। दस वर्षकी अवस्थामे श्यामकलाका महामहिमसे परिणय हुआ और तेरह-चौदहकी होगी जब देश छोड वह स्वामीके साथ इस अतरौलीमें आकर मास्टरनीजी हुईं।

पर, उसको भी दिन हो गये हैं, और अब जब महामहिम चालीसके हैं, तो कलावती श्यामा भी बीससे दोइक वर्ष ऊपर ही है, कम नहीं। मास्टरजीने

बड़े लाड़-प्यारसे उत्सुकतापूर्वक उसे बढ़ाया है। उनके सामने-सामने वह नन्हींसे किशोरी, किशोरीसे षोडशी और षोडशीसे अब युवती हो गई है। महामहिमने पतिके प्रेमसे भी अधिक माताके प्रेमसे उसे पाला है। उसे खिलौने ला-लाकर दिये हैं और गरई मच्छीके मुण्ड तल-तलके खिलाये हैं। अपनेको दुनियामे समर्थ पाया, तभीसे अपने सामर्थ्यद्वारा पोषणीय अपनी वधूको उसने अपने घरमे पाया है। मा जब जल्दी ही ऊपरसे उठ गई, तब बाहरसे गिरस्तीके योग्य सामान जुटाने और घरके भीतर भी सब-कुछ सँवारने और सँभालनेका काम उसपर आ रहा है। यह अबोधा, अनजान, एक अतिरिक्त कामकी ही भाँति उसपर रही है। वह सबको निबाहता चला आया है। इस निर्वाहमें उसे रसका सर्वथा अभाव भी कभी नहीं प्रतीत हुआ है। कभी यदि कुछ प्रत्याशा मनमे उठी है तो वह सोच लेता रहा है कि यह बरस बीतते-बीतते तो हमारी श्यामा सारी गृहस्थी अपने ऊपर ले-लेने ही वाली है। बस, कसाला कुछ ही रोजका है।

श्यामकला भी एक-एक कलाके उदयके साथ निखरती ही आई है। नन्हींसे वह धीरे-धीरे करके मनमोहिनी होने लगी है। पहले खेलती थी, अब बाल काढ़ती है। वह तरह-तरहके बाल काढ़ना जानती है। वह चाहती है कि उसके स्वामी देखे कि वह अब बच्ची नही रह गई है। देखे कि वह कैसे भाँति-भाँतिके बाल काढ़ती है, और बदल-बदलकर नये कपड़े पहनती है। महामहिम आते हैं तो कहते हैं—ओ हो,—श्याम कलानिधिसो सोहै—

श्यामा सुनकर नाराज हो जाती है। वह क्या सदा बहलानेकी ही चीज है!—वह सोचती है।

महामहिम कहते हैं—कामकली-सी जो श्यामकलीजी, कहिए।

श्यामा अत्यन्त क्रुद्ध हो जाती है।

स्वामी कहते हैं—क्या बात है?

और वह रूठकर चली जाती है।

तब स्वामी देखते हैं—चूल्हा ठण्डा है, रसोईमे कोई तैयारी नही है। उस समय वह लकड़ी-कण्डा लेकर चूल्हेको चेतानेके जतनमें लगते हैं। खाना बन-बना चुकता है, तब अन्दर जाकर कोठरीमे चादर लिये पड़ी हुई पत्नीसे कहते हैं—चलो, खाना खा लो।

वह चादर जोरसे चिपटाकर कहती है—हटो-हटो, मुझे भूख नहीं है।

महामहिम कहते हैं—मैंने मच्छीका झोल बड़ा स्वादिष्ट बनाया है, चलो तो।

करते-करते श्यामकला चलती हैं, भोजन करती हैं और चौकेकी सार-सँभाल करके महामहिम स्कूल चले जाते हैं।

किन्तु यह तो जब अतरौली आये-आये थे, तबकी कथा समझनी चाहिए। अब वह बात नहीं है। अब श्यामकला बच्ची श्यामा नहीं है। अब एक पहाडी नौकर भी घरमे है, जो रोटी-बासन सब काम करता है। श्यामकला अब और भी अच्छे बाल काढना जानती है। महीन व नफीस कपडेकी उसे अब ज्यादा अच्छी पहचान है। पहनती भी उन्हें अब कहीं ज्यादा अच्छे सलीकेसे है। वे कपड़े उसपर अब बेहद अच्छे खिलते हैं। लेकिन अब वैसी हरएक बातपर वह तुनक नहीं जाती। अब वह महामहिमको ऐसे नहीं देखती कि मै अब रूठी, अब रूठी। अब तो उसके चलनमे धीरज रहता है और आँखमे, कहो, आशा। अब तो भागती वह नही है, जैसे कुछ सामनेकी ओर बढ़ना ही चाहती है। अब ता तनिक भी महामहिमको झिकानेकी बात वह नहीं सोचती। नहीं, अब वह बहुत समझदार है। सोचती यह है कि रिझाना कैसे होगा। किन्तु यौवन क्या कुछ अपना हक न रखे ? क्या अपने वर्तमानमे इतना पूर्ण, इतना मग्न वह न हो सके कि अतीतका रिक्त भर जाय ? अब जब कि उसमें अपेक्षाशील यौवन है तब भी क्या अधिकारापेक्षिणी पत्नी वह न हो सकेगी ?

पर यह मास्टर महामहिम लडकोको पढ़ा-पुढ़ाकर जब आते हैं तो आकर कहते हैं—कामकला-सी जो श्यामकला पुनि श्यामकले किधौं कामकले !

और श्यामकला इसपर फुँककर रह जाती है।

दिनपर दिन बढ़कर आती हुई यह श्यामकला किसी प्रकार वही नहीं है जो नन्ही-सी थी, यह बात महामहिमको तो किसी क्षण सूझ पाती ही नहीं है। उसके निकट यह श्यामा स्नेहपोष्या न हो, क्या कभी भी ऐसा होगा ?

९

मोशाय बाबूसे बालक खूब खुश हैं। उनकी अँगरेजीकी योग्यताकी मास्टरोमे भी खूब धाक है, लड़कोमे तो है ही। स्कूलमे अधिकतर अँगरेजी ही वह पढ़ाते हैं। उनके घण्टेमें, लेकिन, बालक पढ़नेसे ज्यादा हँसते हैं। क्योंकि मोशाय

बाबूको नाराज होना नहीं आता। हम तो यह कहेंगे कि जब उनसे गुस्सा तक करते नहीं बनता, तो पढ़ाना तो क्या खाक बनेगा? और यह अमिट सत्य ही समझिए कि जो स्वयं योग्य है वह मास्टर चलताऊ (Indifferent) ही है। शिष्यके पीछे डण्डा तो उससे उठाते बनेगा नहीं, तब आप ही सोचिए, अध्यापकी उससे किस प्रकार बन सकेगी?

क्लासमें मास्टर मोहामोहिम मोशाय बालकोंकी पाठ्यपुस्तककी कहानीके साथ कभी विलायतके इतिहासकी कहानियोंमें पहुँच जाते हैं। वहाँसे जाने क्या सहारा पकड़कर अपनी ही कथापर उतर आते हैं। तब कहते हैं—आमरा देश बंगाला हय। बहोत शुन्दर देश हय। उहाँ बोड़ा-बोड़ा फल होता हय। बगाला भूमी बहोत जरखेज हय। रोकम-रोकमका उहाँ मीठाई होता हय। आमरा देशका इस्त्री लोग बेशी शुन्दर हय। आमरा बोहूका नाम तुम लोग जानता हय? ओशाका नाम श्यामकान्ता बोलो, के श्यामलोता, के श्यामकीर्ति, के श्याम-कोला, के बोलो श्यामबाला। शब ठीक हय। रंग अलबत्त श्याम हय। किन्तु बहोत शुन्दर देखता हय। हामको बहोत धन दहेजमें देता था, हाम नही लिया। आमरा बोहू बहोत बोड़ा घरका हय। हामको बहोत प्यार करता हय...।

बालक ये कथायें सुनकर बड़े प्रसन्न थे। किताबका जब कि एक भी शब्द उनके मनपर न ठहरता तब देश बङ्गालाकी तरह-तरहकी मिठाइयाँ और भाँति-भाँतिके फल मानो उनके सामने वहीं प्रत्यक्ष हो जाते थे। वे बालक मोशाय मास्टरके यहाँ काम-बेकाम भी पहुँचा करते और तरह-तरहके उपहार जाकर मास्टरनीजीको दिया करते थे। मास्टरनीजी भी बालकोंको प्यार करती थी। इससे जब मोशाय मास्टर उनकी मास्टरनीजीका जिक्र उन्हें सुनाते तो उनको बड़ा अच्छा लगता था। लेकिन बालक कहते—मास्टरजी, किताब पढ़ाइए जी, किताब!

मास्टरजी कहते—ओ, तुम लोग बोदमाशी करता हय! किताब पढ़ो! किताब। तुम लोग फेल होगा तो आमरा नाक कटेगा। बोलो 'केसाबियका' कौन था? उशका क्या कहानी हय?

थोड़ी देर पढ़ाई चलती और मास्टरजी कहते—तुम बगाला देशमें कोलीकाता शहरका नाम शुना हय? बहोत बड़ा शहर हय। रोकम-रोकमका गाड़ी उहाँ चलता हय। रेल चलता हय, इस्टीमबोट

चलता हय, ट्रामगाड़ी, मोटारगाडी, रिकशा गाड़ी बोगैरा–बोगैरा बहोत रोकमका गाड़ी चलता हय। इस्टीमबोट तुम लोग जानता हय ? वह इस्टी-मका जोरसे चलता हय। ऊहॉं हुगली दरिया हय। उसका ऊपर बहोत बड़ा पुल बना हय। हामने ओहींसे एफ. ए. पास किया। आमरा शादी उसके बाद हुआ। हाम पहले उजला बोहू चाहता था। शादीका बख्त आमरा बोहू दश बरशका था। आमरा बोहूका उज्जल रग नेई परन्तु अति शुन्दर। आमरा बोहू खूब भोला।

बालक याद दिलाते—' मास्टरजी, कैसाबियका! ' और मास्टरजी एक साथ कठोर होकर कहते—ओ, तुम लोग खेल करना माँगता हय। खेल नाहीं चलेगा। शोबक पढो, शोबक। तुम लोग फेल होगा तो बहोत बुरा बात होगा। हेडमास्टर हामको बोलेगा। हाम बोलेगा लरका लोग बरा शितान हय।

यो कमची-पूर्वक न पढाते थे तो क्या, वैसे उनके विषयमें विद्यार्थी कमजोर नही रहते थे। विद्यार्थियोका और उनका आपसमें बडा अपनापा हो गया था। मास्टरजी अपने घरकी छोटी-छोटी बातोंको लडकोंके सामने ऐसे पेश किया करते थे मानो सलाह माँगते हो। अबोध बालक उन बातोंमेसे और कुछ सार ग्रहण करते हो, न करते हो, मास्टरजीका स्नेह तो ग्रहण करते ही थे।

स्कूल मिडिल स्कूल था और अतरौली कस्बा भी बड़ा न था। हमारे मोशाय बाबूमें बहुत रब्त-जब्त बढ़ाने और बढाकर खुद बढ़नेकी सिफ्त ज्यादा न थी। पैंतीस रुपयेके यहाँ मास्टर लगे और तीन रुपये प्रतिवर्ष तरक्की पाते-पाते अब उनके पचास रुपयेसे कुछ अधिक हो गये थे। वेतनके रुपये पा लिये, लम्बी छुट्टी हुई तो कभी अपने देश बङ्गाला घूम आये· नही तो बालक विद्यार्थियोंमें और अपने सङ्गी मास्टरोंमें मिल-बोलकर ही वह रह लिया करते थे। कोई लडका कभी उनका पानी भर देता, कभी और कुछ और काम कर देते। इस प्रकार मास्टरजी, बिना ज्यादा फिक्र पाले और बिना ज्यादा मेल-मुलाकातका परिग्रह बढाये, अपने काममें नियुक्त, युवती श्यामकलाके भर्तार बने मजेमें जिये चलते थे।

✽

किन्तु एक अवस्था ऐसी होती है कि व्यक्ति प्रेम पाये, इतनेहीसे उसका जी नहीं भरता। वह इस बोधको भी चाहता है कि यह प्रेम उसे मिल ही नहीं

रहा है, प्रत्युत वह उस प्रेमको अपने बलसे खींच रहा है। यौवन इसी अवस्थाका नाम है। जो प्रेम निरपेक्ष होकर दानकी तरह दिया जाता है, उसका स्वीकार करना यौवनका अपमान भी हो सकता है। जिसे अपनी शक्तिका भरोसा है, वह दान कैसे ले सकेगा? उपार्जित अर्थ ही उसके लिए अर्थ है। यों विश्वकी समस्त सम्पत्तिमें भी उसे तृप्ति नहीं है।

श्यामकला जैसी भी हो, जो भी हो, इस ओरसे असम्बद्ध होकर जो प्रेम उसे दिया ही जाता रहेगा, क्योंकि दिया ही जाता रहा है, उस प्रेमको लेकर यौवन-गर्विता श्यामकलाका जी कैसे भरे? जो विवश नहीं है, जिस प्रेममें उन्माद नहीं है, जिसमे चाहकी धार नहीं है, उसको यह श्यामकला कैसे समझ ले कि वह उसका अर्जित है, उसका अपना है, उसका स्वत्व है? वय पानेपर क्या कन्या माता और पिताके सहज प्रेमसे बाहर नहीं बढ़ चलती? क्या उसमें अपेक्षा नहीं जागती कि कोई प्रेम हो जो उसके बेटी या बहन होनेके कारण उसे स्वभावतः ही न मिलता हो, प्रत्युत उसके अपने ही कारण, उसके अपने ही जोरपर उसे मिले? क्या उसे नहीं अनिवार्य चाह हो आती उस प्रेमकी, जो उसके रूप, उसके यौवन, उसके अन्तस्थ स्त्रीत्वकी माँगके उत्तरमे विवश होकर उसमे खिंचा चला आवे, जैसे आगमे पतङ्ग? ऐसा प्रेम जब तक वयःप्राप्तको न मिले, तब तक पिता-माताके लाख स्नेहके होते भी क्या उसमे कुछ आकाक्षा, कुछ अभाव, कुछ कलक बनी ही नहीं रहती?

श्यामकलाको तो स्वामीकी ओरसे सदा ही सचिन्त प्रेम मिलता रहा है। वह नाराज हुई है तब भी उसे लाडसे मना लिया गया है। हँसी है, तब भी उसके साथ हँस लिया गया है। उसकी तबियतकी सदा रक्षा की गई है। सदा ही सब बातोमे उसे बहला रखा गया है। क्या वह इस स्नेहके मूल्यको नहीं जानती? लेकिन—

लेकिन महामहिम अपने प्रेमको किस प्रकार कम गाढ़ा करे कि उसमे उद्वेग दिखाई दे? वह प्रेमधारा उसमे क्या कभी रुकती भी है, जो गतिशील दीखे? क्या वह कहीं उथली है, जो कभी उत्कट भी हो? क्या उसमे द्वन्द्व है कि वहाँ विक्षिप्त फेनिल लहरे उठे? तरङ्गहीन, कूलबद्ध, एकरस होकर ही तो प्रेम इस महामहिममे श्यामकलाके प्रति बह सकता है। क्योंकि वह उसमे गहरा होता गया है।

" यह क्या बात है कि वह मुझपर कभी नाराज भी नहीं हो सकते हैं ? "—श्यामकला सोचती है—क्यों वह नही मानते कि मै पूर्ण स्त्री हूँ ? क्यों वह मुझे बहलाते ही हैं, धमकाते नहीं; जैसे कि मैं बच्ची ही हूँ ! मैं नहीं चाहती अच्छा पहनना, अच्छा रहना। फिर वह क्यो नये-नये कपड़े लाकर दिये जाते हैं ? और जब मैं उन्हें पहनती हूँ तब क्यों उनकी निगाहसे वे ही कपड़े नीचे रह जाते हैं ? क्यों मेरे साथ वह अपने पढ़ने-लिखनेकी और और तरहकी बाते नहीं कर पाते ? क्यो ऊपरके मनकी और हल्की ही बातें मुझसे की जाती हैं ? क्यों मेरा उनके ऊपर कुछ ऐसा बस नहीं है कि मैं उन्हें फेर सकूँ ?...

और उनके यहाँ जो रहता है पहाड़ी नौकर, उसका हियाव होने लगा है कि वह श्यामकलाका जरा रोब न माने। उसकी सुनी वह अनसुनी कर देता है। जब श्यामकला झल्लाती है तो वह हँसना चाहता है। जब गुस्सेमें श्यामकला काँपने लगती है तो वह बेहूदा आदमी उसके सामने मुँह बिराकर अपने रास्ते चलता चला जाता है।

श्यामकला उसकी खूब खबर लेगी।—एक तो कम्बख्त गुस्ताख़ हो गया है, उधर बालोंमे तेल डालकर कुले भी काढ़ने लगा है! उसको कपड़े क्या बना दिये हैं कि जेण्टिलमैन बना डोलता है! उस पहाड़ी नौकरकी सूरत देख-कर उसे चिढ़ हो आती है।

वह जोरसे चिल्लाई—महादेवा, ओ महादेवा!

महादेव उस उन्नीस-बीस वर्षके पहाड़ी छोकरेका नाम है।

" सुनता है कि बहरा हो गया है ? "

सामने आकर मुसकराते हुए महादेवने कहा—बहोजी, क्या होकुम है ? हम तो आपके होकुमका ताबेदार हैं।

बहूजीने कहा—नालायक, सूअर, पाजी, दूर हो मेरी आँखोसे।

महादेवने हँसकर कहा—बहोजी, खफा काहे होती हैं ? हम हजूरका गुलाम हैं।

" बोदमाश, बालोंमें इतना तेल काहे डाला ? "

महादेवने अपनी धोतीका पल्ला उठाकर अपना सिर पोंछ लेते हुए कहा—" लो, बहोजी। रिस मत होओ। अब कसूर नहीं होगा।" और कहकर वह फिर हँसा।

बहूजीने कहा—पाजी, हमसे हँसी करता है !

महादेवने कहा—बेलकुल नही, बहोजी ।

" हमारा धोती धोकर सोखा दिया ? "

" सुखा दिया । "

बहूजीने बेहद गुस्सा होकर कहा—कहाँ सोखाया ?

" आसमानपर सुखाया । "

यह कहकर नलके नीचे पत्थरपर पडी धोतीको महादेव जाकर फींचने लगा ।

श्यामकलाने गरजकर कहा—" बोदमाश ! " और तैशमे फुफकारती हुई अपने कमरेमे चली गई ।

महादेव धोती धोकर सुखा देता, और कोठरीमे जाकर कहता—बहोजी, सुखा दिया ।

श्यामकला गुस्सेमे काँपकर रह जाती ।

महादेव बहूजीके पैर पकडकर कहता—बहोजी, खफा मत होओ ।

बहूजी पैर झिटककर कहतीं—निकल जा, तू मेरे यहाँसे ।

—इस भाँति बहूजी और नौकर दोनो परस्पर निकट आते जाते थे ।

श्यामकला इस उद्धत और जवाब देनेवाले नौकरसे झींककर भी भीतर-ही-भीतर गर्वका अनुभव करती है । इस नौकरके साथ वह मालिक है । इस नौकरको लेकर उसके अहङ्कारको तृप्ति मिलती है । वह तुष्ट होती है । आनन्द मिलता है । उसे कुछ अपनी सार्थकता अनुभव होती है । उसे लगता है, इस नौकरके सामने होकर वह अपने अधिकारमे भी कुछ है । वह कृपाकांक्षिणी नही है, अनुग्रहदात्री ही है ।

❦

और जब मास्टर महामहिम घरपर आकर अपनी किताबें यथास्थान रखकर पत्नीके सामने पहुँचकर कहते हैं—' कामकला-सी जो श्यामकला पुनि कामकला किधौं श्यामकला ! ' तब पत्नी चुपचाप अपने काममे ही रहती है, पतिका प्रेम-सम्बोधन उसको बिना छुए हुए ही उसके ऊपरसे निकलता चला जाता है।

पति कहते हैं—मैं एक चीज तुम्हारे लिए लाया हूँ, चलो देखती हो ?

श्यामकला पूछ लेती है—क्या है ?

वह यह ऐसे पूछती है कि मानो नित्यकी तरह पूछती हो—'क्या हाल है।' यह नहीं कि मास्टरजी इस फीकेपनको नही समझते आ रहे, लेकिन वे और भी आग्रहपूर्वक कहते हैं---चलो देखो, क्या है।

श्यामकला चुपचाप उठकर साथ चली जाती है और देखती है कि पति उसके लिए साड़ीका एक ब्रूच लाये हैं। महामहिम पूछते हैं—कैसा है, पसन्द आया?

श्यामकला कहती---अच्छा है।

मास्टरजी कहते---वह जो धानी साड़ी है उसपर लगाना, खूब खिलेगा... और लो।

एक दोनेमे मावेकी गुजियाँ लेता आया था, सो दे दीं।

श्यामकलाको इस तरहकी बात बहुत बुरी लगती है।

उसने कहा---क्या तुमको यही लगता है कि मैं भूखी रहती हूँगी?

"नहीं, नही, प्रिये, अबके मैं देशसे कुछ मन्देश और रसगुल्ला मँगा भेजूँगा। यह पहाडी लडका अच्छा खाना नही बनाता। मेरी कोई बात नहीं, मुझे सब चलता है। तुमको जिस बातकी जरूरत हो, मुझसे कह देना। खाना तुमको ठीक लगता है?"

"मुझे किसी चीजकी जरूरत नहीं है।"

महामहिमको यह सुनकर कुछ खुशी नही होती। वह चाहता है कि उससे जरूरते खुलकर कही जाती रहे और वह उन्हे यथाशक्ति पूरा करता रहे। मानो इस भाँति वह प्रमाणित करना और देखना चाहता है कि श्यामकलाके प्रति उसका प्रेम पूर्ण है।

वास्तवमे श्यामकला उसके जीवनके साथ मिलकर ऐसी स्वतःसिद्ध अश हो गई है कि उसके अभावपर कल्पना भी नही जाती। इससे उसके प्रति अपनी आकाक्षाका उन्हे अनुभव नही होता। जीवनमे श्यामकला उनके लिए आकाक्ष्य है, प्रार्थनीय है, यह समझ देखनेका उनपर अवसर नहीं आया। श्यामकला सदासे ही उनके निकट सुप्राप्त है, इससे उनके जीवनमे वह है, यह भी बोध लगभग उन्हे नहीं होता।

एक रोज जब एकाएक कमरमें दर्द हो आता है तब उस कमरके अस्तित्वका हमे ठीक-ठीक बोध होता है। साधारणतया हम जीते ही चलते हैं, बिना यह

चिन्ता रखे कि कमर भी हमारे है। अन्तमें एक दिन दर्द उठकर उस हमारी कमरको हमारे निकट ही प्रमाणित कर देता है।

मास्टर महामहिम स्कूलसे आकर कोशिश करके पत्नी श्यामकलाके साथ कुछ देर बहल लेते हैं, और फिर अपने दिनके क्रमको यथापूर्व चलाने लगते हैं। उनका अधिक काल स्कूली किताबों, स्कूली लडकोंमे जाता है। जब घरमें नौकर है और पत्नी वयस्का है, तब घरका कुछ भी अता-पता रखनेकी ओरसे वह निश्चिन्त हैं। जो होता है, हो, वह वक्तपर स्कूल चले जावेंगे, रात होते-होते फिर किताबें लेकर बैठ जावेंगे और सबेरे जो वक्त मिलेगा उसमे भी किताबें सामने लिये रहेंगे। और ये स्कूलके लड़के भी बेवक्त और हर वक्त बस्ता लिये मास्टरके पास आ पहुँचते हैं। जो वक्त मिलता भी है, उसे वे खा जाते हैं।

जिस प्रकार स्वस्थ व्यक्तिको अपने शरीरके अङ्गोपाङ्गकी साधारणतया खबर नहीं रहती, वैसे ही स्वस्थ-प्रेम महामहिमको अपने गृहस्थ-जीवनके किसी विशेष भागको चिन्तापूर्वक अधिक आत्मदान करनेकी आवश्यकताकी खबर नहीं थी।

इस प्रकार अतरौली कस्बेके मिडिल स्कूलमे मास्टरी करते दस वर्ष होनेको आये, तब सहसा एक दिन पढ़ाकर लौटनेपर उन्होंने पाया कि घर सूना है, श्यामकला नही है! वह पहाडी नौकर भी नही है!

२

उन दिनो बालकोंकी छमाही परीक्षाके दिन निकट आ रहे थे। बहुत-से लडके मास्टरजीसे पढ़ने आया करते थे। उस दिन मास्टरजीने खाना नहीं खाया था। याद ही नही आई थी कि खाना भी खाना है। अभी तक यह भी सुध उन्हे नहीं हुई थी कि खाना बनायेंगे, तब बनेगा। वह अपनी कोठरीमे बैठे थे, वहाँ बैठे ही रहे। वक्त बीतता गया और दिन ढलनेके बाद शाम आती गई। पर वह बैठे ही रहे। इतनेमे बाहरसे बालकोंकी आवाज उनके कानोंमे पड़ी—मास्टरजी, मास्टरजी!

मास्टरजीने अनायास कहा—'आओ भाई,' और वह लालटेन जलानेके लिए उठे।

बालक शोर मचाते हुए अन्दर आ धमके, बोले---वाह मास्टरजी, यह तो बड़ा अँधेरा कर रखा है, लाइए बताइए, कहाँ है लालटेन, जलाएँ।

मास्टरजीने कहा---लालटेन! देखो चौकामे होगा।

दो बालक उधर गये। औरोंने कहा---मास्टरनीजी कहाँ गई हैं, मास्टरजी?

मास्टरजी बोले---आमरा नौकरका साथ अपना अम्माके गया हय।

बालकोंने कहा---वाह मास्टरजी, आपने हमको पहलेसे कुछ नहीं बताया। हम पहले आकर आपका सब काम कर देते।

मास्टरजीने कहा---हम शोचता था, हम काल बोलेगा। आमरा बहू बहोत खराब है। हमारा पीछा चला गया।

बालकोंने आपसमे सलाह की कि मास्टरजीको कोई तकलीफ नहीं होनी चाहिए। वे लोग तैयार हुए कि पानी न हो तो भरकर रख दें या और जरूरत हो तो कर डाले।

जब कहींसे भी दियासलाई लेकर और लालटेन ढूँढ़कर उसे बालक जलाकर ले आये, तब मास्टरजी बोले---आओ, आओ, अब तुम लोग सोबक पढ़ो।

एकने पूछा---मास्टरजी, मास्टरनीजी कब आएँगीं?

मास्टरजीने कहा---कहने नहीं शकता...तुम लोग परीक्खामे पास होना माँगता हय तो खूब मेनत करना माँगता हय। तुम लोगोंका इम्तहानका कितना दिन बाकी हय? दो हफ्तासे बेशी नहीं हय। तुम लोग शब अच्छा नम्बरसे पास होना माँगता हय। आमरा बोहू चला गया हय। हाम अब तुम शबको बेशी बखत दे सकता हय।

एक लडकेने कहा---मास्टरजी, कल मैं अपने घरसे सबेरे-शाम दोनो वक्त खाना लाऊँगा।

मास्टरजीने कहा---नहीं-नहीं, हाम खुद बनाना माँगता हय।

बालकोंने कहा---नहीं-नहीं, मास्टरजी। और वे अपनी-अपनी ओरसे उन्हें निमन्त्रण देने लगे।

मास्टरजीने कहा–आमरा बोहू वापिस लौटेगा तो बहोत गुशा होगा। बोलेगा, तुम यह क्या किया। अब तुम लोग सोबक पढ़ो, सोबक।

पढ़ाई होने लगी। पढ़ते-पढ़ते धीरे-धीरे लालटेनकी रोशनी कम पड़ने लगी। मास्टरने भी देखा और लड़कोंने भी देखा कि तेल कम है। एक लडकेने कहा---लाओ, मैं तेल डलवा लाऊँ।

एक दूसरे लडकेने पूछा—मास्टरजी, घरमे तेल है ?

मास्टरजीने चिन्तित मुद्रासे कहा—'तेल ?' और सहसा आगे वे कुछ न कह सके ।

पहले लडकेने चुपचाप लालटेन ली और तेल डलवानेके लिए बाजार चल पड़ा ।

कोठरीमें अँधेरा हो गया । लडके हँसने और दङ्गा करने लगे । मास्टर उस अधेरेमे खोया बैठा रहा । उसने अब देखा क्या कि अँधेरा अब उसके लिए बाहर है और भीतर है । बालकोने कहा—मास्टरजी, मास्टरनीजीको जल्दी बुलवाइए ।

मास्टरने सुन लिया और पी गया ।

एक औरने कहा—मास्टरजी, मास्टरनीजीको दीवालीपर जरूर बुलवा लीजिए । आज अँधेरा है, उस रोज हम खूब रोशनी करेंगे ।

मास्टरने सुन लिया और चुप रहा ।

उस लडकेने कहा—मास्टरजी सुनते नहीं हैं ? दीवालीपर उन्हे जरूर बुलवा लीजिएगा । मास्टरने धीमेसे कहा—आच्छा ।

एक बालकने कहा—मास्टरजी, अँधेरा तो बडा खराब लगता है । डर लगता है, आपको डर नही लगता है ?

मास्टरने कहा—ओ, तुम लोग सोबककी बात नहीं करता हय । क्या एधर ओधरकी बात करता हय ।

इतनी देरमे लालटेन आ गई । पढ़ाई शुरू हुई । लेकिन मास्टरका जी इस घरमे बैठकर दबा-सा ही आता है । उसने कहा—देखो लरको, तुम इहॉसे रातको अपना घर दूर-दूर जायगा । यह ठीक नहीं हय । हाम कालसे तुमरा ही किसीका घर पढ़ाने आयेगा । बोलो, किसका घर ठीक बोलता हय ?

अन्तमे एक बालकका घर निश्चित हुआ और मास्टरने कहा—आच्छा, अब तुम लोग जाने सकता हय । हाम कालसे खुद पढ़ाने आएगा ।

बालक छुट्टी पाकर अप्रसन्न न हुए और उन्होने फिर आग्रह करना शुरू किया कि मास्टरनीजीको जल्दी बुला ले, दीवालीपर तो जरूर बुला ही ले । मास्टरजीने कहा—'आच्छा, आच्छा' । और हँसते-खेलते बालक बिदा हुए ।

उसके बाद मास्टरने उठकर अपना तमाम घर देखा । यह देखनेके लिए नहीं कि पत्नीके साथ क्या-क्या और सामान चला गया है । देखनेके लिए यह कि कहीं किसी कोनेमे रूठके छिपी हुई वह पड़ी ही तो नहीं है । उसकी एक

धोती सूख रही थी जिसको उन्होंने चुनकर उसी खूँटीपर वैसे ही टाँग दिया जैसे वह और दिनों टँगी रहती थी। दोनों खाटोंको वैसे ही बिछा दिया जैसे और दिनों बिछा करती थीं। और जब और कुछ शेष न रहा तब बेचारा मास्टर अपनी खाटपर आ रहा कि सोए—

ॐ

घरको उस हालतमें रखकर कि जो यहाँसे चली गई है वह जब आए तो पाए, उसकी धरोहर ज्योंकी त्यों है, महामहिम वहाँसे अधिकतर अनुपस्थित हो जाता और लड़कोंमें ही अपनेको भूलता रहता। घरकी स्वामिनी आ जाय तो घरको अपनी बाट जोहता ही पाए, इस भाँति उस घरको वह प्रस्तुत और सँवारे रखता। सुबह और रात, और जब भी अवकाश हो, वह बालकोंमें पहुँच जाता।

बालक एक रात पढ़ रहे थे। सात बजेसे पढ़ रहे थे, अब नौ होता होगा। उन्हें नींद-सी आ रही है। महामहिम पढ़ा रहे हैं—

"आच्छा, नींद आता हय? तो सोओ। हाम चला जाता हय...भूगोल! देखो, धरती गोल है, नारङ्गीका माफिक। ओह, तुम लोग सोओ, हाम चला जा रहा हय...।"

कहकर मास्टर दरवाजेकी तरफको बढ़ते। कहते—देखो, इस सूबामें कौन कौन दरया है? गङ्गा, जमुना, घाघरा, चम्बल, बेतवा, केन। हिस्ट्रीमें—

कहते-कहते कमरेमें फिर मास्टर वापिस लौट पड़ते।

—"हिस्ट्रीमें आर्ज जातिका विजय और उनका शोभ्यता खूब याद करना चाहिए। कौन-कौन लोगने भारतवर्षपर चढ़ाई किया? ओह, तुम लोग सोओ, हाम चला जाता हय।..."

फिर दरवाजेकी तरफ बढ़ते और अँगरेजी अथवा गणित या भूगोल इतिहासकी कोई बहुत जरूरी बात बतलाते-बतलाते फिर लौट पड़ते।

वास्तवमें उनका अभ्यन्तर उस अपने मकानमें इस रात्रिके अँधेरेमें अपनेको अकेला पानेसे बचता था। इन बालकोंको परीक्षामें उत्तीर्ण करानेके प्रति उनकी चिन्ता भी कम नहीं थी।

इसी भाँति दिन बीतते जाते रहे। दीवाली ज्यों-ज्यों पास आती थी, लड़कोंका आग्रह बढ़ता जाता था कि मास्टरनीजीको अवश्य बुलवा लेना

चाहिए। मास्टरजी लड़कोंके साथ पहले अनायास ही बँध चुके थे जब उन्होंने एक बार कहा था—' हाँ–हाँ। ' उसके बाद उन्होने लडकोंको यह भी कहा था कि उन्होंने अपने श्वशुरालय चिट्ठी डाल दी है। लडके रोज पूछते थे— मास्टरजी, मास्टरनीजीका जवाब आया?

मास्टरजी कहते—हाँ, ओहाँ शब ठीक है। लेकिन आनेका बाबत कुछ नेई लिखा।

" मास्टरजी, दीवालीके रोज लक्ष्मी-पूजन होता है। मास्टरनीजीको लिखिए कि पन्ना, चुन्नी और रामसिंह उन्हे बहुत याद करते हैं— "

" और मै। "

" और मै। "

शेष लडकोने भी शोर मचाया —

मास्टरजीने कहा—आच्छा, आच्छा।

लडकोने कहा—और हम सबका पालागन लिखिएगा।

" आच्छा, आच्छा। "

इसी भाँति एक रोज बालकोंको उन्हे कहना ही पड गया कि मास्टरनीजीने तुम सबको अपना बहुत प्रेम भेजा है और लिखा है, दीवालीको आनेकी कोशिश करूँगी।

दीवालीसे पहले दिनों बालकोंमें बहुत उत्साह था। महामहिमका दिल बैठता जाता था। बालक पूछते—' मास्टरजी, वह आएँगी? ' मास्टरजी कभी कहते— ' हाँ ', कभी कहते—' नही ', अधिकतर कहते—' कहने नेई शकता... । '

बालकोने मास्टरजीका घर झाड-बुहारकर खूब साफ कर दिया। मास्टरजीने कहा था कि दीवालीको वह न आई तो वह खुद उनको लेने जायेंगे। बालकोने पूछा था—' फिर मास्टरजी आप कब लौटेंगे? ' इसके उत्तरमे मास्टरजीने कहा था—' आमरा बोहू बडा घरका है। छोटा शेहर ओ पशद नेई करता। हाम गया तो वापिश नहीं फिरेगा। कोलिकाता शहरमे रहेगा। ओहाँ आमरा बोहूका मर्जी बेशी लगेगा। '

इस लिए लडके दत्तचित्त होकर मास्टरजीके घरको खूब साफ करनेमें लगे हैं कि मास्टरनीजी न आती हों, तो भी आ जायँ।

दीवालीका दिन आ गया है। वह दिन आकर अब बीता भी जा रहा है। शाम हो चली, अब रात होगी और लोग रोशनी करेंगे। दीपकोकी पंक्तियोंपर पंक्तियाँ जलाकर आज वे उद्योतित घरोंमें लक्ष्मीका आवाहन करेंगे। दीपका-वलियाँ अमावस्याको व्यर्थ करती हुई घर-घर, नगर-नगर ज्योतिष्क होगी। लोग मिलेंगे। बच्चे खेलेंगे। मिठाइयाँ बँटेगी। मङ्गल मोद होगा। ऋतु बदलेगी। हुलास खिलेगा।

लडकोंने प्रबन्ध किया है कि यह सब-कुछ मास्टरजीके घरमे भी होगा। चुग्गे आ गये हैं, बत्तियाँ बट डाली गई हैं, तेल तैयार है, हिसाब हो गया है कि कहाँ-कहाँ और कैसे-कैसे कितने दिये रखे जाएँगे। सब काम लड़के कर रहे हैं और मास्टरजीसे अनुमति लेते जाते हैं। एक लड़का आता है, कहता है—परली कोठरीमे आलेमे दो-दो दिये रखे जाएँगे न, क्यो मास्टरजी?

मास्टरजी कहते हैं—हाँ–हूँ।

दूसरा आकर कहता है—नही, मास्टरजी चार-चार रखे जाएँगे। ठीक है?

मास्टरजी कहते हैं—हाँ–हाँ।

लडकोंके उत्साहमे मास्टरजी भी उत्साह ले रहे हैं। कोई पूछता है,—'अभी तक तो वह आई नही, मास्टरजी। अब कल आएँगी, कल बड़ी दीवाली है। है न?'

मास्टरजी उस बालकके प्रति देखकर कहते है—हाँ–हाँ।

बालक औरोकी तरफ देखकर कहता—देख लो, मै कहता था न, कल बडी दिवाली है, सो कल आएँगी। देख लो, मास्टरजी भी कह रहे हैं कि कल आएँगी। सब बालक मास्टरजीकी ओर देखकर कहते—'क्यों, मास्टरजी?'

मास्टरजी अत्यन्त आशामय बनते हुए कहते—'होने शकता हय।'

जगह-जगह कोने-कोनेमे दिये जलाये गये। अपने थोड़े-थोड़े स्नेहको पतली-पतली बटी रुईकी बत्तियोके सहारे जलाकर वे दीपक अपने चारो ओर प्रकाश फैलाए हर तरफ बिछ गये। महामहिमने पाया कि वह स्वयं भी उन दियोंको बालकोंके हाथमें देकर अथवा उनके हाथोंमेसे लेकर जगह-जगह प्रस्थापित कर रहा है। घरमें आलोक-ही-आलोक हो गया है। अँधेरा सिमटकर भी कहीं बैठ सके, इतना भी अवकाश उसे नहीं है। पर मानों वह सबका सब एकत्रित, घना होकर काला-काला उसके भीतर घुसकर बैठ गया है।

बालकोंने कहा—मास्टरजी, कैसा अच्छा लगता है ?

मास्टरने कहा—बहोत आच्छा लगता हय !

बालकोंने कहा—मास्टरजी, आपके यहाँ लक्ष्मीजीकी तसवीर है ? उनके नीचे एक घीका दिया जलाना चाहिए।

मास्टरजीने कहा—आमरा पास नेई हय।

"कोई भी तसवीर नहीं है ?"

"विवाहका बादका हम दोनोका एकठो फोटोग्राफ हय।"

बालकोंने उसीको लिया, उसे एक उच्च जगह स्थापित किया, उसे माला पहनाई और उसके चरणोंमे एक रुपया और घीसे भरा हुआ एक बडा दिया जलाकर रख दिया। फिर वे लोग जानेके लिए आज्ञा माँगने मास्टरजीके पास आये और बोले—मास्टरजी, हम लोग अब जाते हैं।

मास्टरजी गद्गद हो आये। और उन्होंने बस इतना कहा—आच्छा।

बालकोंने पूछा—मास्टरजी, कल बडी दीवालीको तो मास्टरजीनी आ जावेगी न ?

मास्टरजीने कहा—होने शकता हय।

बालक चले गये। तब महामहिमने एक गहरा श्वास छोडा। वह उस कमरेमे आया जिसमे माला-चर्चित उनका चित्र रखा था। उसके चरणोंमें घीका दीपक आलोकित था। उसने देखा, वह धोती चुनकर उसी भाँति खूँटीपर टँगी है, दूसरी खाट उसी भाँति बिछी है। उसका मन तो दोषारोपण करने कही भी जाता नहीं है। वह तो यही देखता है कि वह शय्या अप्रयुक्त ही रहती है। वह धोती अनावश्यक रूपमे खूँटीसे टँगी ही रहती है। वह खाटपर आकर एकस्थ एकटक देखता हुआ बैठा रह गया। मद्धम ज्योतिसे बुझ-बुझकर जलते हुए दीपकोंको वह देखा किया। एक-एककर वे सब बुझते चले गये। अकम्पित हृदय और स्नेहके साथ जलता हुआ वह दिया ही उस कमरेको प्रकाशित किये रहा जो उस विवाहित दम्पतिके चरणोंमे लौ लगाये, उन्मुख बैठा था। महामहिम बहुत देर तक इसी भाँति बैठा रहा। आज उसने घरके किवाड़ भी बन्द नहीं किये, खुले ही रहने दिये। धीरे-धीरे उसकी आँखोंपर पलकें गिर-सी चली। उसी समय उसे मालूम हुआ जैसे कोई घरमे आया है। लेकिन नहीं, कोई भी नही आया। वह पूरी तरह आँख खोलकर बैठ गया। बाहर दिये बुझ चुके थे और निविड अमारात्रि फैली थी। शनैः शनैः नींदसे

फिर उसकी आँखे झपने लगीं। किन्तु वह चाहता है, जागे ही जागे आज इस रातको उस रातसे मिला दे। वह सहसा उठा। उसने देखा, कमरेमें आलोक फैलाता हुआ वह दिया मद्धम हो गया है। उसने सुना है, लक्ष्मी दो तिथियोंके सन्धि-क्षणमे ठीक रात्रिके मध्य मुहूर्तमे आती हैं। वह आवे तो घरको प्रकाशित प्रतीक्षामे ही पावे। उसने बढ़कर दियेकी बत्ती उकसा दी। उद्योत उज्ज्वलतर हुआ। वह फिर खाटपर आ गया। और हौले-हौले सपने फिर पलकोपर उतरने लगे। शनैः शनैः वह शय्यापर लेट गया।

बाहर दालानमे अन्धकारमे भी सिमटती हुई जो नारी बैठी थी उसको अब शनैः शनैः ढाढस बँधा। नही तो उसका डर जाता ही न था। चारों ओरका प्रकाश, उसे मानो डसने आता था। गडकर लुप्त हो जानेके लिए भी वह अपने तई कही काली जगह न पाती थी। ड्योढ़ीके बाहर जिस किसी तरह वह तमिस्राके परदेमे जीती रही। प्रकाशमे पडती तो, हाय राम, क्या होता? अब उस कमरेके भीतर, जिसमे महामहिमामय महिम है, जानेका साहस उसे न होता था। क्योंकि यद्यपि महिम सोता है, पर दीपक जाग्रत है। उसका प्रकाश मानो उसे लील जाएगा। भीतरकी ग्लानिसे, मानो, प्रकाशकी एक भी किरण पाकर, उसका जी फटे बिना कैसे बचेगा। वह नारी दबे पॉव कमरेमे घुसकर दीपककी ओर बढी कि उसे बुझा दे और फिर अँधेरेमे इस सोते हुए महामहिमके पाँव पकडकर निशीथको चीरती हुई चीख उठे—नाथ!

किन्तु दीपकको फूँकसे बुझाये ही, कि उसने देखा, कि दीपक तो उन्ही दोनोके चरणोंके निकट लौ बाँधे बैठा है। यह देखकर उसने अपनी छाती मसोस ली। कुछ देर, स्तब्ध, उसी चित्रके आगे वह खडी रही। और फिर हृदय कठोर करके वह सोते हुए व्यक्तिकी ओर बढ गई। सावधानतापूर्वक महामहिमके पैर उसने पकड़े। और फिर उन चरण-तलोमे जोर-जोरसे वह अपना माथा ठोकने लगी!

जाने महामहिम क्या स्वप्न देख रहा था। वह एक साथ उठा, बोला—एशेछेन माँ लक्ष्मी, आशुन।

नारीने उसके चरणोको और भी जोरसे पकड़ लिया और फूट-फूटकर रो उठी।

महामहिमने दोनो हाथोंसे उसे उठाकर शय्यापर बिठाया, कहा—लक्ष्मी

जखन एशेछेन, तबे फिरे जेते पारिबेन ना। आलो निबिए दिच्छी, केमन करे जावेन ! कहकर दीपक बुझा दिया—

अगले दिन अँधेरे ही दुकान खुलवाकर महामहिम बहुतसी मिठाई लाया। उसे घरमें रखकर एक बालकके घर जाकर कहने लगा—ओरे चुन्नी, ओभी शोता हय। आमरा बोहू तुमरा वास्ते खूब-सा मिठाई लाया हय !

फिर दूसरे बालकके घर जाकर कहा—पोन्ना ! पोन्ना ! शुनो, आमरा बोहू तुमरा वास्ते मिठाई लाया हय।

फिर तीसरेके यहाँ, फिर चौथेके यहाँ..।

बालक लोग मिले, आपसमें कहने लगे—देखो, हम कहते थे न, बड़ी दिवालीको मास्टरनीजी आवेगीं !

सब लोग मास्टरजीके घर पहुँचे। मास्टरनीजीको नमस्कार किया। देखा, मास्टरनीजी तो बड़ी दुबली हो गई हैं। वे लोग बोले—मास्टरनीजी, आपने अपनी बीमारीकी कोई खबर भी नही दी और आप तो बिलकुल अचानक आ गई हैं। पहलेसे खबर भी नहीं करी।

मास्टरजी जब बालकोंमे बर्फी और पेड़े बाँटने लगे तब खूब खुश होकर खाते हुए बालकोंने कहा—मास्टरनीजी, आप अपनी देशवाली मिठाई क्यों नहीं लाई ? वह रसगुल्ला और दूसरी क्या चीज होती है—हाँ सन्देश ?

मास्टरजीने झटपट कहा—तोमरा देशका चीज लाया हय। कोलिकातामें सब रोकमका चीज मिलता हय। रोशगुल्ला तुम लोगको आच्छा लगेगा ? अबका बार जाना होगा तब खूब-सा रोशगुल्ला लाएगा।

मास्टरनीजी इस बातचीतमे जाने कैसे अपने आँसू रोके रहीं !

रानी महामाया

हेमवन्त नामका एक द्वीप था। वहाँ रानी महामाया राज्य करती थीं। उनको पता नही था कि वह विधवा हैं या क्या! राजा वैजयन्त एक रोज आखेटके लिए कहकर गये थे और फिर न लौटे थे। यह तबकी बात है, जब रानी महामाया अपनेको जाननेके निकट आ रही थीं। दुनियामे रसदर्शन और अर्थदर्शनकी परख होनेका समय उनका आ ही-सा गया था। अब तक काल मानो अभिसारमें बीता था। अभिलाषाएँ स्वप्निल थीं, रंगीन, और उनमें अभी टीस उग रही थी। समय आया था कि क्रीड़ा-क्रीडामे जिसको पाती रही हैं, गहर प्राणोंमे उसको उपलब्ध करें, अनस्थिर प्रगाढ़ताके साथ उसे अपने भीतर ले ले।

ऐसे ही समय प्रियतमने कहा—प्रिये, मैं आखेटके लिए जाता हूँ।

रानीने पूछा—कब आओगे?

'कब आऊँगा?' और राजा किंचित् मुसकराये।—तुमको चिन्ता होती है, प्रिये? शका होती है?

रानी सदाकी भाँति बाहुओंको फैलाकर प्रियतमको अपने पाशमें ले लेनेको नहीं बढ़ सकी। उसका प्रेम जैसे भीतरसे एक साथ ही गम्भीर और वेदनामय हो आया। मनकी साध बुझ-सी गई और रसकी चाह कुंठित होने लगी। उसने कहा—जल्दी आना।

राजा वैजयन्त मुसकराये, चले गये, और फिर नहीं लौटे।

आखेट-रक्षकने कहा —महारानीजी, महाराजा तो नही मिले । हमें छोड़-कर घनघोर वनमे जाने कहाँ चले गये ।

अंग-रक्षकोने कहा —महारानीजी, महाराजाका पता नही है ।

और वे बिलख-बिलखकर रोने लगे ।

आखेटपर महाराजके साथ गये हुए सब सगी-साथियोने आकर कहा —महा-रानीजी, महाराज हमारे सबके देखते-देखते आँखोसे ओझल हो गये । हम लोग खोज-खोजकर हार गये हैं । उनका कोई पता नहीं मिलता ।

प्रहरीने कहा — राज-मन्त्री पधारे हैं ।

राजमन्त्रीने आकर कहा——महारानीजी, महाराज न-जाने कहाँ प्रयाण कर गये हैं । प्रजाकी आप माता हैं । प्रजा उद्विग्न है । बाहर आकर तनिक उसे सम्बोधन दीजिए । राजमुकुट स्वीकार करके प्रजाको सान्त्वना दीजिए । महा-रानीजीके मुकुटाभिषेकके महोत्सवके लिए वसन्त-चतुर्थीकी तिथि नियुक्त करनेके विषयमे महारानीकी क्या आज्ञा है ?

महामायाको शोकसे उबरनेका समय भी कहाँ मिला । उन्होंने कहा——महा-मात्य, क्या वसन्त-चतुर्थीकी तिथि बहुत निकट नही है ? महामात्य, रानी महामायाकी इच्छा है, आप अधिक करुणावान् हो । प्रजासे कहिए, रानी महा-मायापर वह भी करुणा करे । महाराजा ही अभी महाराजा हैं । उनकी खोजको छोड़नेकी कभी आवश्यकता न समझिए । महामायाकी इच्छा है कि उसका मुकुटाभिषेक न हो ।

महामात्यने कहा——महारानीजी प्रजाकी माता हैं । उनके दुःखमे प्रजा पीड़ित है । प्रजा चाहती है, महारानीजी स्वय मूर्धन्यपर राजमुकुट धारण करे और प्रजाको इस सुख-दर्शनका लाभ दे । प्रजावत्सल महाराजकी रानी महा-मायासे प्रजा-जन अपना यह स्वत्व माँगते हैं ।

महामायाने कहा——सचिव, महामाया प्रजा-जनकी ही है । किन्तु कहो, वे धैर्य रखे । वे ऐसा चाहेंगे, तो सचिव यह भी होगा । किन्तु रानी महामायापर अकरुण होना उन्हे नही शोभा देता ।

मन्त्रीने कहा——वसन्त-चतुर्थीको महारानीजीके पुण्य-दर्शनकी जनतामे बहुत आशा बँध चुकी है । ऐसी अवस्थामे क्या महारानीकी इच्छा है कि प्रजा निराश की जाय ?

रानी——मुझे दुःख है——

मन्त्री——प्रजाका आशीर्वाद महारानीको सुखी करे ।

रानी——नहीं, नहीं, महामात्य !

मन्त्री——सहस्राधिक प्रजाजन महलके बाहर खड़े हैं। वे अपने उल्लासके सम्बन्धमें महारानीकी अनुमतिकी प्रतीक्षामें हैं।

रानी——महामात्य !

मन्त्री——महारानी !

रानी——मन्त्रिश्रेष्ठ, प्रजा अपनी महारानीको क्या अपना सुख-दुःख समझनेकी स्वाधीनता नहीं देगी ? क्या वैसी फुरसत अपनी रानी महामायाको प्रजा नहीं रहने देगी ? मन्त्री, कहो, प्रजा रानीको क्षमा कर दे।

मन्त्री——क्या महारानी अपने जयघोषका नाद सुनती हैं ? प्रजा महारानीजीकी इच्छा जोह रही है।

(महारानीका मस्तक हाथोंमें है, बाल फैले हैं, विषादमें डूबी है)

रानी——ओह !

मन्त्री——महारानी महामाया !

रानी——(सावधान होकर) क्या प्रजा सहेगी कि उनकी रानी रानी न होकर उनकी गुलाम हो ? मन्त्री, क्या प्रजामें यह सामर्थ्य है ? इतनी इच्छा है ?

मन्त्री——(विस्मित) महारानी !

रानी——(उत्तिष्ठ) प्रजाके लिए रानी महामाया प्रजा-वत्सल होगी। वही महामाया प्रजाकी आज्ञानुवर्तिनी होकर, मन्त्री, मुझे शका है, प्रजाके लिए असह्य न हो जाय। महामात्य, प्रजासे कहो, करुणा श्रेष्ठ है, आनन्दोत्सुकता श्रेष्ठ नहीं।

मन्त्री——(विमूढ) महारानी !

रानी——(तत्पर) मन्त्री, महाराजा वैजयन्तमें प्रजा विस्मृति चाहती है ? स्मृतिसे छुट्टी चाहती है ? उनका अभाव मान लेकर उनके सिंहासनपर नये प्राणीको चाहती है ? वह अत्यन्त समुत्सुक है ? महाराजाके लोप हो जानेपर अत्यन्त विश्वस्त है ? महामात्य, क्या प्रजा सिंहासनपर कोई खिलौना अवश्य चाहती है ? क्या अपने दुःखके कोषको लुटाकर महामायाको यह बनना होगा ? प्रजा असख्य है, क्या इसीसे वह दया-धर्मसे मुक्त होगी ? क्या इसीसे उसकी माँग अनुल्लघनीय होगी ? क्या प्रजा प्रजा है, इसीसे उसकी इच्छा मेरे लिए आज्ञा बनेगी ? मन्त्री, कहो, रानी होनेका क्या यह दण्ड है ? कहो, क्या वही सुनाने तुम यहाँ आये हो ? कहो, क्या यही तुम कहते हो कि इससे बचनेका मार्ग नहीं है ?

मन्त्री—(गतबोध) महारानी !

रानी—(साग्रह) महामात्य, बोलो।

मन्त्री—(अवश) मेरा आग्रह क्षम्य हो, महारानी ! रानी महामायाकी इच्छा ही मेरा व्रत हो।

रानी—(दृढ़) तो प्रजाजनसे कहो, महामात्य, वसन्त-चतुर्थीको राज्याभिषेकोत्सव होगा। वे सन्तुष्ट हो, प्रस्तुत हों। महामायाको सिरपर मुकुट लेना होगा, तो वह उसे सिरपर लेगी, पीछे न होगी।...हे राम !

मन्त्री—(कातर) महारानी !

रानी—अमात्य, तुम जाओ। रानीको अपने दुख-भोगका अवकाश नहीं ही है, तो न हो। उसे नहीं स्वाधीनता है, तो सुनो, अमात्य, वह राज्य करेगी। राज्य सावधान हो जावे।

मन्त्री—(भयभीत) महारानी !

रानी—(आविष्ट) जो अनिवार्य है, हो। विधाताकी इच्छा। संकटका क्या यह भी उपयोग करनेका अवकाश व्यक्तिको न होगा कि वह उसे झेले, झेलकर चैतन्य बने, भक्त बने, दीन बने ? क्या रानी व्यक्ति नहीं है ? क्या रानी नारी नहीं है ? किन्तु महामात्य, तुम निश्चिन्त जाओ, कह दो, वसन्त-चतुर्थीको महामाया राजमुकुट लेगी। महाराजा, उसके स्वामी, कहाँ गये हैं, अगर प्रजा यह जानने और पानेको चिन्तित नहीं है, तो महामाया भी यह जानने और पूछनेको उत्सुक नहीं दीखेगी। वह बनेगी रानी। सुनते हो, महामात्य ? जाओ और कह दो।

मन्त्री—(हाथ जोड़कर) महारानीजीसे सेवक क्षमा माँगता है। प्रजाको समझा दिया जायगा। सेवक एक मार्ग देखता है। महारानी महामाया अपने भाईके पुत्र वसन्तद्युतिको दत्तक स्वीकार करके क्या राज्यासनपर आसीन करनेमें सम्मत होगीं ?

रानी—नहीं, अमात्य ! महामाया अबला क्यों होगी ? और राज्यासन खाली क्यों होगा ? महाराजाका पुत्र नहीं है, किन्तु महाराजाकी निष्पुत्रा रानी महामाया तो है। वह सब सहेगी। महाराज वैजयन्तका सिंहासन किसीके आगे प्रार्थी नहीं बनेगा।...देखो, बाहर एकत्रित जनता महाराजाके अभावपर कैसी मतवाली हो रही है। उनके कंठका अंकुश जैसे उठ गया हो। अरे, क्यों वह

महामायाके कान फोड़ना चाहती है ? जाओ अमात्य, उन्हें सुनाओ, अपने गलोंको वे शान्ति दें। अबला महामाया वसन्त-चतुर्थीको राज्यकी रानी बनेगी।

(मन्त्रीका प्रस्थान)

इस प्रकार हेमवन्त द्वीपकी रानी होकर महारानी महामाया राज्य करती थीं। दिनमें राज-मुकुट पहनकर राज-सभामे राजतन्त्र चलाती थीं। रातमें आकाशके तारोंको गिनती हुई जागती थीं, और उन्हें गिनती-गिनती ही सो जाती थी। महाराजा वैजयन्तका कहीं पता न चला था।

महारानीके शासनकी निर्ममतासे प्रजा त्रस्त हो गई। महारानीके हाथसे न्याय जब कि सहज-प्राप्त था, दया सर्वथा दुष्प्राप्य थी। अपराधीको दंड ही मिलता था। क्षमाकी कहीं व्यवस्था न थी। दया स्वयं अपराध थी, और राज्यके न्यायाधीशोंमें कोमलता दुर्गुण समझी जाती थी। महारानी महामायाकी कड़ी आज्ञा थी कि महाराजा वैजयन्तके समयके नियमोंका निरपवाद और अक्षरशः पालन हो। छूट कहीं न हो, बचाव कहीं न हो। अतिशय तत्पर कर्मठ तेजस्विनी बनी महारानी महामाया स्वयं राज-सभामें उपस्थित होकर कठोरता-पूर्वक शासनका सचालन करतीं थीं। आर्त्तकी पुकारके प्रति वह परमात्माकी तरह अदय हो रहती थीं। आर्त्त क्यों आर्त्त है ? और जब वह आर्त्त है, तो क्यों साहस करता है, क्यों आशा करता है कि अपने आर्त्तनादसे अनुशासनके पद-चापपर बाधा डाले ? क्या जगत्तन्त्र उसकी चीख पुकार पर रुके ? सहमे ?

और, रातके सन्नाटेमे महामाया आकाशके महारहस्यको सूनी आँखोंसे देखती थी, और देखती रहती थी। उसके भीतरसे भरी साँस उठती आती और छूटकर खो जाती। यज्ञमे प्रदीप्त अग्नि-शिखाकी भाँति, अँधेरी और उज्ज्वल, वह प्रश्वास सतत ऊपरकी ओर विलीन होती हुई इस आकाशमें रमे रामके चरणोंमे फूट-फूटकर सुबकेगी—' ओ, मेरे राम ! मैं अकेली क्यों ? बता वह कहाँ है ? कहाँ है ? ' गर्मीकी रातोंमे, दूर, काले-से दीखते वन-प्रान्तरको देखती हुई और दूसरी ओरसे समुद्रसे आती हुई गर्जनाको सुनती हुई इन सबसे ऊपर होकर, मानों अपने प्रश्नसे वह इस समस्त रिक्तको गुँजा डालना चाहती है—' ओरे तू कहाँ है ? कहाँ है ? ' यह प्रश्न आकठ उसमें भर भर आता है, ' तू कहाँ है ? कहाँ है ? ' पर वाणी फूटती नहीं। और वह वेदना भीतर ही घुमड़ घुमड़कर नीरव भावसे पूछती रह जाती है—' ओरे तू कब पाएगा ? कब पाएगा ? ' पूछती ही रह जाती है, उत्तर कहींसे भी नहीं

पाती। आस्मानके चन्दोवेमें कोई सिहरन नहीं होती। तारे चमकते ही रहते हैं। सन्नाटा सुनसान ही रहता है। तब दीनातिदीना बनी महारानी महामायाकी आँखोंसे आँसू झर-झर झरते हैं। वे आँसू भरते ही आते हैं। वे आते जाते हैं, टपकते जाते हैं और गिरकर सूखते जाते हैं। और, फिर भी तो मनके भीतर और इस शून्यकी गोदमें कोई उत्तर ध्वनित नहीं होता कि वे कब पाएँगे। वह राह देखती है और देखती रहती है। वह जागती है और जागती रहती है। फिर हार भी जाती है और सो जाती है।

यों रात ढल जाती है, और उद्यत उजला दिन आ जाता है। रातको लोग स्वप्न ले, पर दिनमें काम है। रातमें राजा पुरुष है और चाकर भी पुरुष है। रातमें रानी नारी है और दासी भी नारी ही है। पर दिन, रात नही है। दिनमें राजा राजा है, चाकर चाकर। रानी रानी है और दासी मात्र दासी।

इससे, दिन जब चढता है, रातकी भूलसे उठकर दुनिया जब अपने आपेमें होती है, उस समय महारानी महामाया भी राजसिंहासनके ऊपर और राज-मुकुटके नीचे शासन-तन्त्रके निर्वाहमें कटिबद्ध बन आती हैं।

ऐसे ही वर्षपर वर्ष बीत गये हैं। यौवन परिपक्व होता गया है और रातें आँसुओंसे भीगती बीती हैं। राज्यमें अखंड शासन-चक्र चलता रहा है, निर्विघ्न अनवरत और अलिप्त। पर, यौवन अब ढला चाहता है। महामायाको उत्तर नहीं प्राप्त हुआ है कि वे कब पावेंगे। अपने प्रश्नको अपने चारों ओर ध्वनित करती हुई, निस्पन्द रात्रिमें, उत्तरापेक्षिणी वह सदा ही बैठा की है; उत्तरकी भनक उसे कहींसे भी नही पड़ी है। अब जब बिछोह पक गया है, वह कहती है—'अरे, अब तो बोलो, तुम कब आओगे?' और जब भी उत्तर नही पाती, तो सोच उठती है—अभी आकांक्षाका ढलना कुछ और शेष है शायद। जब आकांक्षा ढलकर निःशेष हो जायगी, तभी शायद प्रियतमका आना होगा। तब फिर अपनेको देखकर सोचती है—'अरे, यह यौवन क्यों नही और जल्दी-जल्दी मुझपरसे ढलकर चला जाता है कि प्रभु मिलें!'

* * * *

इधर राज्यमें षड्यन्त्र बन चले हैं। यह महामाया रानी बनकर यों निरकुशा रहेगी? अत्याचार क्या यों ही होते रहेंगे? दैन्य क्या अपमानित ही होगा? भूखोंकी चीख क्या कलपती ही जायगी, वह सुनी न जायगी? यह महामाया कौन है? इसके पास रानीका कोई पट्टा लिखा हुआ नहीं है। यह स्त्री है कि

राक्षसी है ! हेमवन्त द्वीपको इससे मुक्त करना होगा। गुप्त समितियाँ बनने लगीं और गुप्त मन्त्रणाओंने बल पकड़ा। युवक आदर्श सीखने और सिखाने लगे। बलिदानका महत्त्व आविष्कृत हुआ।

और, रातमे जब अबला महामाया धरतीपर बिछी चटाईपर लोट-लोटकर समुद्रका गर्जन सुनती, वन-प्रान्तकी ॲधियारी रेखाके इंगितको बूझती और असंख्य तारोंको ताकती हुई, अपने निष्फल यौवनका विसर्जन देती हुई, अकेली, अरक्षणीया, पूछती होती थी—'अरे, तुम कह दो, मै कब तुम्हारे पास आऊँगी। तुम बहुत दूर हो, तब मैं ही चलती हुई, कहो, किस राहसे तुम तक आ जाऊँ ?' उस समय राज्यके कुछ अधिकारीगण कोठरीमे दिया-बत्ती जलाकर इकट्ठे मन्त्रणा करते होते थे कि निरकुश सम्राज्ञी बनी अत्याचारिणी महामायाके भारसे कैसे अपने सुन्दर राष्ट्र हेमवन्तको मुक्त करना होगा ? वे लोग हेमवन्तके मान-चित्रको नमस्कार करके एक-एककर शपथ खाते थे कि वे उत्सर्गसे पीछे न हटेंगे, राष्ट्रको नृशसतासे मुक्त करेंगे। वे लोग संकल्पसे भरे, धर्म-भावनासे उद्धत, उत्सर्गको उत्सुक, उस समय अपने राजनीतिक कर्तव्यको परस्परापेक्षासे ज्वलन्त और निर्दिष्ट और धारदार बनाया करते थे।

महामात्यने आकर कहा—महारानी, प्रजामे विद्रोहियोंका प्रभाव बढ़ता जाता है। आज्ञा दीजिए, विद्रोहियोंके सम्बन्धमे अधिक शोध की जा सके। उस ओर अब अत्यधिक सतर्कता भी कम हो सकती है। महारानी, आज्ञा दीजिए, मैं कानून...

रानी—महामात्य, कानूनका पालन करो। उसका अक्षर-अक्षर पालन हो। ममता अन्याय है। लेकिन कानूनमे जिन्हे शका है, उसमे परिवर्तन जिनका लक्ष्य है, राजनीतिक जिनकी प्रेरणा है, उनका दमन न होगा। विद्रोहियोंका प्रभाव बढ़े, लेकिन साधारण न्यायसे अधिक कोई अधिकार, कोई अस्त्र मै तुमको न दूँगी। और तुम जानते हो, मेरे दिन अधिक शेष नहीं भी हो सकते हैं।

मन्त्री—महारानी, षड्यन्त्र घरसे बहुत दूर नही है। आपकी ही रक्षाका हाथ उन्हे विनाशसे बचाये है। महारानी, षड्यन्त्रका विस्फोट भयकर हो सकता है।

रानी (सस्मित)—रानीके जीवनसे तुम्हे प्रेम है ? रानीके पास उस प्रेमका हेतु नहीं है।

मन्त्री—महारानी !

रानी—अपने जीवनका एक भी दिन कम करनेकी इच्छा करनेका वश मेरा नहीं है। जीते ही चलना होगा। तब तक, जब तक प्रार्थना स्वीकृत हो।

षड्यन्त्रकारी भीरु हैं, किन्तु भीरुता तो कानूनमे दण्डनीय नहीं है। षड्यन्त्रका उद्देश्य कौन जाने कहाँ तक पवित्र है ! किन्तु हम तुम कितने पवित्र हैं ? शासन-तन्त्रको सस्कार देनेका सकल्प तो दण्डित नहीं हो सकेगा। और जो मेरी मुक्तिके इच्छुक हैं, वे अगर कानूनकी पकड़में आते भी हैं, तो कानूनको मेरा अधिनायकत्व इस अशमे स्वीकार करना होगा कि मै उन्हें अदण्डनीय ठहराऊँ। क्योंकि प्रश्न मेरी जानका है। मेरी सम्पत्ति मेरी जान है और उसे लेनेवाला मेरी इच्छाके विरुद्ध दडित नहीं किया जा सकेगा।

मन्त्री—महारानी, कुछ अतिसाघातिक सूचनाएँ मैंने पाई हैं। लिखित प्रमाण मेरे पास हैं। (कागजोका एक बड़ा पुलिन्दा देते हुए) महारानी, आप इन्हें देखें। आपके अतिविश्वासी लोग आपके शत्रु हैं।

रानी—(कागजोको स्थिरताके साथ फाड़ते हुए) अमात्य, मेरे विषयमे इतने चिन्तित न बनो। क्रान्तिसे षड्यन्त्रकारी क्यो डरते हैं, यही मुझे आश्चर्य है। क्या तुम महामात्य, दिखाना चाहते हो कि तुम भी डरते हो ? भय *संहारका हेतु है। निर्भय रहनेसे सहारकी आवश्यकता निःशेष होगी। महामात्य,* मुझे दीखता है, षड्यन्त्रकारियोंकी भीरुता कुछ बलि लेगी। महामात्य, उन बेचारे षड्यन्त्रकारियोको क्या किसी प्रकार निर्भीक नही बनाया जा सकता ?

मन्त्री—महारानी !

रानी—मुझे क्यो न न्यायाधीशके समक्ष लानेकी वे माँग करें ? यह क्यों नही समझा जा सकता कि रानी होकर महामाया नारी है ? कि वह एक व्यक्ति है कि रानी होकर किसी कानूनसे वह छूटी नही है। ईश्वरका कानून अमोघ है, अनिवार्य है। महामात्य, इस जानकारीको सर्वप्राप्य बनाओ।

मन्त्री—मैं महारानीजीकी सेवामें चेतावनी देने आया था। महारानी उसे लेना अस्वीकार करती हैं। महारानीने मेरे कर्तव्यकी भी मर्यादा बाँध दी है। यदि राज्यके विरुद्ध षड्यन्त्र रचनेवालोंको महामात्य व्यर्थ नहीं कर सकता, तो वह महामात्य किस लिए है ? महारानीकी रक्षा नही कर सकता, तो सेवक किस लिए है ? मै महारानीका अमात्य होकर नही सह सकता कि महारानीके अनिष्टको न रोक सकूँ। उस अनिष्टके मार्गमें अवरोधक न बनना, महारानी, सहायक बनना है। महारानी इसलिए मुझे अपने पदसे मुक्त होने दें।

रानी—महामात्य !

मन्त्री—महारानी !

रानी—अमात्य, तुम इस समय छुट्टी चाहते हो ? क्या मैं कहूँ—'अच्छा ?' क्या मैं महाराज वैजयन्तकी तुम्हे याद दिलाऊँ, जिनके मात्र

उत्तराधिकारी बने हम यहाँ बैठे हैं ! क्या मेरे दिन भी अब बहुत बचे हैं ! फिर भी तुम छुट्टी चाहते हो—तो—

मन्त्री—महारानी !

रानी—महामात्य, जाओ, मेरी चिन्ता न करो। इन कागजोंकी भी चिन्ता न करो, ये जल जायँगे। षड्यन्त्रकारियोंकी खबर रखो, पर यदि प्रजाकी हानि नहीं करते, तो उनकी स्वतन्त्रतापर तनिक विकार न लाया जा सकेगा। महामात्य, यों हम तुम सबको क्या अनन्त काल तक जीना है ?

मन्त्री—महारानी !

(रानीने जानेका संकेत किया। महामात्य चले गये।)

एक रोज महामायाने मुट्ठीमें पकड़े अपने केशोंमें देखा कि केश उसके सफेद भी हो गये हैं। उसे प्रसन्नता हुई। उसने महामात्यको बुलाकर कहा—महामात्य, मैं आज तुम्हें एक प्रसन्नताकी सूचना देना चाहती हूँ। रानी महामायाके प्रयाणका समय अब निकट आया है। मैं कहना चाहती हूँ कि मैं चुपचाप जाना चाहती हूँ। रक्तपात नहीं चाहती।

उस रात्रिको महामाया अत्यन्त कातर हो-होकर पुकारने लगी—'ओजी, बताओ, तुम्हे कब मै पाऊँगी ? मैं कब तुम्हारे पास आ जाऊँगी ? अरे, बताओ।'

बहुत देर और बहुत आँसुओंके बाद मानो कहीं अत्यन्त पासहीसे उत्तर मिला—'महामाया, धैर्यका पुरस्कार तुम्हें मिलेगा। मै कहीं दूर नही हूँ, प्रियतमे !'

* * * *

अगले प्रातःकाल नगर-भरमे लाल-लाल अक्षरोंमें पत्रक चिपके हुए मिले, जिनमे लिखा था कि राज्यके मदमे मत्त हुई रानी महामायाका अन्तकाल निकट है। प्रजाको जाग्रत होना चाहिए, उत्तिष्ठ होना चाहिए। सत्यकी ही सदा जय होगी, अत्याचारीको नीचा देखना होगा। प्रजाजन उठो, बलि होओ। पर, अपना स्वत्व प्राप्त करो।···आदि।

महामात्यने महारानीकी सेवामें उस पत्रककी प्रति प्रस्तुत करते हुए निवेदन किया—देखिए, महारानीजी, आपकी क्षमाका परिणाम यह है !

महारानीने पत्रकको एक निगाह देख लिया और ईषत् स्मितके साथ कहा—महामात्य, मैं किस दिनके लिए जी रही हूँ ? क्या जानेके दिनके लिए

ही नहीं ? मुझे रात ही अपनी प्रार्थनाकी स्वीकृति मिल चुकी है। प्रभातमें रक्ताक्षरोसे अकित उसका प्रमाण तुमने मुझे ला दिया है, तब तो मैं रातकी बातको चाहकर भी स्वप्न नहीं समझ सकती।

महामात्य—महामाया रानी !

रानी—अमात्य, प्रबन्ध यह करो कि रक्तपात न हो।

मन्त्री—क्या प्रबन्ध करना होगा, माता ?

रानी—क्या प्रबन्ध ? घोषणा कर दो कि चौबीस प्रहरके भीतर राज्यवासी सोच देखे, वे क्या चाहते हैं। उस समयके भीतर सब स्वतन्त्रता उन्हे है। उसके बाद रानी महामाया रानी नही रहेगी। शासनका जो तन्त्र बनेगा, रानी उसके हाथमे होगी, उसके न्यायके समक्ष होगी। प्रजा आत्म-निर्णय करे। रानीको चौबीस प्रहर बीतनेके बाद वह किसी भी प्रकार रानी नहीं पा सकेगी।

मन्त्री—माता महामाया !

रानी—मै जानती हूँ, अमात्य। रात मैंने उत्तर पा लिया है। तुम जाओ। अपनी सेनाको प्रस्तुत रखो। उसकी आवश्यकता हो सकती है। रानीको रानी चाहनेवाले लोग उत्पात करे, तो उनका दमन करना होगा। रक्त गिरे ही, तो अपनोका ही गिरे, अमात्य। प्रेमका यही मार्ग है।

और विह्वल, अवश, महामात्यको महामायाने उसके कर्तव्यकी ओर भेज ही दिया।

उपसहार

महामायाने प्रबन्ध किया कि षड्यन्त्रकारियोकी भीरुता नष्ट हो। वे निर्भीक बनकर सामने आवे। अपने अन्तर्हित हो जानेकी बात उसने नहीं सोची। प्रत्युत षड्यन्त्रकारियोके हाथो स्वय दण्डित होनेकी अनिवार्यता उसने उपस्थित की। उसने व्यवस्था की कि सार्वजनिक वधस्थलपर जाकर उसका सिर उतारा जाय। इस प्रकार रानी महामायाकी मुक्ति हुई ! [1]

---

[1] उपसहार लाचारीका परिणाम है, क्योंकि कहानी बड़ी बहुत न होनी चाहिए। सम्भव है कि उपसहारकी कहानी और भी कभी लिखी जाय।

—जैनेन्द्रकुमार

राजीव और भाभी

राजीवको नामसे आप न जानते हो, यह कठिन है—जी हाँ, शिल्पी राजीव ही। उसके साथ, कोई बीस वर्ष हुए, एक हालीके दिन क्या अघटनीय घटित हुआ, सो आज सुनानेकी छुट्टी हुई है।

आज तो वह बहुत बड़ा आदमी करके जाना जाता है। बड़े आदमीसे अवश्य भाव यह नही कि देह उसकी सक्षिप्त नहीं है। दुबला तो वह अब भी सदाकी भाँति है। लेकिन अब जो सम्पन्नता उसको चारो ओरसे ऊँचा उठाए है, वह न थी। नई गिरिस्ती उसकी हुई थी, और तब माँ भी थी। जैसे-तैसे अपनेको और उनको पालता था।

बीस बाईस वर्षकी अवस्थामे मनुष्यकी आकाक्षायें स्वप्निल होती हैं। उनको परवरिश मिले तो वह पनपे, नही तो सूखकर मुरझा जाती हैं, और यौवन बीतते-बीतते आदमी अपनेको चुका हुआ अनुभव करता है। वे आकाक्षाये स्नेह माँगती हैं। स्नेह अनुकूल समयपर और यथानुपात मिले तो वे हरी-भरी होकर कैसे-कैसे फूल न खिला आएँ, कहा नही जा सकता। नहीं तो वे अपनेको ही खाती-चुकाती रहती हैं। मूल जिनकी दृढ हो, ऐसी प्रकृतियाँ विरोधमेसे भी रस खीचती हैं, अवश्य; और वे मानो चुनौती-पूर्वक बढ़ती रहती हैं। पर इस शक्तिको प्रतिभा कहा जाता है, और प्रतिभा सरल नहीं है, वह तो विरल ही है।

कहना कठिन है कि राजीवमे प्रतिभाकी शक्ति कितनी थी। किन्तु जब उसमे अतीव भूख थी कि कोई उसे पूछे, तब वह निरा अकेला अपनेको

पाता था। दुनियाकी निगाह बाज़ारकी ओर थी, भला राजीवमें क्या उसका अटका था? बस माँ उसकी थी, जो घरका काज-धन्धा करती थी। पत्नी तब नहीं आई थी।

एक रोज़ माँकी तबीयत कुछ खराब थी। वह रोटी नहीं बना सकती थीं। सो रोटी बनाई, सब काम किया, और राजीव नौकरी खोजनेके लिए निकल गया। लौटकर आ सका कही शामको। हारा-थका था, और भूखा था। निक सुस्ता कर जब चूल्हेपर कुछ चढ़ानेके विचारसे चौकेमे वह गया तो देखता है, कि वहाँ तो कई भाँतिके उज्ज्वल बर्त्तनोमे पक्का खाना रक्खा हुआ है!

राजीवने पूछा—माँ, तुमने खाना बनाया है?

माँने कहा—नहीं तो बेटा, बहू रानीने भेज दिया है।

माँसे कई बार राजीवने बहू रानीका जिक्र सुना है। यह हवेली उनकी ही है। और भी जायदाद है। वह बड़ी दयावन्त हैं। राजीवकी नौकरी लगनेके बारेमे अक्सर पूछती रहती हैं। हवेलीका थोडा-सा हिस्सा राजीव और राजीवकी माँको उठा दिया है, बाकी ऊपर वह खुद रहती हैं। दो बच्चे हैं, जो उन्हें भाभी कहते हैं।

कभी कभी मोटरमे उन्हें जाते राजीवने देखा है। इस घरमे भी कभी-कभाक वह दीख गई हैं। जरा देहसे स्थूल हैं, लेकिन हँसनेवाली बड़ी हैं। मनकी तो बहुत ही अच्छी हैं। और रूपकी—(लेकिन, वहाँ तो वह अदाजसे ही काम लेता है, क्योकि ठीक तरह उसने कोई उन्हे देखा थोड़े ही है)—रूपकी तो वह सर्वथा देवी ही हैं, ऐसा सुश्री मुख है।

राजीवने कहा—माँ, तुमने कह न दिया कि रज्जो आकर खुद बना लेगा। वह क्यो तकलीफ करती हैं?

माँने कहा—मैं तो उनके हँसते हुए चहरेके सामने कुछ कह ही न सकी, बेटा। और वह आधे घटेसे भी ज्यादे मेरे पास बैठी रहीं।

राजीवने आश्चर्यसे पूछा—खाना वह खुद लाई थीं, क्यों माँ?

माँने कहा—'हाँ, बेटा!' और तदनन्तर सोत्साह वह बखान करने लगीं कि रानी बहू और क्या क्या बातें कहती-सुनती रही, कैसे वह साक्षात् देवी हैं, और...

लेकिन राजीव सुननेको ठहरा नहीं। वह गया और चुपचाप जाकर खाना खा लिया। खाकर तभी उसने उन ऊपरसे आए हुए बर्त्तनोंको अच्छी तरह माँजा, उन्हें पोछा और लेकर चला। जिन्दगीमे पहली बार जीना चढ़कर गया ऊपर, और पुकारने लगा—" हीरा, ओ हीरा, यह बर्तन ले जा। "

हीरा नौकरका नाम था। हीरा तो नहीं आया, पर देखता क्या है कि बहू-रानी ही, मुँहपर थोड़ा सा घूँघट डाले बर्त्तन लेनेको आ गई हैं। वह तो जैसे सब भूल गया, और जाने कब उसके हाथमेंसे बर्तन ले लिए गए, और बहू रानी चली गई। एकाध मिनट सुध-बुध खोया-सा वह वहीं खड़ा रहा, फिर चला आया।

उसी रातको उसके मनमें फूटा उसका पहला चित्र। वह चित्र फिर कन्वास-पर उतरा, बिका, और उसने फिर राजीवको राजीव बना दिया।

किन्तु भाग्य ही तो है। जब वह खुले ही तो उस कोषमेंसे क्या क्या नहीं निकलेगा, कोई जानता है? चार-पाँच वर्षमे उसका विवाह भी हो गया। और तब कल्पनाके पीछेकी अवगुंठनावृत रानी बहू खुले सत्यमे उसकी भी भाभी हो चलीं। तब देखा कि इस स्थूल शरीरमे बड़ा चुहलबाज दिल है। वहींसे भाग्य देव भी पलट कर बरस पड़ने लगे, और राजीवको मानों जीवनमे अपना उद्दिष्ट कर्म पा गया।

अब आप जानिए, होली होली है। राजीव सौम्य प्रकृतिका है, इससे क्या उसे छोड़ दिया जाय? भाभी ऐसी क्या पस्त-हिम्मत हैं? हाँ—हाँ, राजीव साहब बडे ही बुजुर्ग बड़े ही सज्जन हैं, लल्लो-पत्तो भी जानते हैं। लेकिन यों बचनेसे तो दुर्गति दुगुनी होगी, जान लीजिएगा। क्योंकि होली होली है और भाभी भी भाभी है।

उस वर्ष राजीवकी खासी मरम्मत हुई। और तो और, उसकी नवेली पत्नी भी भाभीके षड्यन्त्रमें शामिल हो गई। तब राजीवने भी कमरसे साहस बाँध-कर बचावमें थोड़ा कुछ ऊधम किया कराया।

उस रोज खुल पड़ी हुई आनन्दकी बयारने राजीवकी जीवन-नौकाके पालोंको ऐसा भरपूर भर दिया कि वह उड़ती ही चली गई। वह तमाम सब-त्सर तैर गया हो, मानों ऐसे निकल गया। इस वर्ष राजीवकी परिस्थिति भी खूब सुधर आई, माँग बढ़ उठी और उसकी पहुँच ऊँचाइयोंमे होने लगी।

इसी तरह कई वर्ष निकलते गए।

जिस होलीकी बात कहने चले हैं, उसके लिए तय पा गया था कि भाभीजी बड़ी तमीज़दार हैं और बड़ी अच्छी हैं, सो राजीवको माफ़ ही रक्खेंगी।

तय तो पा गया था, किन्तु होलीसे दो रोज पहले बात-बातमें जब अजब गम्भीरतासे भाभीने कहा—देखो, उन्हे अच्छा नहीं लगता। और कुनबेमे एक गमी भी हो गई है। अबके कुछ दगा मत मचाना।

तब अनायास राजीव कह उठा——यह बात है!

भाभीने कहा—नही भाई, मै हाथ जोड़ती हूॅ, इस बार घरमे रग-वग कुछ भी न होगा।

राजीवने कहा—मै तो डालूॅगा।

अति विनीत होकर भाभीने कहा—तुम्हारे हाथ जोड़ती हूॅ, राजीव! अबके गमी हो गई है। मै नहीं तो कभी ऐसा कहती हूॅ?

राजीव भाभीके इस अनुनीत भावपर मन ही मन शकित और त्रस्त हो आया। उसने मानो लाचार होकर कहा—अपनी बारीको भाभी, तुम ऐसा कहती हो!

और भी कातर होकर भाभीने कहा—मै तुमसे कहती जो हूॅ, देवर बाबू! नहीं तो भाभी भला कभी कुछ कहती है! उन्हे यह सब अच्छा नही लगता।

'उन्हे' अर्थात् पतिको! पति अति शुद्ध-हृदय और खुली तबियतके आदमी हैं। राजीवसे जब मिले हैं, बड़े प्रेमपूर्वक मिले हैं। पर वह काम-काजी हैं, और राजीव उनके इतने निकट नही हो सका है। और...

राजीवने मानो बड़े साहसपूर्वक कहा—अच्छा, होली आने दो, तब देखेंगे।

राजीव परिस्थितिको बिल्कुल समझता ही नही, सो नही। इससे होलीसे ठीक पहले दिन अपने एक मित्रके अनुरोधपर राजीवने मित्रसे कह दिया—अच्छी बात है, मोटर ठीक सवा-नौ बजे मुझे घरसे ले ले। मै तैयार मिलूॅगा। प्रोग्राम साढ़े-नौका है न?

राजीव अपने मनमे जानता है कि उसे होलीका हुड़दङ्ग पसद नहीं है। उस रोजकी भाभीकी आर्त्त सी बनी वाणीपर रह-रहकर उसकी स्मृति जाती है। उसे लगता है, वह कुछ समझता भी है। फिर भी हठात् उसके मनमें शका रहे ही आती है कि कहीं होलीके दिनके लिए भाभीके भीतर कोई शरा-

रत तो नही डुबकी है। उसने सोचा है, जो भी हो, सवा-नौ तक अपने कमरेसे बाहर वह पैर भी नहीं रक्खेगा, और फिर मोटर आई कि चल ही देगा। होली बीत चुकेगी, तब शामको कहीं लौटेगा। सब बिल्कुल ठीक है।

किन्तु जब सिरपर दुर्दैव ही खेल आवे तो—? और विरञ्चि बाबाके मनका हाल भला कौन जान सकता है? जब राजीवने मोटरकी बात अपने मनमे पक्की कर ली, तब सब प्रपंचोके रचयिता वह बाबा विरञ्चि ऊपर बैठे बैठे मुस्कराए होगे। कहते होगे—'देखो लड़केकी बात! अरे, हम फिर कुछ ठहरे ही नही! जो ये दुनियाके छोकरे हमे बिना बूझे सब करने लगेंगे, तो हो लिया काम।' और उन्होने उस समय कौतुकपूर्वक ओठों-ही-ओठोमे कहा होगा—'अच्छी बात है, चिरजीव राजीव! तो लो, क्रीड़ा देखो।'

मोटर सवा-नौपर आती, राजीव क्या देखता है कि उससे पहले ही चले आ रहे हैं, डाक्टर सीताशरण। गुलालसे मुँह रँगा है, और कपड़े तरबतर हैं।

राजीवने कहा—क्या हाल है डॉक्टरसाहब?

डाक्टरने बताया कि ये बालक बड़ी बला होते है। देखते तो हो कि क्या गति बना दी है। घरसे अच्छा भला चला था, यहाँ आतेतक खासा लंगूर हो गया हूँ।

उसके बाद डाक्टरने पूछा कि यह क्या है? राजीव घरमे बद क्यो है? क्या अकेला है? श्रीमती कहाँ हैं? छोड़ गई?—चलो छुट्टी हुई।

राजीवने कहा कि नही, ऐसी शोचनीय परिस्थिति नही है। फिर भी मायके गई है। तभी तो वह जरा चैनसे दिखाई देता है।

उस समय जेबमेसे डाक्टरने चुपके-से रगीन पानीसे भरी एक शीशी खींची।

राजीवने किन्तु देख लिया, कहा—हे-हे डाक्टर! मुझे पार्टीमे जाना है।

'डरो मत,' डाक्टरने कहा—'यह जादूका रग है' और राजीवके बहुतेरा कहते-कहते और भागते-बचते डाक्टरने उसके उजले कपड़ोपर रग छिड़क ही दिया और मुँहपर जरा गुलाल भी मल दिया।

"घबराओ नहीं राजीव, देखो रंग अभी गायब हो जायगा।" और सच-मुच पानी सूखते-सूखते कपड़ेपर जरा भी रगका धब्बा नहीं रहा,।

राजीव अप्रत्याशित भावसे कह उठा—यह तो बहुत ठीक बात है, डाक्टर, ऐसा और रग तुम्हारे पास है ?

डाक्टरने कहा—'जितना चाहो' और जेबमेसे आठ-दस पुडियोका बण्डल-सा निकालकर सामने रख दिया।

"आधा पाव गुनगुने पानीमे एक पुड़िया डाल दो, बस, रग तैयार। कई रगकी पुड़ियाँ हैं।"

अनायास राजीवने पाँच-सात पुडियाँ उठा ली, और उतनी ही शीशियाँ निकालकर, उसने जादूका रग तैयार कर लिया। और त्वरा-ग्रस्त हो उसने कहा—देखना डाक्टर, क्या बजा है ?

"साढ़े-नौ होनेवाले हैं, पाँच-सात मिनट हैं। अच्छा, मै चलूँ"। और डाक्टर चले गए।

तब मुँहका गुलाल, धोकर साफ किया, शीशा देखा, बाल जरा ठीक किए और शीशियाँ होशियारीसे जेबमे सँभाली। और राजीव लपककर चला ऊपर। चुप ही चाप पहुँचा। देखा, भाभी बेफिकरीके साथ अदरके कमरेमे पान बना रही हैं, और एक ट्रक खुला पडा है। अचक, पैर रखता रखता भाभीके पीछे वह पहुँचा और पहुँचते पहुँचते तीन-चार शीशियोके मुँह खोलकर एक साथ कई रग भाभीकी साडीपर छिड़क दिए।

भाभी एक-साथ चौककर मुड़ी, देखा—राजीव! वह पहले तो शायद मुस्करानेको हुई। राजीवको ऐसा भी लगा कि कहीं होशियारीसे झपटकर उसके हाथसे शीशी ही उड़ा लेनेवाली तो यह नही हो रही हैं! किन्तु तत्क्षण फीकी और चिन्तित पड़कर उन्होने कहा—नहींजी, यह हमे अच्छा नहीं लगता।

राजीव सामने हँसता हुआ खड़ा रहा। उसका मनसूबा था कि गुलालकी भी एक रेख भाभीके माथेपर लगायगा, पर कहनेको वह हँसता रहा, लेकिन मन उसका जैसे एक साथ बँधकर खड़ा हो गया था। भीतर भीतर जैसे उसे परिताप हो रहा था, भाभीके मुखपर ऐसी कुछ व्यथाकी छाया थी।

"नही नही" भाभीने कहा—"हमे यह बिल्कुल अच्छा नही लगता है। तुम जाओ।"

राजीवने कहा—"भाभी, यह जादूका रग है। अभी उड़ जायगा।"

भाभीने कहा—" नहीं, तुम जाओ। "

अपनी स्वच्छ कमीज़का पल्ला आगे पकड़कर राजीवने कहा—'यह देखो' और उस पल्लेपर थोड़ासा रंग छिड़क लिया। " देखो, तुम्हारे सामने-सामने यह उड़ जाता है या नहीं। "

सचमुच, रग तो नामके धब्बे तकको वहाँ न रहा। राजीव आश्वस्त भावसे हँसा।

भाभीने कहा—नही, नही, तुम जाओ।

राजीव बोला—भाभी!

भाभीने अनुनीत होकर कहा—हमारे यहाँ गमी हो गई है। नहीं—नहीं, तुम जाओ।

राजीव जिस उत्साहको लेकर यहाँ आया था वह तो अब उसे बिल्कुल छोड़ ही चला। उसने कहा—भाभी, इस रगसे कपड़े बिल्कुल खराब नहीं होगे।

भाभीने चुपचाप मुँह फेरकर पान लगाना शुरू कर दिया। फिर मुड़कर पानकी तहकर उसे देते हुए कहा—यह पान लो राजीव, और तुम जाओ, देखो।

भाभीकी वाणीमे कुछ वह बात थी, जिसका राजीव तो उल्लघन जीतेजी कभी कर ही न सकता था। उसने कहा—जाऊँ?

" हाँ, जाओ। "

" तो, लो, यह शीशियाँ। मै इनका क्या करूँगा? "—राजीवने खिन्नभावसे हाथ फैलाकर उन्हे आगे किया।

बिना कुछ कहे शून्यभावसे भाभीने भी हाथ बढाकर उन्हे ले लिया।

राजीव तब मौन खड़ा रह गया। भाभी भी कुछ नही बोलीं। उसी समय जोरजोरसे बजते हुए मोटरके हौर्नकी आवाज़ आई। राजीवने कहा—'अच्छा भाभी' और झटपट झुककर खड़ी हुई भाभीके चरन छूकर वह जल्दी जल्दी लौट आया। आकर बैठकका दर्वाज़ा खोल, बाहर बरामदेमे जो गया कि देखता है, मोटरमे स्वय ला० शिवशकरलाल बैठे हैं।

शिवशकरने देखते ही कहा—क्या बना रहे हो, राजीव! चलो न।

राजीवने कहा—'बस, आ ही रहा हूँ। दो मिनिट।' और अदर जाकर झपटकर बाँहोमे कोट डाला, पतलून चढाई, टाईको खुला ही लटकने दिया,

हैट रक्खा, छड़ी थामी, बैठकके किवाड़ दिए, मोजे और उसपर बूट पहना और सहनसे होकर मकानकी ड्योढ़ीकी ओर लपका।

सहन पार कर रहा ही था, एक साथ बाल्टीभर गरम रगीन पानी ऊपरसे ऐन उसके सिरपर आकर पड़ा, ऐन सिरपर ! उसकी चोटसे हैट नीचे आ रहा, कपाल भीग गया और कपड़े सब खराब हो गए !

किन्तु उस समय राजीवका जी फूलसा खिल आया। जैसे वह इस भाँति नहाकर धन्य हो उठा। उसने बिगड़कर धमकीके स्वरमे कहा—" यह कौन है ? दीखता नहीं है कि कोई भला आदमी कहाँ जा रहा है ! "

इसके उत्तरमे बडी जोरसे खिलखिलानेकी ध्वनि राजीवके कानोमे पडी।

' हॉ–ऑ ? ' और जोरसे बूटोको सहनके फर्शपर पटकता हुआ वह उसी मुँह अपने कमरेमे लौटकर आया, धोती पहनी, पैरोमे चप्पल डाली, और बैठकके किवाड खोल सामने बरामदेमे आया।

वहॉ उसे देखते ही मोटरमेंसे शिवशकरने कहा—अजब आदमी हो। अबतक चल ही रहे हो ! ऐसे चलोगे ?

राजीवने बरामदेके नीचे सडकपर आकर कहा—अब नही चल सकूँगा।

" क्यो ? "

" यह औरत-जात बडी खराब है जी। मै तो अभी बाज़ारसे पक्का रग लेकर आता हूँ !...हॉ, चलो तुम्हारी मोटरमे चलूँ। "

शिवशकरने कहा—क्यों, तो साथ नही चलोगे ?

"साथ चलूँगा ? देखते तो हो, यह सिरका हाल। बाज़ारसे रग लाकर इस सिरकी अब मरहमपट्टी करनी होगी। "

बाजार आनेपर राजीव वास्तवमे ही मोटरसे उतर गया। माने न माना। इतनेमे ही उसे सामनेसे आते दिखाई दिए, भाईसाहब—यानी जिनको भाभीके नाते राजीव जानता था। हॅसते हुए आ रहे थे, कपडे उनके भी रग-बिरगे हो रहे थे, हाथमे रूमालमे फल लटके थे, एक ओरसे सेंध बनाकर दो चोइल ककडियॉ निकल रही थी और भीतरसे लौकाट उझक रहे थे।

पूछ उठे—कहिए, कहाँ ?

राजीवने कहा—कुछ नहीं, यो ही।

" मोटरमे ये कौन थे ? "

राजीवने कहा—लाला शिवशंकरलाल थे।

"अच्छा!"

और 'अच्छा' कहकर भाईसाहब आगे बढ़ गए।

राजीवका उत्साह हठात् कुछ मंद हुआ। फिर भी जैसे एक मद सवार था। दुकानसे कई तरहके रग लिए, घर आकर उन्हे घोला और लोटा भरकर पहुँचा वहीं ऊपर।

भाभीका छोटा बालक, जिसका नाम पडा था, छोटे, और जो बड़ा खोटा था, छज्जेपर खडा था। राजीवको चढ़ते देख, वहींसे बोला—भाभी, ओ भाभी, चाचा आ रहे हैं!

और, पर्याप्त-काया भाभी, यह सुनते ही, सब काम छोड फुर्तीसे भाग छूटीं। भागकर भीतरके कमरेमे भाग गई। जल्दीमे किन्तु उसके पट ठीक तरहसे उनसे बन्द नही हुए और वह हाथके जोरसे उन्हे बन्द किए हुए उनके पीछे डटी खडी हो गई!

राजीव ऊपर आया तब उसी खोटे छोटेने इशारेसे बताया कि भाभी हाँ, उस पीछेवाले कमरेमे हैं। उधरको बढ़ता ही था कि जोरकी डपटकी आवाज आई—क्या है?

आवाज कम काफी न थी, उसपर स्वय भाईसाहब भी सामने आए। अजब डॉट उनकी मुद्रामे थी। बोले—क्या है?

राजीवने कोठरीकी ओर बढ़ते हुए ही कहा कि कुछ नही।

"कुछ है भी?"—और भी जोरसे भाईसाहबने कहा।

"रग का लोटा है।" राजीव ने धीमेसे कहा। कहकर भाईसाहबके देखते देखते वह कोठरीकी ओर बढ़ा और लोटेको बाएँ हाथमे लेकर दाएँ हाथसे उसने किवाड़ोमे जा धक्का दिया!

भाभीने पूरा ज़ोर लगाकर किवाड़ बद रक्खे। भाईसाहबने चिल्लाकर कहा—राजीव!

राजीवने कहा—'रंग तो हम डालेंगे।' और किवाड़मे दूसरा धका दिया।

कमरेके पीछेसे छज्जे-छज्जे एक दूसरे मकानमे जाया जा सकता है। वहाँ एक सद्-गृहस्थ रहते हैं। आर्यसमाजके वह एक उत्साही सदस्य हैं और रेलवेके हिसाब-दफ्तरमे काम करते हैं। चित्रकलाके प्रशसक और पारखी हैं।

राजीवके एकाध चित्रोंमे भी उन्होंने ड्राइगका ठीक होना स्वीकार किया है। उनकी दृष्टिमे राजीव हाँ, होनहार हो भी सकता है। उन सज्जनकी अवस्था तीस-बत्तीस होगी। पर बुजुर्गी उनपर कच्ची नही बैठती। वह चश्मा लगाते हैं, और पाँच उनके लड़के हैं। भाईसाहबके हितैषी हैं। यह सज्जन ज्यों ज्यों सोसायटीमें राजीवकी कलाकी बडाई सुन लेते, त्यो त्यो उसके प्रशसक होना स्वीकार करते जाते हैं। किन्तु राजीवके रंग-ढग कुछ उन्हें अच्छे नही लगते। उसके स्वभावके साथ जो एक प्रकारका खुलापन है, उससे इन सज्जनके चित्तमे आपत्ति बनी रहती है कि राजीवको प्रौढ़ होनेकी आवश्यकता है, वह जिम्मेदार आदमी नही है।

जब भाभीने पाया कि किवाड़ 'अब खुले और अब खुले!' तब सहसा उन्हें छोडकर पीछेकी ओर वह भाग खडी हुई। बस, छज्जे परसे दूसरे घरमें चली जाएँगी। तब ताका करे राजीव बाबू; हाँ—तो, आए हैं बड़े...'

किन्तु छज्जेका इकपटा खोला ही था कि सामने पडे वही शुद्ध आर्य सद्-गृहस्थ सज्जन! वह कुर्सीपर इधर ही देखते हुए बैठे हैं, हाथमे किताब है। भाभीने एक-दम लम्बा घूँघट खीच लिया। वह ठिठकी और काठमारी-सी रह गई। छिः–छिः, वह वहाँ गढ ही क्यो न जा सकी।

सज्जनने सावधानतापूर्वक एव मिठासके साथ कहा––ओह, सेठानीजी हैं!

तभी पीछेसे राजीवकी आवाज भाभीके कानोमे पड़ी—अब कहाँ जाओगी, भाभी!

राजीव बढ़ता हुआ पास ही आ गया। भाभीको सब सूझना बद हो गया। वह मानो काँपने लगी।

राजीव विजय-गर्वमें बोला—अब कहो।

हाय-हाय, अब क्या होगा! राजीव जीतेगा? जीतेगा? मुझसे जीतेगा? अच्छा!...भाभीको आव दीखा न ताव, वह सामनेकी ओर भाग खड़ी हुई। कुर्सीपर बैठे बाबूसे छूती हुई, उनकी रसोईमेंसे भागती, दालान पार करतीं, फैले सामानको फाँद, उस घरके छज्जेमेंसे हो, जीने चढ़, हाँफती और फलाँगतीं, वह, जा पहुँची उस घरकी छतपर। पहुँचकर झट अपने पीछे पट बन्दकर दिए और उनपर कुंडी चढ़ा दी। फिर उस निर्जन तपती छतपर, अकेली, कड़ी घाममे, पत्थरपर साँस लेती हुई बैठ गई। उन्हे चैन पडा कि अब छकाया राजीवको।

किन्तु इस चैनके पगभर पीछेसे उनके चित्तमें आ पैठा उनकी स्थितिकी विषमताका बोध, जो उनको समूचा ही मानों निगल जाने लगा। तब वह बड़ी ग्लानि और बड़ा त्रास भी अनुभव करने लगीं।

भाभी भागी तो हाथमें लोटा लिए पीछे पीछे चला राजीव! सामने पड़े वही बाबूजी। उन्होंने सात्विक झिडकीके साथ टोका—यह क्या है राजीव?

राजीव बिना उस ओर ध्यान दिए आगे बढ़ा। बढ़ा, कि तभी ठिठककर भी रह गया। आगे तो एक अपरिचित महिला (बाबूजीकी धर्मपत्नी) अपने चौकेमे हैं! उसके पैर जैसे बँधे रह गए।

उस घरमे और कई वयःप्राप्त लडके-लड़कियाँ थीं। सबको इस नए ऊधम-पर बड़ा कौतुक लग रहा था। कभी वे उन भाभीको देखते, जिनके लिए उनके मनमे बडा सभ्रम था। वे तो आसपास सब लोगोंके मनोंमें सेठानीजीके रूपमें ही अकित थी, सम्भ्रान्त और आदरणीय। सबकी निगाहोंमें वह तो अतिविशिष्ट ही थी। तब फिर यह क्या है? और कभी वे इस राजीवको देखते, इस निगाहसे कि कुतूहल तो उन्हें है, पर जैसे वे जानना चाहते हैं कि यह है कौन आदमी!

बाबूजीने कहा—It is not decent, Sir,

राजीवका मन भीतर ही भीतर उसे काट-काटकर कहने लगा—It is abominable, Sir। इससे भी तीखे विशेषण उसे अपने लिए उपयुक्त मालूम होने लगे। किन्तु वह हाथमें रंगका लोटा लिए खड़ा ही रह गया, उत्तरमे कुछ भी न कह सका।

किन्तु लड़कियाँ! माना, वे अबला हैं; किन्तु दुनियामें क्या उनसे हारना होगा? भाभीके आस-पाससे (क्योंकि भाभीकी ध्वनि भी उनमें उसे चीन्ह पड़ती थी) अपने पराजयपर खिलखिल हँसी जाती हुई सुनी, उसने कलकंठि-नियोंकी व्यंगकी हँसी, मानो कि ललकार हो। उसने उसे डंक मार कर चेता दिया। अबलाकी ओरसे सबलको चुनौती?—तो अच्छा!...

राजीव भी तब उसी भाँति चौकेको, दालानको, और छज्जेको लाँघता हुआ कुछ ही छलाँगोंमे जा चढ़ा जीनेपर! ज़ीनेके छोरपर पाया मार्ग अवरुद्ध और द्वार बन्द। उसने झटककर द्वार खोला। किन्तु वे तो विरोधमें कुछ स्वर करके भिड़े ही रह गए। इसपर उसके कानोंपर बजी धारदार फिर भी संगीत-सी कोमल कई कण्ठोंकी कल-कल हँसीकी ध्वनि!

उसने कहा—अच्छा भाभी, कभी तो उतरोगी।

कहकर थोड़ी देर वही खड़ा रहा। फिर नीचे उतर आकर छज्जेपर आ खड़ा हो गया।

दो-एक मिनट प्रतीक्षामे खडे रहनेपर उसने सुना, ऊपर लोहेके जालपर झुकी भाभी कह रही हैं—रग डालोगे ?

"हाँ, डालूँगा।"

"तो मै नहीं उतरूँगी।"

"मत उतरो।"

थोड़ी देरमे भाभीने कहा—कब तक खड़े रहोगे ?

राजीवने कहा—और तुम कब तक वहाँ रहोगी ?

भाभीने कहा—अच्छी बात है!

राजीवने भी कहा—अच्छी बात है!

इधर यह था, उधर बाबूजीने भाई साहबसे कहा—आपने बहुत ढील दे रक्खी है, लालाजी!

वास्तवमे भाई साहबमे भाभीजीके प्रति अतीव प्रेम है। वह प्रेम आदर तक पहुँच गया है। घरकी ओरसे जो भाईसाहब सदा सर्वथा निश्शक रह हैं, यह सब भाभीजीके भरोसे ही तो। किन्तु वही उनकी पत्नी आदरास्पदसे कुछ और हो, यहाँ तक कि लोगोके कौतुक और कुतूहलकी विषय हो, यह एक दम उनके चित्तको दुर्विसह्य जान पडता है। और यह व्यक्ति, राजीव! ओह, इस स्थलपर तो उन्हे अपना—पतिका—एव पति नामक सस्थाका अति दुस्सह असम्मान ही होता हुआ जान पडता है। प्रभुताके प्रति ऐसा अपराध! स्त्रीकी ओरसे ऐसी अवज्ञा, ऐसी अवगणना! छिः छिः!

भाईसाहबने जोरसे पूछा—वह कहाँ है ?

बाबूने पूछा—कौन ?

'कौन ?' एक ही प्रश्नमे उसकी पत्नीके साथ कोई दूसरा भी आ सकता है, जिसे प्रश्न करके अलग छाँटना होगा—'कौन ?' इस बातपर भाईसाहबको अतिरोष हुआ। उन्होने जोरसे कहा—कौन क्या होता है, बाबू ?

बाबू इस प्रश्नपर असमजसमे रह गए, और भाई साहब धडधड़ाते हुए आगे बढ गए। छज्जेपर पहुँचकर राजीवको देखकर दृढ स्वरमे उन्होने पूछा—वह कहाँ है ?

" ऊपर हैं । "

सब सन्नाटा था। मानो जो होनहार है, उसकी अब प्रतीक्षा ही करते बनेगी, और कुछ न हो सकेगा। और भाईसाहब ही वहाँ युगयुगानुमोदित पतित्वके स्वत्व-रक्षककी भाँति खड़े थे।

भाईसाहबने ऊपरकी ओर डपटके साथ कहा—" चलो, नीचे चलो।"

सब सुन्न।

" सुनती हो? चलो, नीचे आओ।"

एकदम सुन्न।

" सुना नहीं जाता है, कि मुझे और चिल्लाना होगा।"

थोडी देरमे डरती-डरती आवाजमे एक लड़कीने कहा—" यो कहती हैं कि उन्हे हटा दो।"

भाईसाहबने उद्धत रोषको यत करते हुए कहा—राजीव, तुम नहीं जाओगे?

आ-पडी इस विषम परिस्थितिके नीचे राजीव भयभीत हो उठा था। फिर भी मानो उसकी आत्मा आतक अस्वीकार करना चाहती थी। उसने कहा—मुझपर रग डाला गया था, भाईसाहब। और मैं भरा लोटा नही ले जाऊँगा।

भाईसाहबने भयकर स्थिर वाणीमे कहा—अच्छा, चलो। वह आती है।

राजीव चला गया, तब भाईसाहबने उसी अकम्प स्वरमे कहा—अब चलो, उतरो।

उसी लडकीने ऊपरसे कहा—कहती हैं, आप चले। मै आ रही हूँ।

जोरसे पैर पटककर भाईसाहबने कहा—' फौरन् आए। सुना?' और वह उसी भाँति धमकते हुए पैरोसे लौट आए।

भाभी एक ही धोती पहने थीं। शरीरके चारो ओर उसे ठीक किया, और जीनेके द्वार खोल, वह धीरे-धीरे, डग-डग, चलती चली आई। किसीके मुँहसे एक भी शब्द न निकला।

छज्जा पार किया, कोठा पार किया, उससे आगेके दालानसे निकलती हुई, सहनके ऊपरके छज्जेपरसे रसोई-घरमें चली जावेगी। दालानके कालीनोपरसे भाभी जा रही थीं कि उन्होंने देखा, छज्जेके कोनेमे लोटा लिए राजीव खडा है, और उससे अगलेवाले कमरेमे ही कुर्सीपर उनकी (भाभीकी) ओरसे मुँह फेरे मूर्तिमान सकल्प बने भाईसाहब स्थिर भावसे कुर्सीमे बैठे हैं।

भाभीने कालीनपर खड़े-खडे हाथ जोड़कर इशारे-इशारेमें कहा—राजीव, जाओ। देखो, चले जाओ।

किन्तु, हाय–हाय भाग्य, अब भी तो राजीवने भाभीके उन ओठोंपर स्मितकी कचित् रेख पाई। अरे, अब भी तो व्यग सर्वथा वहाँसे अनुपस्थित नही है। वह रेख अब भी तो बाँकी ही है। हाय, अब भी तो मानो वह चुनौती चुप होकर बैठी नहीं है, बुला ही रही है, बुला ही रही है।

राजीवने कहा—देखो, मै गलीचा खराब करना नही चाहता। आगे आओ।

भाभीने अति सकटापन्न मुद्राके साथ गुनगुनाकर कहा—नहीं–नहीं, राजीव, हमपर रहम करो।

रहम ? उन ओठोकी सधियोमे अरे, है भी कही रहमकी दरख्वास्त ? क्या उसमे नही है कि मै अपराजिता हूँ ? कि पुरुषके निकट स्त्री कभी भी पराजित नहीं है। अपराजिता ही मै हूँ।

राजीवने कहा—भाभी !

उसी समय भाईसाहबने इस ओर देखकर जाने कैसी वाणीमे कहा—क्या है ?

स्वर होते हैं, जिनकी कोई श्रेणी नहीं होती। जिनमे एक ही साथ जाने क्या-क्या कुछ नही होता। जिनमे क्रोध होता है अपार, किन्तु जो सर्वथा शान्त और निष्कप भी होते हैं। वज्र-दृढ, किन्तु ह्रस्व घोष। उनमे एक ही साथ मनकी वेदना होती है और रोष भी। उन्हे सुनकर आदमीको हिलना ही होता है।

गूँज उठी—"क्या है ?"

और राजीवने देखा, भाभीका मुँह फक्, पीला, पके पत्ते-सा हो गया है।

पर अब भी क्या वहाँ अबलताकी चुनौती लिखी ही नही है ? क्या वह तनिक भी मिटी है ? उस भयभीत मुखपर तो अब मानो पौरुषके हाथों दबकर और भी दुर्दमनीय, परास्त होकर और भी अविजेय, स्त्री होनेके कारण और भी हठीली होनेका सकल्प अक्षरोकी भाँति स्पष्ट होकर लिख आया है। ओठोके कोनोंके चारो ओर वही तो है, अरे वही है !

राजीवने कहा—मेरा लोटा तो अभी भराका भरा ही है।

"तू रग डालेगा ?"

"डालना तो चाहता हूँ।"

"अच्छा।"

कहनेके साथ भाई साहब उठे। स्थिर डगके साथ चलते हुए आए। तनिक तनिक घूँघटकी कोर माथेके आगे है, और भाभी खड़ी हैं। भाई साहबने आकर उनके दोनों हाथ पकड़े। कहा—चल री चल, रंग डलवा।

भाभी वहींकी वहीं बैठ गई, उनकी बाँहें भाई साहबके हाथोंमें थमी मुरझती चली गई।

दोनों बाँहोंसे जोरसे भाभीको खचेड़ते हुए भाईसाहबने कहा—रंग डलवा। वह खड़ा है।

भाभी वहींकी हो रहीं, सरकी भी नहीं। जोरसे उनकी कमरमें लात मारकर भाई साहबने कहा—अब डलवाती क्यों नहीं रंग?

राजीव लोटा हाथमें लिए सुन्नका सुन्न रह गया।

भाभी चुप। न आँखमें उनके आँसू निकले, न मुँहसे कुछ निवेदन।

जोरसे हाथोंको झटक कर और दो-तीन लातें एक साथ जमा कर उन्हें खचेडते हुए ही भाई साहबने कहा—अरी देख तो, कैसा रंग है? चल डलवा, रंडी!

राजीवकी आँखोंने देखा—दो—तीन—चार, एक-साथ दोनों हाथोंकी कई काँचकी चूडियाँ चट-चट टूट गई हैं, और उनके टुकड़ोंने चुभकर भाभीकी कलाइयोंमें जगह-जगह लाल-लाल लोहूके सोतोंको छेद दिया है। अब भाभीकी एक बाँह भाई साहबके हाथमें है, दूसरी कालीनपर टिकी है। उस बाँहकी कलाईपर फस्दके पासके एक बिन्दुपर राजीवकी दृष्टि जकड़ गई है। *यह रक्तबिन्दु वहाँ उत्साहके साथ मानो क्षण-क्षण* फूलता आ रहा है।

"अरी बढती नहीं है? कालीनपर वह रंग नहीं डालेगा, और वह रंग लिये खड़ा है।" अनन्तर लात और लात और...

राजीवने सहसा जोरसे लोटा फेंक दिया। आगे बढकर कहा—भाई साहब! क्या करते हैं?

कब्रके-से ठंडे स्वरमें भाई साहबने कहा—तू रंग डालेगा न। ले डाल।

राजीवने आर्तभावसे पुकारा—भाई साहब!

'अरे जा, तू जा।'

राजीव चुप।

भाई साहबने एक साथ चीख कर कहा—जा, जा। नहीं तो मै जानवर हो सकता हूँ।

भाई साहबने यह कहा और वह मानो ठिठके रह गए। उसके बाद फिर एक साथ भाभीका हाथ छोड, लौट कर तेजीसे कमरेमे चले गए और अपने ऊपर दर्वाजा बन्द कर लिया।

राजीवने देखा, भाभी फर्शको टकटकी बाँध देख रही हैं। आँखोसे न आँसू निकला है, न मुँहसे निवेदन। हाँ, कलाइयोमेसे जगह-जगहसे फटकर लहू ही खुलकर निकला है। हाथ वैसे ही कालीनपर टिका है, सिर उघड़ गया है, और भाभी बैठी हैं कि बैठी ही हैं। अरे, बैठी ही हैं।

राजीव मुग्ध सा देखता रहा। फिर एक साथ भाग आया।

यह बीस वर्ष बीतेकी बात है। मुझे राजीव कल मिला था। कहता था, उस दिनके बाद कल दोपहर ही उसे वह भाभी मिली थी। सराय बाजारमे जो राजीवकी जायदादमे दस-दस रुपयेवाले क्वार्टर हैं, उन्हीमे एक अपने लिए लेनेके सिलसिलेमे वह उसके पास आई थी। वह अब बुढ़िया हैं। राजीवको विश्वास है, भाभीने उसे पहचान लिया है। किन्तु किसी पहचानका जिक्र उन दोनोके बीचमे न हुआ, और राजीवने अन्तमे कहा कि क्वार्टर नही दिया जा सकेगा। उन भाभीके सम्बन्धमे अपनेको जायदादवाला पाए, समझे, क्या यह दँभ राजीवसे झेले झिलता? इससे कही अधिक सह्य तो उसे निष्ठुरता ही हो सकी, इससे निस्सकोच उसने कहा कि क्वार्टर कोई खाली नहीं है।

कल ही मुझे राजीवने छुट्टी दी है कि उसकी कहानीके साथ मै इच्छापूर्वक व्यवहार कर सकता हूँ। सो यह पेश है।

नारदका अर्घ्य

संध्या हो रही थी। उस समय दोनो भाई धनराज और जनराज कामसे हटकर घरकी ओर लौट कर चले। एकने बैलोंको खोलकर आगे ले लिया, दूसरेने हल सँभाला, और वे दोनो अपने परिश्रमके सुखमे चूर, होनहारकी ओरसे निश्शक, घरकी और खेतकी बातचीत करते हुए चले जा रहे थे।

घर आकर दोनों अपने अपने काममे लग गये। एक बैलोंको सहलाकर दाना-पानी डालने लगा, दूसरा घरकी देख-रेखमे लग गया। उनका खेत अच्छा नाज देता था और भगवान् भी सदा उनके सहाई रहते थे। खेतके हरे हरे पौधे बढकर जब बाल दे आते, तब वे परमात्माका धन्यवाद मानते थे। और उसकी प्रकृतिकी इस लीलापर विस्मित हो-हो रहते थे कि एक बीजसे सहस्रो दाने बन जाते हैं। उनका मन इस सबके रहस्यपर प्रकृतिके अधिपति उस परमेश्वरका बहुत ऋणी हो आता था और तब दोनो भाई कृतज्ञताके आँसुओसे भर एक दूसरेके लिए जीने और एक दूसरेके लिए मरनेकी लालसा-से भीगे हो रहते थे।

. . . .

महादेव शिवशंकर उस समय कैलाशके शिखरपर व्याघ्रचर्मपर आसीन ध्यानस्थ बैठे थे। उनकी आँखके नीचे बहुत दूर कंदुकाकार पृथ्वी शनैः शनैः अँधियारी पड़ती जा रही थी। उस बूँदसी धरतीके चारो ओर और नाना परिमाण और आकारकी असख्य कंदुकाएँ, कुछ प्रकाशित कुछ अँधेरी और बहुतेरी बाष्पमय, आल जाल बना रही थी। उनकी दृष्टिके तले समस्त शून्यमे छाई वे छोटी बड़ी गेदे मानो भ्रमित गतिसे एक दूसरेको लपेटती हुई फिर रही थीं।

भगवान शकरके नेत्र इस समय आधे मुँदे थे । वह अपनी लीलाको देखकर मानों आप ही सभ्रमित हो रहे थे ।

स्वामीकी ऐसी हालत पार्वतीजीको नहीं भली लगती । उनसे अन्यत्र होकर यह जगका जगड्वाल क्या है, जो स्वामीको अपनेमे फाँसेगा । वह भगवानके पास गई । लेकिन भगवानको अपने जगद्बोधसे चेत नहीं हुआ । आधे ढँके और आधे व्यक्त, अविराम गतिभ्रममें चकराते हुए माया-पिंड-जालमे भगवान मुक्त होकर भी मानों आबद्ध थे ।

यह देखकर पार्वतीजी कुढ़-कुढ़कर रह गईं । किन्तु भगवानका तब भी मोह-भग न हुआ ।

इतनेमें ही दूरसे आती हुई एक इकतारेकी तान सुन पड़ी । और उसके पीछे स्वय ऋषि नारद वहाँ उपस्थित हुए ।

नारद ऋषिने भगवानको प्रणाम किया । भगवानने आशीर्वादपूर्वक ऋषिका कुशल-क्षेम पूछा । पूछा—कहिए, नारदजी, आनन्द तो है ? अन्य पृथ्वी आदि ग्रहोका क्या हाल-चाल है ?

नारदने निवेदन किया—भगवन् इस प्रवासमे मैंने विशेषकर आपकी प्रिय पृथ्वीका परिपूर्ण परिभ्रमण किया । और वहाँ सब ठीक है । किन्तु उस ग्रहके धरातलपर जिस मानव नामक जतुने अभी हालमे जन्म लिया है, उस ही जतुकी जाति कुछ शीघ्रता चाहती है । उन्हें अपने गति-वेगपर तृप्ति नहीं है । वह नवीन मानव-सृष्टि कालकी चालमें वेग चाहती है ।

भगवानने इसपर अपने वाम पार्श्वमे देखा । तदनतर स्मित भावसे उन्होंने कहा—नारदजी, पृथ्वी तो बहुत कालसे अब इन (पार्वती) के सरक्षणमे है । प्रिये, सुनो, नारदजी क्या कहते हैं ?

देवी पार्वतीने भ्रकुटि-निक्षेपपूर्वक अपनी अन्यमनस्कता जतलाई और व्यक्त किया कि नारदजीको जो कहना हो, कह सकते हैं ।

नारदजीने कहा—देवी महारानी, अपने शक्ति-यन्त्रालयके कारीगरोको आज्ञा दीजिए कि वे पृथ्वी नामक कन्दुककी गतिमे कुछ तीव्रताका प्रक्षेपण दे । तब पृथ्वीपर प्राणियोंमे मूर्धन्य जो मनुष्य नामक जीव है, उसको सतोष होगा । महामाता, वह मनुष्य नामक प्राणी यद्यपि शरीरमे सूक्ष्म और सामर्थ्यमे अकिंचन है, फिर भी उसका अहकार अपरम्पार है । भगवानने जो बुद्धि और तर्कका क्षुद्र अस्त्र कृपापूर्वक उसे जीवन-यापनके लिए दिया है, उससे

वह मनुष्य नामक प्राणी अपनेको मार लेनेको तैयार हो गया है। इसलिए महारानीजी, उसकी इस मूर्ख इच्छामे उसकी सहायता करे। अन्यथा वह आत्म-घात करके ब्रह्म-विकासकी भगवानकी आयोजनामें विघ्नकारक होगी।

देवी पार्वतीने विस्मयसे कहा---ऐसा है! उस मनुष्य नामक कीटकी-उत्पत्तिकी बात तो हमको बताई गई थी। क्या अब वही कीट ऐसी जल्दी पर पाकर मरना चाहता है? वह कीड़ा कैमा है, इसका बखान ऋषि नारद, आपसे फिर सुनूँगी। अभी तो आइए, देखे, पृथ्वीकी गतिमे क्या बाधा पड़ी है।

*　*　*　*

शक्ति-यन्त्रालयमे यन्त्रोका अजब ताना-बाना पुरा था। सब-कुछ चल रहा था और प्रत्येककी गति शेष सबकी गतिसे असम्बद्ध न थी। उस अनथक गतिमान चक्रव्यूहमेसे न किसीको रोका जा सकता था, न ऋण किया जा सकता था, न किसीको समझा जा सकता था। सभी कुछ नीरव सतत चल रहा था। गति थी, फिर भी स्थिरता भी अखड थी। और अति विस्मयजनक विविधताके मध्यमे ऐक्य प्रतिपालित था।

देवी पार्वतीके साथ ऋषि नारद यत्रालयमे उपस्थित होकर चकित रह गये। उन्होने मन-ही-मन भगवानका स्मरण किया और उनकी महिमाका स्तवन किया। इस भक्ति-प्रणमनमे ऋषि नारदकी आँखे तनिक मुँद आई। अनन्तर जब उनकी आँख खुली, तब ऋषिने देखा कि महादेवी सती पार्वती धीरे धीरे सावधनतापूर्वक विश्व-सचालनमे उपस्थित हुई किसी अनजान अनपेक्षित बाधाकी आहट टोहती हुई घूम-घूमकर यन्त्रालयका निरीक्षण कर रही हैं। अकस्मात् एक स्थलपर वह रुकी। उन्होने वहीं झुककर कान लगाकर मानो कुछ सुनना चाहा। जब माताका मुख ऊपर उठा तब नारदजीने देखा, उस मुखपर किंचित् चिन्ताकी रेख उदय हो आई है।

देवी पार्वतीने नारदजीको पास बुलाया। आतुरभावसे पूछा---ऋषिवर, यह पृथ्वी क्यों उड़नेके लिए रोती है? उसको क्या विश्वास कठिन हो गया है कि मै उसे प्रेम करती हूँ? यतिमान्य, वह फिर क्या चाहती है?

नारदजीने कहा---वह त्वरा चाहती है, माता। जब बैठी है तो उठना चाहती है। उठ खडी है, तो चलना चाहती है। चल रही है, तब भागना चाहती

है। भागती हो, तो उड़ना चाहती है। माता पार्वती, वह 'कुछ और' चाहती है–कुछ और, कुछ आगे, कुछ अप्राप्त, कुछ निषिद्ध।

पार्वतीजीकी खुली आँखे मानो निर्निमेष हो गई। आँखोमेसे धीरे धीरे बनकर एक एक मोती ढुल पड़ा। उन्होने कहा––मुनिवर, मेरी पृथ्वी क्या पगली हुई है? अरे, वह क्यो पगली हो गई है। भगवानकी मगलमय इच्छामे मेरी पृथ्वी विकार क्यो लाना चाहती है, मुने?

नारदजीने पूछा–माते, आपने अभी सुनकर क्या सूचना प्राप्त की है, क्या यह मै जान सकता हूँ?

पार्वतीजीने कहा––ऋषिश्रेष्ठ, पृथ्वी अन्तर्चक्रमे चल तो रही ही है। न चले, इसमे उसका वश नही है। किन्तु चलते-चलते वह चूँ-चूँ कर रही है। यही मैने अभी सुना। चूँ-चूँ करके वह क्यो रोती है, जब कि इसी नियोजित चालमे उसकी मुक्ति है?...किन्तु आप कहते हैं मेरे ही उत्तम-अग-रूप वे बेचारे मानव-जीव आकाक्षी हैं। तो मुने, अच्छी बात है—। निःकाक्ष्य यदि मनुज नही हो पाता तो उस बेचारेकी आकाक्षाको मै विमुखता न दूँगी।

यह कहकर पार्वतीजीने अपने आपादलम्बित सुस्निग्ध केशोकी एक मुक्तक लटको वाम हाथसे थाम आगे किया और दक्षिण करकी उँगलियोकी चुटकीमे उस लटको निचोडते हुए कालकूट अमृतकी एक बूँदको पृथ्वीकी धुरामे चुआ दिया। उस बूँदको पृथ्वी देखते देखते पी गई। माता पार्वतीने फिर झुककर कान लगाकर सुना। अनन्तर मुखको ऊपर उठाकर, कुछ प्रसन्न कुछ खिन्न, करुण वाणीमे देवी पार्वतीने नारदजीसे कहा—हे मुने, पृथ्वीको मैने आकाक्षित दान दिया है। आप अब वहॉ जाकर फल देखिए। उस जगतीतलकी मानवजन्तुकी जातिको उस फलके स्वादसे निश्शेष होनेपर फिर कुछ और कहना हुआ, तो मै फिर सुनूँगी। किन्तु मुनिवर, मेरी पृथ्वी बड़ी पगली है।

ऋषि नारदका हृदय गद्गद हो आया। वे यन्त्रालयसे बाहर आ गये और प्रभु शकरकी और माता पार्वतीकी महामहिमाके गानमे इकतारा बजाते हुए विहार कर गये।

* * * *

रातको पृथ्वीमडलपर कुछ भूचालसा आया। मानो एक साथ पृथ्वीकी

कायामे कहींसे विद्युत् भर गई। मानो कई सदियाँ पल-ही-पलमे बीत गई। अत्यत वेगसे आघूर्णमान चाक जैसे स्थिर दीख पडता है वैसे ही वह रात्रि जगत्‌के प्राणियोको अति स्तब्ध और गतिशून्य मालूम हुई। बस उस अलौकिक गतिकी सर्राहटका सन्नाटा ही धरतीके जीवोको हठात् बोध हुआ।

किन्तु जब सूर्योदय हुआ, तब मनुजोंने देखा कि धरतीकी जैसे कायापलट हो गई है। फसल जो धरतीसे फूट रही थी, पकी, सुनहरी, झूमती हुई लहरा रही है। धरतीने मानों अपने कोशमेंसे कबका संचित अन्न इस बार उगल डाला है। लोगोमे अत्यत उत्साह उमड़ आया, अब उन्होंने पाया कि धनसे धरती भरपूर हुई बिछी है और उत्साहमे लालसा भी लहकी।

धनराजने उठकर देखा। उसका मन आनन्दसे भर गया। साथ ही लोभ भी उसमे भरने लगा।

जनराजने पृथ्वीपर यह बिखरी हुई दौलत देखी। उसने मानो स्वर्ग पा लिया। और उसे इच्छा हुई कि वह सब कुछ बटोरकर रख ले।

धनराजने सोचा कि परमात्माकी नेमत बरसी है। मुझे चाहिए कि मै जल्दी जल्दी सग्रह कर लूँ। जनराजको कही पता न लगे।

जनराजने सोचा कि जबतक धनराजको चेत हो, क्यो न वह उससे पहले ही अपना घर भर ले। क्योंकि आज तो यह विपुलता है। कल जाने क्या होनेवाला हो।

धनराज और सब-कुछ भूलकर लपकता हुआ पकी हुई सुनहरी फसल काटने चला। घरसे निकला कि उसने देखा जनराज भी दरॉत सँभाले बढ़ा चला आ रहा है। दोनोने आपसमे बाते नही कीं। बस दोनोने रुद्ध, अव्यक्त भीतरी रोषसे एक दूसरेको देखा।

वहाँसे अपना-मेराका कीडा दोनोके भीतर पैठ गया।

इसके बाद धनराजने अपने झोपडेके उत्तरके जनराजवाले कोनेमें और जनराजने उसी झोपड़ेके दक्षिणके धनराजवाले कोनेमे एक ही रातको किस प्रकार आग लगाकर अपने सयुक्त प्रेमको स्वाहा कर दिया,---यह पुरानी कहानी है।

* * * *

राह-राहमे और नगर-नगरमे इस कहानीकी मुहुर्मुहुः पुनरावृत्तियॉ देखते हुए मुनि नारद अपने इकतारेकी झंकारके साथ महाप्रभु शकर और महामाता गौरीकी महामाहिम मायाका स्तव-गान करते हुए पृथ्वीके चारो ओर परिभ्रमण करते रहे।

तबसे वह विश्वकी सहार-लीलामे प्रभुका यशोगान करते हुए विचरण ही करते आ रहे हैं।

इसी भॉति ऋषि नारद अपनी वेदनाको आनदमय और अर्थमय और इकतारेकी गॅूजके साथ उसे अर्घ्यमय बनाते और माताके चरणोमे होम देते हैं।

बाहुबली

बहुत पहलेकी बात कहते हैं। तब दो युगोका संधि-काल था। भोग-युगके अस्तमेसे कर्म-युग फूट रहा था। भोग-कालमे जीवन मात्र भोग था। पाप-पुण्यकी रेखाका उदय न हुआ था। कुछ निषिद्ध न था, न विधेय। अतः पाप असभव था, पुण्य अनावश्यक। जीवन बस रहना था। मनुष्य इतर प्रकृतिके प्रति अपने आपमे स्वत्वका अनुभव नही करने लगा था और प्रकृति भी उसके प्रति पूर्ण वदान्य थी। वृक्ष कल्पवृक्ष थे। पुरुष तन ढॉकनेको बल्कल उनसे पा लेता, पेट भरनेको फल। उसकी हर बात प्रकृति ओढ़ लेती। विवाह न था और परस्पर सम्बन्धोमे नातोका आरोप न हुआ था। स्त्री माता, बहन, पत्नी, पुत्री न थी, वह मात्र मादा थी। और पुरुष नर। अनेक थलचर प्राणियोंमे मनुष्य भी एक था और उन्हीकी भॉति जीता था।

उस युगके तिरोभावमेसे नवीन युगका आविर्भाव हो रहा था। प्रकृति अपने दाक्षिण्यमे मानो कृपण होती लगती थी। उस समय विवाह ढूँढ़ा गया। परिवार बनने लगे, और परिवारोसे समाज। नियम—कानून भी उठे। 'चाहिए' का प्रादुर्भाव हुआ और मनुष्यको ज्ञात हुआ कि जीना रहना नही है, जीना करना है। भोगसे अधिक जीवन कर्म है और प्रकृतिको ज्योका त्यों लेकर बैठनेसे नहीं चलेगा। कुछ उसपर सशोधन, परिवर्धन, कुछ उसपर अपनी इच्छाका आरोप भी आवश्यक है। बीज उगाना होगा, कपड़े बनाने होगे, जीवन-सचालनके लिए नियम स्थिर करने होगे और जीवन-सवृद्धिके निमित्त उपादानोका भी निर्माण और सग्रह कर लेना होगा। अकेला व्यक्ति अपूर्ण

है, अक्षम है, असत्य है। सहयोग स्थापित करके परिवार, नगर, समाज बनाकर पूर्णता, क्षमता और सत्यताको पाना होगा।

ठीक जबकी बात कहते हैं तब व्यक्ति व्यष्टि-सत्तासे समष्टि-सिद्धिकी ओर बढ़ चला था। राजा जैसी वस्तुकी आवश्यकता हो चली थी। पर राजा जो राजत्वकी संस्थापर न खड़ा हो, प्रजाकी मान्यतापर खड़ा हो। यह तो पीछेसे हुआ कि राजत्व संस्था बनी और शिक्षा और न्याय, विभागरूपमे, शासनसे पृथक हुए। नगर बन चले थे और जीवन-यापन नितान्त स्वाभाविक कर्म न रह गया था। उसके लिए उद्यमकी आवश्यकता थी।

इस भाँति प्रथम राज्य बना और प्रथम राजा हुए श्रीआदिनाथ। उनके दो पुत्र थे, दो पुत्रियाँ। पुत्र भरत और बाहुबली, पुत्रियाँ ब्राह्मी और सुन्दरी।

अवस्थाके चतुर्थ खण्डमे ज्येष्ठ पुत्रको बुलाकर श्रीआदिनाथने कहा—पुत्र, अब तुम यह पद लो। मुझे अब दीक्षा लेनी चाहिए।

भरतने कहा—महाराज—

आदिनाथने कहा—तुमको पहला चक्रवर्ती होना है। इस राज्यसे बाहर भी बहुतसे प्रान्त हैं, जिनको व्यवस्थित शासन तुम्हे देना है। मै तो लोगोके मान लेनेसे उनका मुखिया हो गया था। उनको मुझे राजा कहनेमे सुख मिला। मैने कहा, अच्छा। लेकिन तुमको साम्राज्य बनाना है। अपने लिए नहीं, लोगोमे एकत्रता लानेके लिए। तुमको विजय-प्रसारका कर्तव्य भी करना होगा।

भरतने कहा—महाराज, आप दीक्षा क्यो ले? मै विजयध्वज फहरा न आऊँ और अपनेको समर्थ न समझ लूँ तब तक आप अपना आशीर्वाद मुझपरसे न उठावे।

आदिनाथने कहा—पुत्र, अब समय आता जाता है कि राजा शासक अधिक हो, प्रजाका हमजोली उतना न हो। राजैश्वर्यसे युक्त राजाको देखकर प्रजा समझती है कि उसने कुछ पाया है। तब तक उसका चित्त तुष्ट नहीं होता। मै तो प्रजाके निम्नातिनिम्न जनसे अपना हमजोलीपन नही तज सकता। किन्तु तुम्हारे लिए यह अनिवार्य नहीं है। तुम राजपुत्र हो। मै तो साधारण पिताका पुत्र हूँ और जिस पदसे शासनकी आशा है उसके सर्वथा अयोग्य बन जाना चाहता हूँ। मुझे लोगोके दुःखमे जाना चाहिए और मुझे उस मार्गमेसे चलकर अपना कैवल्य पा लेना चाहिए।

भरतने निरुत्तर होकर सिर झुका लिया।

अगले दिन आदिनाथने दीक्षा ले ली। समस्त वस्त्राभरण और नगर त्याग-कर वे निर्ग्रन्थ विहार कर गये। और भरत, चुप मन, जय-यात्रापर चल दिये।

पृथिवीके छहो खण्डोपर विजय स्थापित कर और बहुभाँतिके मणि-मुक्ता, हय-गज और कन्या-सुन्दरियोकी भेटसे युक्त भरत धूमधामके साथ नगरको लौट कर आये।

किन्तु जब भरत नगरमे प्रवेश करने लगे तब विचित्र घटना हुई। चक्रवर्ती-का शासन-चक्र नगरके भीतर प्रविष्ट नहीं होता था। प्रत्येक द्वारसे नगरमे प्रवेश करनेके यत्न किये गये, किन्तु शासन-चक्रने न साथ दिया। इसपर लोगोको बहुत अचरज हुआ। तब राजगुरुकी शरणमे जाकर इसके कारणके विषयमे उन्होंने जिज्ञासा की। गुरुने बताया कि इस नगरमे एक व्यक्ति है जो अविजित है। उसपर जब तक विजय न पा ली जाय तब तक चक्रवर्तित्व अखण्ड नही होता। और उस समय तक यह शासन-चक्र नगरमे प्रवेश न करेगा। राजगुरुने यह भी बताया कि अभी तक जिनपर किसीने विजय नही पाई है ऐसे व्यक्ति राजकुमार बाहुबली हैं।

भरतने पूछा—गुरुदेव, तब क्या बाहुबलीसे मुझे युद्ध करना होगा?

राजगुरुने कहा—राजन्, तब तक चक्रवर्तित्व असिद्ध है।

भरतने कहा—किन्तु मै चक्रवर्ती नही होना चाहता।

राजगुरुने कहा—राजर्षि, यह आपकी व्यक्तिगत इच्छा-अनिच्छाका प्रश्न नहीं है। यह राजकारणका प्रश्न है।

भरतने कहा—गुरुदेव, क्या भाईसे भाईको लडना होगा?

गुरुदेवने कहा—राजन्, राजकारण गहन है। राजकारण-धर्मीका कौन भाई है, कौन भाई नहीं है?

भरत नतमस्तक हुए।

* * * *

पॉच युद्धो-द्वारा शक्ति-परीक्षणका निश्चय हुआ। दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध आदि, और अन्तमे मल्लयुद्ध।

आरम्भके चारो युद्धोंमें बिना प्रयास बाहुबली ही जयी हुए। बाहुबली

इस विजयसे विशेष उल्लसित नहीं दिखाई देते थे, न भरत विशेष उदास। मल्लयुद्ध अन्तिम युद्ध था और उसके समय प्रजाकी उत्सुकता इस भाई-भाईके द्वेषहीन युद्धमे बहुत बढ़ गई थी।

मल्लयुद्धमे कुछ देरके बाद बाहुबलीने भरतको दोनो हाथोपर ऊपर उठा लिया। इस समय दर्शकोके प्राण कण्ठमे आ बसे थे। वे प्रतिपल आशका करने लगे कि चक्रवर्ती भरत अब धरतीपर चित आ पड़ते हैं। किन्तु बाहुबलीने धीमे धीमे अपने हाथोको नीचे किया और भरत पृथिवीपर सावधान खडे दिखाई दिये। तदनन्तर नतशिर होकर बाहुबलीने दोनो हाथोसे अपने बड़े भाईके चरण छुए।

भरतने भी बाहुबलीको अपनी छातीसे लगा लिया, कहा--बाहुबली, विजयी होओ। मुझे तुमपर गर्व है और मै तुम्हारी विजयपर हर्षित हूँ। तुम सामर्थ्यशाली बनो।

बाहुबलीने कहा—यह आप क्या कहते हैं? आप ज्येष्ठ हैं, योग्य हैं और मै एक क्षणके लिए भी राज्य नही चाहता।

भरतने कहा--भाई बाहुबली, वह तुम्हारा है। तुम उसके विजेता हो, उसके पात्र हो। और मै अपना हृदय दिखा सकूँ तो तुम जानो, मै कितना प्रसन्न हूँ। तुम राजा बनो, मुझे अमात्य बनाओ, सेनापति बनाओ, अथवा जो चाहो सेवा लो।

बाहुबलीने हाथ जोड़कर कहा--भाई, मुझे राज्यकी इच्छा नहीं है। इस विषयमे आप राज्य-पालनका कर्तव्य मुझपर न डाले। मै दीक्षा लेना चाहता हूँ। मुझे राज्य आदि नही चाहिए।

भरतने बहुत कहा। परन्तु बाहुबली दीक्षा लेकर वनकी ओर चले गये। भरत चुपचाप राज्य-रक्षा और राजत्व-पालनमे लग गये।

बाहुबलीने घोर तपश्चरण किया—अति दुर्द्धर्ष, अति कठोर, अति निर्मम। वर्षों वे एक पैरसे खडे रहे। महीनो निराहार यापन किये। सुदीर्घ काल तक अखण्ड मौन साधे रक्खा। बरसो बाहरकी ओर ऑख खोलकर देखा तक नहीं।

उनकी इस तपस्याकी कीर्ति दिग्दिगतमे फैल गई। देश देशसे लोग उनके

दर्शनको आने लगे। भक्तोकी संख्या न थी। उनकी महिमा और पूजाका परिमाण न था।

किन्तु बाहुबली भक्तो और उनकी पूजासे विमुख होकर घोरसे घोरतर निर्जन दुष्प्राप्य एकान्तमे चले जाते थे। एक स्थानपर एक बार अडिग, एकस्थ, एकाकी इतने काल तक खड़े रहे कि उनके सहारे बल्मीक जम गये, बेलें उठकर शरीरको लपटने लगीं। उन बल्मीकोमे कीडे-मकोड़ोने घर बना लिये।

इस कामदेवोपम सर्वाङ्ग-सुन्दर बलिष्ठ पुरुषने निदारुण कायक्लेशमे वर्षके वर्ष बिता डाले। लोग देखकर हा-हा खाते थे और निस्तब्ध रह जाते थे। उसकी स्पृहणीय काया मिट्टी बनी जा रही थी। स्त्रियाँ उस निमीलित-नेत्र, मग्न-मौन, शिलाकी भाँति खड़े हुए पुरुष-पुगवके चरणोको धो-धोकर वह पानी आँखो लगाती थी। उसके चरणोके पासकी मिट्टी ओषधि समझी जाती थी। पर वह सब ओरसे विलग, अनपेक्ष, बन्द-आँख, बन्द-मुख, मलिन-देह, कृश-गात, तपस्यामे लीन था।

यह था, पर कैवल्य उसे नही प्राप्त हुआ, नही हुआ। ज्ञानी लोग इसपर किं-विमूढ थे।

* * *

जीवन्मुक्त भगवान् आदिनाथसे लोगोने पूछा—भगवन्, दीर्घकालसे कुमार बाहुबली अतिशय कठोर तपश्चर्या कर रहे हैं। आपको ज्ञात तो है?

भगवान् बोले—हाँ ज्ञात है।

"उससे हमारा हृदय काँपता है। आप उन्हे इससे विरक्त करेंगे?"

भगवान्ने कहा—नही। एक निष्ठाके साथ जो किया जाता है उससे किसीका अपकार नही होता।

लोगोने पूछा—किन्तु भगवन्, कुमार बाहुबलीको अब तक कैवल्य-सिद्धि क्यो नही हो सकी?

भगवान्ने कहा—यह तुम पीछे जानोगे।

भरत राज्यशासन चला रहे थे। प्रथम चक्रवर्ती भरतके ऐश्वर्य्यका पार न था। मणि-माणिक-मुक्ताकी दीप्तिसे उनका परिच्छद जगमग रहता था। उनके नामका आतङ्क दिग्दिगन्तमे छाया था। सब प्रकारके सुख-विलास और आमोद-

प्रमोदके साधन उनके संकेतपर प्रस्तुत थे। और वे अपने अखण्ड निष्कण्टक चक्रवर्तित्वका उपभोग कर रहे थे।

इसको भी वर्षके वर्ष हो गये।

एक दिन भगवान् आदिनाथके पास पहुँचकर भरतने कहा—भगवन्, भाई बाहुबलिको यह अधिकार मिला कि वह मुझको छोड़कर और राज्यको छोड़कर स्वाधीन रहे और सत्यको पाएँ। जो मेरे अधिकारमे नही आता था, जो बाहुबलीका हो गया था, उस राज्यको लेनेको मै रह गया। मेरे लिए अस्वीकार करनेको तनिक भी अवकाश नही छोड़ा गया। मुझे शिकायत नही है। लेकिन मैं आपसे पूछता हूँ, क्या मैं अब दीक्षा नही ले सकता?

भगवान्ने कहा—ले सकते हो। अगर सत्यकी खोज और सत्यकी उपलब्धि राजत्वके द्वारा तुम्हारे निकट अगम्य बन गई है, तो तुम उसे अवश्य तज सकते हो। और मै कह सकता हूँ— अगम्य बन जाना भी चाहिए। तुम पचास वर्षसे तो ऊपरके हुए न?

भरत सतुष्टचित्त महलोको लौट आये। और दो दिन बाद घोषणा हो गई कि चक्रवर्ती अब दीक्षा लेगे।

नगरवासियोमे विकलता छा गई। साम्राज्यके प्रान्त-प्रान्तसे विरोधमे अनुनय-प्रार्थनाये आई। किन्तु भरतने एक प्रतिनिधि-सभाको अपना उत्तराधिकार देकर दीक्षा ले ली।

और, राज्याभरण उतारते उतारते मुहूर्त्तके अन्तरमे उन्हे निर्मल कैवल्यकी उपलब्धि हो गई।

* * *

लोगोने क्लिष्ट भावसे भगवान् आदिनाथकी शरणमे जाकर पूछा—भगवन्, यह क्या बात है? कुमार बाहुबलीने कितना घोर कायोत्सर्ग झेला, कैसा दुर्द्धर्ष तपश्चरण किया, आरम्भसे ही उन्होने सब सुखोका विसर्जन किया, किन्तु उनको कैवल्य प्राप्त नही हुआ। और चक्रवर्ती भरतने जीवनके अधिक भागमे ऐश्वर्य ही भोगा, प्राचुर्य्य ही देखा, विलास ही पाया। उनको राज-चिह्न उतारते उतारते परम ज्ञानकी प्राप्ति हो गई! भगवन्, बताइए, यह कैसे हुआ? हमारा चित्त भ्रान्त है।

भगवान्ने सदय भावसे कहा—बाहुबली अविजित है। यह वह बेचारा नही भूल सका है।

लोगोंको अनाश्वस्त पाकर खिन्न स्मितके साथ भगवान्ने फिर कहा—बाहु-बलीके मनमेंसे एक फाँस नही निकली है। वही एक शल्य उसकी मुक्तिमें काँटा है। उसके चित्तमे यह खटक बनी हुई है कि जिस भूमिपर वह खड़ा है वह भरतके राज्यान्तर्गत है।

*   *   *   *

बाहुबलीके कानोमे जब यह बात पहुँची, मनका काँटा एक-दम निकल गया। जैसे एक साथ ही वे स्वच्छ हो गये। आँखे खुल गई, मौन-मुख मुस्करा उठा। उस मुस्कराहटमे मनकी अवशिष्ट ग्रन्थि खुलकर बिखर गई और मन मुकुलित हो गया।

उनके चहुँओर वनमे उस समय असख्य भक्त नर-नारियोंका मेला-सा लगा था। उन सबको अब उन्होंने अस्वीकार नही किया, उनका आवाहन किया। अपने आराध्यकी यह प्रसन्न-वदन-मुद्रा देखकर लोगोंके हर्पका पारावार न था। बाहुबलीने अपनेको उनके निकट हर तरहसे सुगम बना लिया। कहा—भाइयो, तुमने इस बाहुबलीको आराध्य माना। उसकी आराध्यता समाप्त होती है। तपस्या बद होती है। तुमने शायद मेरे काय-क्लेशकी पूजा की है। अब वह तुम मुझमे नहीं पाओगे। इस लिए मुझे आशा है कि तुम मुझे पूजा देना छोड दोगे। और यदि मेरी अप्राप्यताका तुम आदर करते थे, तो वह भी नहीं पाओगे। मै सबके प्रति सदा सुप्राप्त रहनेकी स्थितिमे ही अब रहूँगा।

बाहुबलीने निर्मल कैवल्य पाया था। ग्रन्थियाँ सब खुल गई थी। अब उन्हे किसकी ओरसे बन्द रहनेकी आवश्यकता थी? वे चहुँ ओर खुले, सबके प्रति सुगम रहने लगे।

यह देख धीरे धीरे भक्तोंकी भीड उजडने लगी और परम योगी बाहुबलीकी शरणमे अब शान्तिके लिए विरल ज्ञानी और जिज्ञासु लोग ही आते थे।

वह विचारा साँप

एक बनकी घोर आछन्नतामे एक सॉप रहता था। विकराल और सुदर, वह अन्य वनचर जन्तुओमे एक साथ ही भय और मोह उपजाता था। उसकी काली देहपर मानो नक्काशीका काम हो रहा था और फणपर तो जैसे मणियॉ ही टॅकी थी। यह सर्प बडा विषधर भुजग था, किन्तु वह अपने भीतरके मनसे बडा भला भी था। क्रोधके समय उसकी गर्म सिसकारीसे आसपासकी घास भी जल जाती थी। किन्तु अन्यथा वह अलस-भावसे अपने स्थानपर ही पडा रहता था। और तब कीडे-मकोडे तकको उसकी देहके साथ क्रीडा करते हुए सकोच न होता था।

उसी अरण्यमे अकस्मात् एक रोज खेलता हुआ एक देव-बालक आन पहुँचा। वह किलकारी भरता हुआ उछाहसे भागा चला जा रहा था। उछाह ही उछाह था, शकाकी छाया उसके मनके आसपास भी कहीं नही थी। बालक अनुपम सुदर था। उसके हाथमे बशी थी जिसको वह गिल्लीके डडेकी तरह सहज भावसे पकडे घुमाता हुआ जा रहा था। मालूम नही, वह बालक इस विकट अरण्यके कलेजेमे कहॉसे उतरकर कहॉ पहुँचनेके लिए इस भॉति निश्शक लपका जा रहा था।

बालकके मनमे तो क्रीड़ाके उल्लासके अतिरिक्त कुछ न था। किन्तु भागतेमे उसका पैर भुजगकी पूँछपर पड गया। इसपर भुजगने फण उठाया और बालक दो डग भी न भर पाया था कि उसे डस लिया।

उस सर्पके विषका प्रभाव, कि देखते-देखते बालक वहीं गिर गया। पलक मारतेमे वह ठडा भी हो गया। वेदनाकी कोई पुकार उसके मुँहसे नही निकली।

मानो हँसी-हँसीमे ही वह लोट पड़ा हो। देव-बालकका मुख अब भी तनिक विकृत न हुआ था।

साँपने जब गिरे हुए बालकको देखा तब वह अवसन्न रह गया। उस बालकका सौन्दर्य साँपके मनको बर्छी सा चुभने लगा। उस बालकके मुखपर अपनेको दश करनेवालेके लिए भी कोई मैल अथवा किसी प्रकारकी अभियोगकी छाया नही दीख पड़ती थी। साँप मन-ही-मन अति दुखी हुआ। वह बालककी समूची देहपर मानो पहरा देता हुआ गुजलक भरकर उसे घेर कर वहाँ बैठ गया। बैठा ही रहा। दिनभर हो गया, रातभर हो गई। दो दिन हुए, तीन हुए, चार हुए, लेकिन वह साँप बिना कुछ अपनी सुध लिये बालकके चारो ओर अपनी देहका कुडल डाले ही पडा रहा।

अन्तमे बालककी देह विकृत होने लगी। इस भूलके लिए शनैः शनैः जब जगह ही न रही कि इस देहमे बालककी आत्मा कही हो सकती है तब साँप वहाँसे चल दिया। उसने तब बड़े कातर भावसे प्रार्थना की, कि ओ मेरे परमात्मा ! मै क्या करूँ ? क्रोध मुझे आ जाता है, लेकिन मै किसीका अनिष्ट करना नही चाहता। तैने मुझमे यह क्या विष रख दिया है कि मैं ज़रा मुँहसे छूता हूँ कि दूसरेकी जान चली जाती है ! उस देवोपम बालकका अनिष्ट क्या मै तनिक भी सह सकता हूँ ? मेरे परमात्मा ! अपना यह विष तू मुझमेसे ले ले। हाय ! यह मेरा वश क्यो नहीं है कि मै यदि क्रोधसे नहीं बच सकता तो दूसरेकी जान लेनेसे तो बचूँ। किन्तु तैने तो मेरे मुँहमे ही महाकाल बैठा दिया है। तू यह जहर मुझमेसे खीच ले।

अगले दिन परमात्माका भेजा हुआ एक सँपेरा वहाँ आ निकला। उसके हाथमे झोली थी। वह जगलमे आया और बैठकर बीन बजाने लगा। साँप बीनकी बैनमे बँधा हुआ सँपेरेके सामने पहुँचा और फण खोलकर मोहमुग्ध, वहाँ खड़ा रह गया। बीनमे फूँक फेकता हुआ सँपेरा उसे बजाता ही गया और साँप अधिकाधिक ग्रस्त भावसे फण हिला-हिलाकर उसमे विभोर होता गया। इसी भाँति उसके फणके आगे बीन बजती रही और सर्प हतचेत, मानो कृतज्ञ, अपनेको सँपेरेके हाथमे देता गया। सँपेरेने आश्वस्त प्रेमके भावसे उसे शनैः शनैः पूरी तरह काबूमे कर लिया।

जब उसके ज़हरके दाँत उसके मुँहमेसे खीचकर सँपेरेने निकाले तब वह सर्प पीड़ासे मूर्छित हो रहा था। उस पीडामे भी, जब तक वह एकदम चेतनाशून्य

ही नहीं हो गया तब तक, साँप सँपेरेका आभारी ही बना रहा। इसके लिए मानों वह उसका ऋणी ही बना था कि उसे पीडा देकर यह व्यक्ति उसमेंसे उसके अनिच्छित अंशको बहिष्कृत कर दे रहा है। मूर्छित सर्पको अंतमें झोलीमें डालकर सँपेरा नगरकी ओर चल पड़ा।

मूर्छासे जगनेपर साँपने देखा कि उसके चारों ओर अंधकार है। उसने टटोल कर यह भी देखा कि चारों ओरसे वह बंद है, मार्ग कहीं भी नहीं है। शरीरके ज़ोरसे उसने चेष्टा भी की कि किसी ओर मार्ग खुलकर उसे प्राप्त हो, किन्तु चारों ओर फणको टकराकर और लौट लौट आकर उसने प्रतीति पा ली कि नहीं, मार्ग रुद्ध ही है। ऊपर भी नीला आसमान नहीं है, वही काला अँधेरा है जो पार्श्वमें है। और उसके चारों ओर जिस वस्तुका अवरोध है वह एकदम अपरिचित है, दृढ़ है। उस वस्तुके साथ उसका हेल-मेलका सम्बन्ध नहीं बनेगा, जाने किस निर्जीव पदार्थकी वह बनी है!

झोली लेकर सँपेरा नगरमें अपनी रोजीके लिए निकला। वह बीन बजाकर साँपका खेल दिखाएगा, और इस भाँति नाज, पैसा और रोटी पा लेगा। बच्चे साँपका खेल देखेंगे और अपनी अम्मा–चाचीसे रोटी लाकर सँपेरेकी झोलीमें डाल देंगे। साँपको देखकर उन्हें बड़ा कुतूहल होगा। डर भी होगा, पर सँपेरेके रहते अपनेको डर वह ज्यादा नहीं होने देंगे। ककड़ी फेंककर उस साँपसे वह छेड-छाड भी कर लेंगे। हाँजी, उसे वे छू भी क्यों नहीं लेंगे। साँपका फण उन बालकोंको बड़ा विचित्र मालूम होगा। चित्रमें बने साँपके फणसे जो उनमें आश्चर्य होता है उससे कहीं अधिक समाधानकारक आश्चर्य उन्हें उस सचमुचके साँपके फणको देखकर होगा। पर उन बालकोंके लिए उस मदारी सँपेरेके सामनेके साँपके फणमें भी कुछ वैसा ही निश्शंक, निरापद, उत्कंठित विस्मयका भाव होगा जैसा कागजपर बने हुए साँपके चित्रमें होता है।

जब ढँकना खुला, और सर्पको माथेके ऊपर प्रकाशका आभास हुआ, तब वह उत्कण्ठाके साथ ऊपरकी ओर फण उठाकर लपका। किन्तु पाया, सामने तो उसका उपकारी सँपेरा ही उसके आगे करके बीन बजा रहा है। इसपर वह साँप फण हिला-हिलाकर अपनी कृतज्ञता और अपना विमोह जतलाने लगा। वह झूम-झूमकर बीनके बैन पीता हुआ अपने उपकारीके समक्ष फण खोले खड़ा रहा।

सँपेरेने ऐसी अवस्थामे साँपको हाथसे टोकरीमेसे निकालकर बाहर धरतीपर छोड दिया ।

साँपने देखा—यह तो उसको घेरे लोगके लोग जमा हैं । उनमे बालक भी हैं । यह बात साँपकी समझमे नही आई । यह सब उससे क्या चाहते है ? वह तो स्वयं बड़ा हिंस्र जीव है । तब यह सब लोग उसको इतने पाससे घेरे हुए निश्शक भावसे उससे क्या प्रत्याशा रखके खडे हैं ?

अनायास बाहर धरतीपर आकर वह सकोचपूर्वक गिर गया । लिपटा हुआसा, देहमे ही अपना मुँह छिपाए वह लोगोके घेरके बीचमे पडा रहा ।

लोगोको उस सर्पकी कान्तिमय चित्रित देह बहुत मनोरम जान पडी । ऐसा भारी साँप उन्होने कब देखा होगा ? वही भयकर वनका राजा उनके सामने यो मुँह दुबकाए पड़ा है, मानो यह उन मनुजोके लिए गौरवकी बात थी ।

एकने कहा—मदारी ! इसे उठाओ ।

मदारीने कहा—बाबू ! यह नाग अभी नया है । सकुचाता है ।

एक बच्चेने कहा—इसे चलाकर दिखाओ, मदारी !

मदारीने कहा—अच्छा बाबू !

यह कहकर मदारीने उस साँपकी पूँछमे अपने हाथसे एक जोरकी चोट दी ।

साँप बैटा बैठा अपनी अधझपी आँखोसे मानो अपने इर्द-गिर्द इकट्ठे हुए इन सीधे होकर चलनेवाले लोगोके प्रति प्रेम और करुणाकी बाते सोच रहा था । इस प्रकारके मात्र दो पैरोको धरतीपर टिकाए वृक्षकी भाँति खड़े ही खड़े चलनेवाले इन आदमी नामक जन्तुओको उसने अपने स्वदेशमे अधिक नहीं देखा था । आरम्भमे देखकर तो उसे इन दो टाँगोपर चलनेवाले आदमियोंमें विकट भयका ही बोध हुआ था । पर जब उसने जाना कि यह निर्बल प्राणी तो किसी भी अवस्थामे उसका एक दंश भी सहन नहीं कर सकते हैं तब भयके स्थानमे करुणा होने लगी । उन्हीं विचित्र और अल्पप्राण मनुज जन्तुओंका जब झुडका झुड उसने अपने चारों ओर पाया तब पहले तो उसे [illegible] हुआ । फिर कुछ लज्जा हुई । और अन्तमे वह विचारसेमें पड़ गया । उसे यह मनुष्यका अविचार मालूम हुआ कि मुझमे उन्हें इतना विस्मय है । फिर भी उसे यह अच्छा लगा कि मुझमे इन प्राणियोको इतना प्रेम है । किन्तु

होते होते उसके लिए इतनी दृष्टियोंका केन्द्र बनकर सकुचित पड़े रहना भारी होता आया। वह इन पराये प्राणियोंके प्रान्तमेंसे भागकर अपने विटपाच्छन्न स्वदेशमें ही चला जाना चाहता था। किन्तु मार्ग कहाँ था?

उसी समय पूँछमें चोट खाकर उसने फण उठाया। वह फण चौड़ाता ही चला गया। उसने तुरन्त चोट देनेवालेकी ओर देखा। किन्तु, सँपेरा मुँहमे बीन देकर बजा रहा था। कुछ क्रोधमे, कुछ मोहमे, साँप फण फैलाए खड़ा रहा। उस प्रशस्त फणके आतङ्ककारी सौन्दर्यपर लोगोंकी आखे जमी रह गईं। मानो इस समय तो उन्हे उस सौन्दर्यमे विलास ही है, आतङ्क नहीं रह गया है। साँपने अपने उठे हुए फणको चारो ओर घुमाकर सब कुछ देखा। देखा, कि उसके अपने मनमे क्रोध अनुपस्थित नहीं है, किन्तु तो भी इन समस्त मनुजोंके चेहरेपर तो कुतूहल ही दिख रहा है। बालक तक भी घबराये नहीं दिखे। साँपने क्रुद्ध आँखोंसे देखा। उसने क्षुब्ध सिसकारी छोड़ी। जीभे लपलपातीं उसकी बाहर निकली, मानो काली तड़ित् रेखायें हो। किन्तु इस सबसे, कोई बालक चाहे डरपा भी हो पर, लोगोंके तो कुतूहलमे ही वृद्धि हुई। वे अधिकाधिक तृप्त और आनन्दित भावसे साँपके ये करतब देखते रहे।

साँपके फणमे जाने कितनी फैल जानेकी शक्ति न थी। वह, फैलता ही गया। पार्श्वनाथकी मूर्त्तिके शीशपर छाये नाग-फण-सा ही उस नागका फण छा आया। वह फण उठता भी गया। साँपके शेष शरीरमें भी मानो चैतन्य लहरा आया। विद्युत्के जीवित तारकी भाँति उसका शरीर किसी ज्वालासे भरा दीखने लगा। साँपने स्फुलिंग-सी आँखोंसे चारो ओर देखा।

किन्तु लोगोंका कुतूहल ही बढ़कर रह गया। आतक तो उनके समीप फटका भी नहीं।

तब ज़ोरसे साँपने अपना फण धरतीपर देकर मारा। उससे आसपासकी मिट्टी उड़ गई और फणकी नोकके नीचे गड्ढा-सा पड गया।

इसपर लोगोंका घेरा अनायास ही एक डग पीछे हटा। पर साँपमे उनकी दिलचस्पी ही बढी, दहशत फिर भी उनमे तनिक न समाई।

उस समय सँपेरेने अपने स्थानसे मानो साँपको पुचकारा। कहा 'बस बेटा, बस।' और हाथ बढाकर साँपकी देहपर फेरना चाहा। साँप आवेशके साथ उसके हाथकी ओर झपटा।

सँपेरेने ओठोको बढ़ाकर पुचकारनेकी ध्वनि निकाली। मानो कि वह उसे चूमना चाहता है।

सर्प अपने निष्फल आक्रोशको भीतर लेकर जल उठा। उसे अब लगा कि लोग उसकी भयकरताको व्यर्थ करनेके बाद अब उसके तिरस्कारका आनन्द ले रहे हैं। जो उसका तेज था वह इन मनुजोके लिए मात्र सौन्दर्य है। मेरा रोष उनका विनोद है। मेरा अपमान उनकी खुशी है।

सँपेरेने उसके शरीरपर धीमे धीमे हाथ फेरकर कहा 'ओ बेटा, बस। बस, मेरे बेटे।'

साँपने जोरसे अपना दाँत सँपेरेके हाथमे गडा दिया। सँपेरा अपने हाथमे निकलता हुआ खून देखकर हँसा। उसने उसे पोछ लिया और शान्त भावसे पुचकारते हुए कहा—गुस्सा नही करते बेटे, शाबास शाबास।

इसपर साँप चुपचाप कुण्डली मार कर धरतीपर बैठ गया। उसकी व्यर्थता उसे काटने लगी। अपने लाञ्छित दर्पको अपने ही भीतर चूसता हुआ वह परास्त, पराजित लोगोके बीचमे पूँछमे मुँह दुबकाये पड़ गया।

एक आदमीने कहा—सँपेरे, तुमने इसके ज़हरके दाँत निकाल लिये मालूम होते हैं।

सँपेरेने कहा—नही बाबू, आप इसका भरोसा मत रखना। हम लोगोके पास तो बूटियाँ रहती हैं।

यह कहकर बूटी-सी कुछ चीज निकालकर उसने काटे हुए स्थान-पर घिस ली।

दूसरे आदमीने कहा—यह तो बड़ा तेज़ साँप है?

सँपेरेने कहा—बाबू, इसके काटेका इलाज दुनियामे नही है। बडा विष-धर नाग है, बाबू।

साँप पूँछमे मुँह दुबकाये मानो एक ओरसे अपनेको निगल ही जाता हुआ पडा था।

तीसरे आदमीने फरमाइश की—मदारी, यह तो चुप हो गया। इसको फिर उठाओ।

मदारीने अपनी बीनकी नोकसे निष्क्रिय पडे हुए साँपकी पूँछमे कई टहोके दिये। साँप तैशमें काँप काँप गया। पर वह चुप ही पड़ा रहा, उठा नही।

सँपेरेने फिर चोट देकर कहा—उठ बेटा!

साँपको ऐसा क्रोध आया कि वह अपनेहीको काट डाले।

सँपेरेने फिर उसके फणपर चोट देकर पुचकार कर कहा—उठो बेटा।

और बेटा, आखिर कब तक न उठता। जब असह्य हो गया तब वह उठा। उठकर वैसे ही फण फैलाया। वैसे ही चारो ओर फणको घुमाया। वैसे ही फुसकार भरी। वैसे ही जीभें निकाली। वैसे ही शरीरको तन्नाया। क्रोधका पूरा अभिनय उसने किया। क्योंकि उसने जाना कि तमाशाई यही चाहते हैं और यही किये उसे छुट्टी है।

लोगोंको बड़ा आनन्द आया। वे सर्पके पक्षमे बहुत प्रभावित हुए। उन्होने माना कि सर्प निस्संशय विकट विषधर है। उनको ऐसा आनन्द हुआ जैसे कोई महापुरुष उन्होंने देखा हो। ऐसा महापुरुष जिसकी महत्ताकी झुलस उन्होने अपनेको नही लगने दी है, इसी लिए जिसकी महत्ता उन्हे सानन्द स्वीकार है।

सर्पने सभी कुछ कर दिया और फिर वह कुण्डली भरकर पूँछमे मुँह डालकर वैसे ही बैठ रहा। तभी एक व्यक्तिने उसकी चाल देखनेकी इच्छा प्रकट की। इस महत्त्वपूर्ण, अनोखे, विषधर प्राणीकी चलते समय क्या आन-बान रहती है, यह तो देखे।

सँपेरेने कहा—'अच्छा बाबू।' और बीनकी नोक उसके शरीरपर ठोंक-कर सँपेरेने कहा—'जरा चाल दिखा मेरे राजा बेटे, बाबूको खुश कर दे। तुझे बड़ा इनाम मिलेगा।'

बड़े पुरस्कारकी वाछनीयता एकदम उस मतिमद सर्पकी समझमे शायद नही आई। वह चोटे सहता हुआ भी मानो सत्याग्रहपूर्वक वहाँ जड़की भाँति ही पड़ा रहा। कुछ देर बाद हाँ, उसे बाबूको खुश करनेका लाभ अवश्य विदित हो आया दीखा। तब उसने अपनी देहकी कुण्डलीको खोला और सरकना शुरू किया।

सँपेरेने फणके पास बीनका टहोका देकर कहा—'सलाम कर बाबुओंको। सलाम कर।'

साँपने फण उठा दिया।

इसी भाँति कुछ दूर चल-चलाकर साँप वैसे ही मरोड़ी मारकर आ बैठने लगा। सँपेरेने उसे बहुत शाबासी देते हुए दोनों हाथोंमें उठा लिया और उसे लिये लिये वृत्ताकार एकत्रित लोगोंके समक्ष घूमता हुआ वह कहने लगा—दाता सबका भला करे। कोई फटा पुराना कपड़ा मिल जाय राजा। और पेटके लिए दो रोटी।

लौटकर साँपको जब उसने घरमें छोड़ा तब ढक्कनके नीचे अपने अँधेरे घरमे उस साँपने अपने खंडित दर्पकी घूँट पीकर कहा—हे जगदीश्वर! तैंने मुझे कालकूट विष दिया था। उसे मैंने कृतज्ञ भावसे स्वीकार न कर लेकर तुझे लाचार किया कि तू उसे मुझमेंसे वापिस खींच ले। हे ईश्वर! क्या मेरी इसी अकृतज्ञताका यह दंड है कि मेरा तेज भी मुझसे छीन लिया गया है। हे परमात्मा! क्या विष ही मेरा तेज था? क्या जहरको भी अस्वीकार करनेकी इच्छा हम नही कर सकेंगे, ओ परमात्मा?

और मालूम हुआ कि वाणीमे तो परमात्मा सदा मौन ही रहता है। कृत्यमें ही वह व्यक्त है। जगत्‌की घटना ही जगदीश्वरकी वाणी है।

और कृत्यमे इस भाँति व्यक्त है। और घटनागत वाणी यह है कि उस सर्पको लेकर सँपेरेको अपनी रोज़ी पानेमे सुविधा हो गई है और सँपेरा और उसकी स्त्री कृतज्ञ होकर भगवानको धन्यवाद देते हैं कि हे भगवन! तू सबका पालनहार है।

अपना-पराया

तबकी बात कहते हैं, जब रेल नहीं थी और घोड़ा ही सबसे तेज सवारी थी।

एक मुसाफिर सिपाहियाना पोशाकमे सड़कके किनारेकी एक सरायपर घोड़ेसे उतरा। उसने घोड़ेको थपथपाया और अदर दाखिल हुआ। वह बहुत दूरसे आ रहा था और खूब थका हुआ था। वह चौबीस घंटे यहाँ रहेगा और चला जायगा। उसे अभी दूरकी मजिल तय करना है।

सरायमे पहुँचकर उसने घोड़ा सरायवालेके हाथमे थमाया और चाहा, घोड़ेके खाने वगैरहका ठीक बन्दोबस्त हो जाय और उसके लिए एक आराम-देह कमरेका फौरन इतजाम किया जाय। पैसा फिक्र करनेकी चीज नहीं है, लेकिन उसे आराम चाहिए।

घोड़ेकी व्यवस्था कर दी गई। उसके आराम और कमरेकी व्यवस्था कर दी गई। उसने खाना खाया और पलगपर लेट गया।

नींद उसे जल्दी आ गई और सपनेमे वह घरकी बाते देखने लगा।... उसकी पत्नी जो पाँच सालसे विधवाकी भाँति रह रही है, उसके पहुँचनेपर काम-धाममे बहुत व्यस्त है, प्रेम-सभाषणके लिए तनिक भी अवकाश नहीं निकाल पाती। वह मानो उससे बची-बची काम कर रही है। वह नहीं बताना चाहता कि दो हजार रुपया उसकी कमरसे बँधा है—दो हजार! वह समझना चाहता है और अपनी आँखोके आगे (कल्पनाद्वारा) देख लेना चाहता है, किस प्रकार मेरे पीछे इसने दिन काटे? विपदामे इस बेचारीका साथ देनेके समय वह और कहीं क्यो भटकता रहा? बे-पैसे, बे-आदमी, कैसे यह अपना काम चलाती रही होगी?—और साढ़े चार बरसका यह करनसिंह, ओह!,

बिना किसीकी मददके दुनियामें कैसे आ पहुँचा होगा ? वह अपनी पत्नीकी सूरत बार-बार देखना चाहता है, लेकिन वह मौका नही लगने देती !...यही करनसींग है ? अरे, यह तो बहुत बड़ा हो गया ! बिलकुल अपनी मॉपर है। हॉ, करनसींग ही तो है। क्योजी, आपका नाम करनसींग ही है ? हम कौन हैं, बताइएगा ? अपने बापको जानते हैं ? वह लडाईपर गया हुआ है। मै उसीके पाससे आ रहा हूँ। वह आपको बहुत प्यार करता है। यह कहकर दोनो हाथ बढ़ाकर उसने बेटेको अपनी गोदमें लेना चाहा।

तभी उसकी ऑख खुल गई और उसने देखा, घरकी मजिल अभी दूर पडी है और वह अभी सरायके अजनबी कमरेमे है। उसने माथा पोछा और कमरमे बॅधी रुपयोकी न्यौली सम्हाली। समय उसको भारी लगता था। उसने बातचीतके लिए सरायवालेको बुलाया और मालूम होनेपर भी दुबारा मालूम किया कि पूरे दो रोजकी मजिल अभी और है। इधरके हाल-चाल मालूम किये और अपनी फौजकी बहुत-सी बाते बताई। उसने उस जिदगीका स्वाद बताया जहॉ हर घडी मौतका अंदेशा है और जहॉसे बाल-बच्चे सैकडो कोसो दूर हैं, और छन बीतते अनन्त दूर हो सकते हैं। है तो वह स्वाद, लेकिन बडा कडवा स्वाद है। बताया कि किस भॉति हम मारते हैं और किस भॉति हम मरते हैं। उसने कहा कि मेरी समझमे नही आता, कैसे अपने सगे लोगोके खयालसे बचकर मरा जा सकता है। मरना कभी खुशीकी बात नही हो सकती। और यह अचरज है कि क्यो जिन्हे हम मारते हैं, उनके बारेमे यह नही सोचते कि मरना उनके लिए भी वैसा ही मुश्किल है। हम मारकर खुश क्यो होते हैं ? लेकिन फौजमे यही बात है कि जिस मारनेमे हम मामूली जिंदगीमे डरते हैं, उसी मारनेका नाम वहॉ बहादुरी हो जाता है। वहॉ आदमी जितने ज्यादाको मारता है, उतना ही अपनेको कामयाब समझता है, और लोग इसके लिए उसे इनाम और प्रतिष्ठा देते हैं। बोला—

"मुझे इसमे खुशी नही मिली। पर जब लोग तारीफ करते थे, तब जरूर खुशी होती थी। और, आपसमे जो एक होड़का-सा भाव रहता था कि देखें, कौन ज्यादा दुश्मनोको मारता है, उस होडमे जीतनेकी खुशीको भी खुशी कहा जा सकता है। असली मारनेमे तो दरअसल किसी तरहका स्वाद है नहीं। .. और दुश्मन ? मुझे नही मालूम, वे मेरे दुश्मन क्यो थे ? जिन्हें मैंने मारा,

मेरा उन्होंने क्या बिगाडा था? दुश्मन तो दुश्मन, मैं उन्हें जानता भी नहीं था। अब भी यह सोचनेकी बात मालूम होती है कि फिर वह क्यों तलवार खोलकर मेरी गर्दन काटने सीधा मेरी तरफ़ बढ़ा चला आता था और क्यों मैंने उसे अपनी तलवारकी धार उतार दिया, जब कि हममें कोई तकरार न थी। कहीं-न-कहीं इस मामलेमे कुछ काला मालूम होता है। देखो, तुम हो, मैं हूँ। तुम-हम दोनो पहले कभी नहीं मिले, फिर भी बैठे बात कर रहे हैं, और एक दूसरेको कोई मारने नहीं आ रहा है, बल्कि एक दूसरेके काम ही आ रहे हैं। तुम कहोगे, इस बातकी हमे नौकरी मिलती है। लेकिन, नौकरी मिलनेसे इतना हो सकता है कि हम मार दिया करें, उसमे एक जीतका और खुशीका और अपने फर्ज अदा करनेका खयाल जो आ जाता है, वह कहाँसे आता है? सवाल है कि वह कहाँसे आता है? इसलिए कहीं कुछ भेदकी बात जरूर है। कही कुछ फरेब है, कुछ ऐयारी।...मेरा मन तो दो-तीन साल फ़ौजमे रहकर पक-सा गया है। अपने स्त्री-बच्चोंके बीचमे रहें, ज़मीनमेंसे कुछ उगाएँ, हाथके जोरसे चीजोमे कुछ अदल-बदल करें और थोडेमे सुख-चैनसे रहे, तो क्या हरज है? मैं तो कभीसे वहाँसे आनेकी सोचता था। करते-करते अब आना मिला है।"

सुननेवाला 'हाँ-हूँ' करता हुआ सुन रहा था। वह जानता था, इस तरह चुपचाप विना उकताहट जताये और विना सुने बात सुनते रहनेका उसे रुपया-धेली कुछ मिल ही जायगा। बीच-बीचमें वह योग भी देता था—"हाँ सरकार, हाँ सरकार।"

फौजी कहता रहा—"मैने अपने बच्चेको देखा तक नहीं। मेरे पीछे क्या हुआ हो और क्या नही। घरवालीको अकेले ही सब भुगतना हुआ होगा। मैं जो लौट आया हूँ, इसका क्या भरोसा था? छनमे मर भी सकता था। क्यो भाई, क्या कहते हो?"

"हाँ सरकार।"

"देखो, तुम भी यहाँ रहते हो। तुम्हे डर, न झंझट। अपना काम है, अपना घर। घरसे कोसो दूर तो भटकते नही फिरते। न किसीकी चाकरीमे हो। इसमें क्या मजा है कि घरका आराम छोडकर दूर जायँ, मुलाज़मत करें और उससे जो पैसे पावे, उसके बल लौटकर पड़ोसपर नवाबी ठसक जमावें। क्यों भाई, है न बात?"

वह पैसेसे भी और वैसे भी भरा था और व्ययशील हो सकता था। आशा उसे उठाये थी और सामने बैठे इस निम्नवृत्ति जीवके सामने उसे अपनेको बड़ा समझना और बड़ा दिखाना अच्छा लगता था। इस प्रकार अपने बड़प्पनमे स्वस्थ होकर वह इस जीवके साथ भाई-चारा भी विना खतरेके दिखा सकता था। उसने जेबसे चवन्नी निकालकर सरायवालेको दी, कहा—" लो, बाल-बच्चोको जलेबी खिलाना...। और देखो, घोड़ा सवेरेके लिए ज़ीन कसकर तैयार रहे। पचास कोसकी मंजिल है, हम जल्दी घर पहुँचना चाहते हैं।"

भठियारेने ज़मीनकी ओर सिर झुकाया, कहा—" अच्छा सरकार।"

शाम होनेपर ज़रा इधर-उधर घूमा, रात बुलाई और खाना खा-पीकर सोनेकी चेष्टा करने लगा। सोचता था—सवेरे ही उठकर गजरदम वह चल देगा।

जब रात सुनसान थी और वह गाढ़ी नींद सो रहा था, तभी एक व्याघात उपस्थित हुआ। पास ही कहींसे एक बच्चेके रोनेकी आवाज सुन पड़ी। उस बच्चेकी माँ उसे बहुत मनाती थी, पर वह मानता नही था। शायद भूखा हो या हठीला। कभी माँ उसे झिड़कती थी, कभी पुचकारती थी। लेकिन बच्चा अच्छी तरह चुप नहीं हो रहा था।

बच्चेके लगातार रोनेकी वह आवाज उस सन्नाटेमे उसे बेहद अशुभ मालूम हुई। जो पत्नीसे मिलनेका सुख-स्वप्न देख रहा था, वह उचट गया। यह बेमतलबका क्रन्दन, बेराग, बे-स्वर, सन्नाटेको चीरकर आता हुआ उसके कानोको बहुत अप्रिय लगा। पहले तो उसने चाहा कि वह सह ले और सो जाय। पर नींद असभव हो गई थी और वह राग रुकता न था। आखिर झल्लाकर जोरकी आवाजसे उसने भठियारेको बुलाया। भठियारा डरता हुआ आया और उसने उससे पूछा,—" यह कैसा शोर है?"

" हुजूर, एक बच्चा है...।"

" बच्चा है तो बदशऊर चुप क्यो नहीं रहता?"

" हुजूर, बीमार होगा।"

" बीमार है, तो उसके लिए यह जगह है? क्यों बीमार है?"

भठियारा चुप।

" साथ उसके माँ है?"

" हाँ हुजूर, है। वे कल यहाँसे चले जानेको कहते हैं।"

उससे कहो—" बच्चेको चुप कर, नही तो हमारी नीदमे खलल पड़ता है। चलो, जाओ।"

थोड़ी देरमे भठियारेने लौटकर बताया कि बच्चेकी तबीयत खराब है और भूखा भी है। मैने डॉटकर कह दिया है। देखिए, जल्दी चुप हो जायगा।

लेकिन बच्चेका रोना जारी रहा। बच्चा और उसकी मॉ कही पासहीकी कोठरीमे थे। यह भी सुन पडा कि उसकी मॉने बच्चेके दो-तीन चपत जमाये हैं। लेकिन इसपर बच्चेका चिल्लाना कुछ और प्रबल ही हो गया है।

" मर अभागे, तू मुझे और क्या क्या दिखावेगा ?"—सुन पडा, मॉने ऐसा कहा है और कहकर वह सिसकने लगी है।

सिपाहीने फिर नीद लेनेकी कोशिश की। पर बच्चेका चीखना उसी तरह जारी था। एक स्त्रीकी सिसक और एक बच्चेकी चीख सिरपर अगर चलती ही रहे, तो क्या चैन आसान है? क्या उसको सहना सहज है? सो सिपाहीकी सहन-शक्तिकी पराकाष्ठा जल्दी आ गई। फिर भठियारेको बुलाया—"यह बदनसीब चीखना नहीं छोडेगा? उसे निकालो यहॉसे।"

" हुजूर, गरीब है। कुछ घटोंकी बात है, सवेरा होते वह भी अपना रास्ता लेगी हुजूरको भी तशरीफ ले जाना है।"

" नही, नही, बीमारोंके लिए यह जगह नही है। हम कहते हैं, उससे अभी कहो, निकल जाय। सोने ही नही देता।"

" हुजूर, इतनी रातको वह कहॉ जायगी!"

" कहॉ जायगी? क्यो, सारी दुनिया तेरी सरायके ऊपर है? अस्तबलमे रक्खो, कही रक्खो, जहॉसे शोर हमे बिलकुल न आए। समझे?"

सरायवाला इसको पैसेवाला जान नाखुश नही करना चाहता था। उसे प्राप्तिकी करारी आशा थी। उसने बच्चेकी मॉके पास जाकर कहा—"बराबरमे एक फौजके सरदार ठहरे हैं। बच्चेके रोनेसे उनकी नीदमे खलल पडता है। अगर बच्चा चुप नही हो सकता, तो उसे यहॉसे ले जाओ।"

स्त्रीने गिड़गिड़ाकर कहा—" बच्चेकी ऐसी हालतमे मैं उसे और कहॉ ले जाऊँ? जाडोंके दिन है, आधी रात हो गई है। कुछ घटे और ठहरो मालिक, तडका होते ही मै चली जाऊँगी।"

भठियारेने कहा—"नही, तुम अभी चली जाओ। नही तो वह खफा होंगे।"

स्त्रीने कहा—" उन सरदारजीसे हाथ जोड़कर कहो—मै दुखिया हूँ। थोड़ी देरके लिए और मेहरबानी करे। बच्चेके बापका पता नहीं है। अब इसको कहाँ ढकेल दूँ ? पौ फटते ही चल दूँगी।"

भठियारेके मनमे न था कि यह जाय, पर सरकारकी खफगीका उसे डर था। उसने कहा—" माई, किनारेका अस्तबल है, वह मै तुम्हे बताये देता हूँ। रात वही काटो। तुम देखती नही हो, इससे मेरी रोजीपर खतरा आता है।"

इसपर उसने गोदसे बच्चेको उठाकर दूर ढकेल दिया, कहा—" लो, इसे ले जाके उनके पैरोमे डाल दो, वह जूतेसे इसका ढेर कर दे। मै फिर चली जाऊँगी।"

इतना कहकर वह दोनो हाथोमे अपने सिरको लेकर धीरे-धीरे रोने लगी। उधर फर्शपर पड़ा बच्चा जोरसे चीख रहा था।

सरायवाला इसपर सहमा-सा रह गया। उसने लौट आकर कहा—"हुजूर, कुछ घटोकी और बात है। आप उसे माफ कर दे। वह बहुत दुखिया मालूम होती है।"

इस आदमीको ऐसा लगा कि उसके हुक्मकी अवहेलना हो रही है। वह अपने कमरेमे टहलता हुआ जो कहन-सुनन भठियार और बच्चेकी माँके बीचमे हुआ, सब सुन रहा था। उसके मनको आराम नही मिल रहा था। उसको बुरा मालूम हो रहा था कि क्यो वह इस गदी परिस्थितिमे पड़ गया ? क्यो उस जिद करनी चाहिए कि बच्चेको लेकर वह औरत ठीक इसी वक्त कोठरीसे बाहर निकल जाय ? लेकिन जब भठियारेने उसके सामने आकर यह कहा कि उसे दया करनी चाहिए, तब मानो अपने विरुद्ध होकर उसने जोरसे कहा—" तुममे इतना नही होता और तुम अपनेको मर्द समझते हो ? चलो हटो ! " और जोरसे धरतीको कुचलता हुआ वह उस ओर चला, जिधरसे बच्चेकी आवाज आ रही थी।

कोठरीमे दिया मद्धम जल रहा था और दोनो हाथोमे माथा थामे एक औरत बैठी थी। पास नगी धरतीपर पड़ा हुआ बच्चा चिल्ला रहा था।

" अदर कौन है ? "

अंदरसे कोई नही बोला।

इस व्यक्तिने और जोरसे कहा—"हम कहते हैं, अदर कौन है ? क्या तू बहरी है ? "

स्त्री जरा जोरसे सिसकने लगी और चुप रही ।

" देखो, तुमको इसी वक्त बच्चेको लेकर चले जाना होगा । बच्चा रोता है, तो चुप नहीं रख सकतीं, और कहते हैं, तो मुँहसे जवाब नहीं फूटता ! "

स्त्री चुपचाप उठी, बच्चेको उठाया और बाहर आकर उस व्यक्तिके पैरों-में बच्चेको डालकर उसने कहा—' मैं चली जाती हूँ । इस बच्चेको तुम ठोकर मारकर जहाँ चाहे फेंक दो । " और वह चलने लगी ।

वह व्यक्ति, जाने क्यों, एकदम सकतेसेमे पड़ गया । उसने कहा " ठैरो, ठैरो ! कहाँ जाती हो ? "

स्त्रीने कहा—' जहाँ मौत मिले, वही जाती हूँ । "

व्यक्तिमें एकदम परिवर्तन होने लगा । उसने पूछा–" तो भी तुम कहाँसे आ रही हो और किधर जाती हो ? "

स्त्रीने कहा––" पाँच बरससे इस बच्चेका बाप नहीं लौटा । वह लडाईपर गया है । कौन जाने, मर गया हो । कौन जाने, शायद लौटते हुए मुझे रास्तेमे ही मिल जाय । मैं उसीके पास इस बदनसीब बच्चेको ले जा रही हूँ । "

पुरुषकी आँखोमे आँसू आ गये । उसने अपने बच्चेको अपने पैरोंपरसे उठा लिया । वह अपनी स्त्रीसे यह भी नहीं कह सका कि तुमने मुझे पहचाना नहीं । बच्चेको चूमा-पुचकारा, और डोल-डोलकर गा-गाकर उसे मनाने लगा ।

बिल्ली-बच्चा

घरमें एक शरबती नामकी लड़की थी। पीछेसे वह मोटी हो गई, चार बच्चोंकी माँ बनी और चल बसी। सुनते हैं, बडी होकर अपने तेज मिज़ाजके लिए सरनाम थी। 'सुनते हैं' मुझे इस लिए कहना होता है कि यद्यपि वह मेरी लड़की थी, पर मेरे सामने तो उसके मिजाजकी तुरशी प्रकट होते हुए मैंने नहीं पाई। हाँ, शरीरसे स्थूल, तबियतमे और आदतमे आराम-पसद वह पीछेसे अवश्य हो गई।

मै तबकी बात कहता हूँ जब शरबती बहुत छोटी थी। कोई तीन वर्षकी होगी। उस समय वह बहुत दुबली-पतली थी, तोतली बोलती थी और बैन उसकी बडी मीठी लगती थी। लड़कियोंमे छुटपनसे कुछ माँ-पन होता है। अपने छोटे भाई जिसका नाम बिज्जू भी था, बिज्जी भी था और विजय-कुमार भी था, उसको वह बहुत प्यार करती थी। पैसा मिलता तो सैंतकर अपने बिज्जूके लिए रख लेती। मिठाई मिलती, तो भी स्वय न खाकर उसीके लिए अलग धर छोडती। कई बार देखा गया कि आलेकी जिस गोलकमें संयमपूर्वक वह जिन पैसोंको जमा करती रही है उनमेसे अधिकाश कभी कभी गायब भी हो गये हैं। और मिठाई अगर उसके संग्रहालयमे कुछ बची भी रही है तो वह सूख-साख कर निकम्मी हो गई है। किन्तु इन बातोंसे पाठ सीखकर शरबती अपने स्वभावको बदलनेमें नहीं लाती थी। पैसे मिलते तो फिर वहीं बटोर रखती और अपने हिस्सेके खेल-खिलौने या मेवा-मिठाई भी, उसी तरह बिज्जीके लिए जमा कर छोड़ती।

इधर बिज्जू बिज्जूसे कम न था। बड़ा ऊधमी लड़का था, शुरूसे ही जैसे वह नवाब साहब है। शरबतीका सब प्यार लेता है और बदलेमे उसे खूब मारता है। वह काटता है, नोचता है, और बहनको खूब रुलाता है। बड़ी बहन होनेका जरा लिहाज़ नहीं करता। शरबती बेचारी खूब रोती है। रोती रोती अम्माके पास जाकर शिकायत करती है। पर, कुछ देर बीतती नही कि वही शरबती आकर कहने लगती है—बिज्जी, ले, बर्फी नही लेगा?

बिज्जू किलकारी भरकर लपकता है और बर्फी मुँहमे रखकर शरबतीका मुँह खँरोचने लगता है।

जिसपर शरबती कहती है—हट बदमाश!

बदमाश भला क्यो हटनेवाला है! वह दोनों हाथोंके पजोसे उसका ऐसा मुँह खसोटता है कि शरबती चिल्ला पडती है—देख ले री, अम्मा। तू फिर मुझे कहेगी।

पीढ़ेपर बैठी अम्मा कहती है—और खिला बर्फी। तुझे यह बडा निहाल करके रक्खेगा, जो तू इसे बर्फी खिलाती मानती नही।

उसके चार महीने बाद महाशय विजयकुमार चल दिये। उन्हे बुलाने चेचक माता आ गई, और वह बचाये न बचे। पहले तो खूब बड़े बड़े माताके दाने सारे बदनपर हो गये। देहीपर कही तिल रखनेको ठौर न बचा। जीभपर वही फफोले उठ आये और तालूपर भी। पलकके ऊपर भी दाने थे, वैसे ही पलकके नीचे। छह रोज तक सौके ऊपर तीन-तीन चार-चार डिगरी बुखार उसे रहा। आँखे बद हो गई और उनके ऊपर मोटे मोटे दो फाड़ेसे उठ आये। महाशय विजयकुमारको तब एक छन चैन न मिली। वह न इस करवट सो पाते, न उस करवट। जिधर सोये उधर ही समझिए, शरीरमे बिधे हुए काँटे गहरे गहरे बिधते थे। कल किसी तरह न थी। कठमे सुर रहता, तबतक विजय बाबू चिचियाते रहते। दम न रहा, तब बेदम हो रहते थे। चेचकके दानोंसे विजय बाबूका कमलसा सुन्दर मुँह ऐसा हो गया था—कि डर लगता था। आँखे उसमे नदारद थी, चेहरेपर उठी हुई नाक कही भी न चीन्ह पड़ती थी, और मुँहकी बात पूछिए नही। इस हालतमे उनके पेटमे न कुछ खाद्य पहुँच सकता था, न पेय। कुछ ठडे पानीकी बूँदे जो कहिए अनुमानके सहारे मुँह पहचानकर उनके ओठोके बीचमे चुआ दी जाती, वह पानी विजय बाबूको मानो अमित ठडक पहुँचाता। विजय बाबू जैसे तब मुस्कराना चाहते। उस

मुस्कराहटको देखकर आँसू रोकना मुश्किल हो जाता था। मुँह ऐसा डरावना, फिर भी ऐसा करुण लगता था कि...

खैर वह दूसरी कहानी है। सात आठ रोज अपनी अम्माकी गोदमे पड़े रहकर उनकी और माता चेचककी छीना-झपटीमें विजय बाबूने एक सप्ताह तो निकाला। उस सप्ताहके बाद बाबू यहाँसे लगर तोड़, राम जाने कहाँके लिए चल पड़े। डाक्टर भी रह गये, उनकी अम्मा भी रह गई, हम भी रह गये। इन यो ही रह जानेवालोंमे शरबतीका नाम सहसा नही आता। शायद इसलिए कि वह अभी किसी गिनतीके लायक न थी। किन्तु, विजयके चल देनेपर वह तो जैसे एक ही दिनमें चालीस वर्षकी हो गई। उसका बिज्जी गायब हो गया। इस विषयमे उसने न कुछ पूछा, न ताछा। वह बिल्कुल नही रोई। जब खाना दिया खाना खा लिया, और काम कहा काम कर दिया। पर उसका हँसना उड़ गया था। न वह अब मचलती थी, न शिकायत करती थी।

मैंने कहा—बेटा शरबत!

उसके मुँहपर सुनकर कोई लाली नही आई। वह मेरे पास आ गई, आकर खड़ी हो गई। मानो कह रही हो—बाबूजी, मुझे गोदमें लेना चाहते हो तो ले लो। मै खड़ी हूँ। मै सामने हूँ तो।

मैंने उसे गोदमे खींचकर कहा—'बेटा शरबत!' ठोड़ीमे हाथ डालकर कहा—'बेटा सरो, क्या बात है?'

उस समय वह रो पड़ती तो मेरा चित्त हल्का हो जाता। वह न रोई, न कुछ बोली। मैंने गोदमे निकट खींचकर उसे चूमा, पुचकारा। मैंने कहा—बेटा, बिज्जो तुझे याद आता है? वह तो चला गया, बेटा।

मेरा हृदय यह कहते कहते आप ही भर आया। यह बात मुँहसे निकालनेका साहस मैंने जान-बूझकर किया था, जिससे कि लड़की रोए तो। किंतु वे शब्द निकलते निकलते मुझे भी भर लाये। मैंने देखा कि वह शरबतीके भीतर तक भी गये हैं कि शरबती अभी सुबक उठेगी। मुझे उसके चेहरेपर दीखा कि उसके भीतर जैसे जम गई हुई वेदना छिड उठी है। वहाँ जैसे व्यथामे कुछ मन्थन हो उठा है। जैसे कि तटसे फूटकर कुछ अवश्य बहेगा। लेकिन तटपर आ-आकर भी आँसू तट लाँघकर नही आए। वह नहीं रोई।

उसकी माँ इस बातपर भयसे भर उठी। शरबतीको एक साथ ऐसी बुद्धि-मती हो जाते देखकर उसकी माँ अत्यत कातर हो गई। शरबतीका मन नही

बहला, नहीं भरमा, और वह खाली भी नही हुई। वह ऐसी भरी रही कि कूलको तोड़कर बहनेकी उसमे आवश्यकता न प्रकट हो सकी। उसकी माँने आतङ्कसे भरकर मुझसे बार बार कहा—'अरे, क्या वह भी मुझे छोड़कर चली जायगी ? उसे क्या हो गया है ? तुम बताओ न, मै क्या करूँ ?

किन्तु मैं क्या बताता।

तीन रोज खींचकर चौथे दिन शरबती खाटपर गिर गई। उसे बुखार हो आया। देखते देखते बुखार बहुत तेज हो गया। वह बेहोश हो जाती और बड़बड़ाने लगती। उसकी माँकी चिन्ताका ठिकाना न था। डाक्टर भी आये, हकीम और वैद्य भी आये। पर, बच्चीकी बेकली कम होनेमें न आई। बेहोशी सबेरेके घटोंमे कुछ उतरी पाती, उस समय गुम-सुम शरबती कमरेकी छतकी ओर देखती, या दीवारकी ओर देखती। तब वह अपनी माँको भी पहचानती थी, मुझे भी पहचानती थी। पर हमारे लिए मानो उसे कुछ कहना न था। हमे सूनी आँखोसे देखती और उसी भाँति दृष्टि लौटा लेकर उन्ही आँखोसे वह दीवारकी ओर देखने लगती।

मैं पुकारता—बेटा शरबत !

माँ पुकारती—ओ सत्तो ! ओ मेरी बिटिया रानी ! ओ, मेरे बेटे राजा !

शरबती सुनकर चौकती और आँखे फैलाकर हमको देखती रहती।

वह बहुत ही दुबली हो गई थी। शरीरमे सीकसी हड्डियाँ बची थी। उस समय जब कभी सोते सोते वह मुस्कराती थी, तब देखकर मन आनन्दके साथ ही बड़ी व्यथा और आशंकासे भर आता था। पर नींद उसे बहुत कम आती थी। इतनी कल ही उसे कब पड़ती थी कि नीद आए। अधिकतर बेहोशीकी ही नींद उसे आती थी। उस बेहोशीमे प्रलाप जारी रहता जो उसमे-से मानो बची-खुची शक्तिको खीचकर उलीच रहा था।

ऐसे ही दुबिधामें सात रोज बीते। उसकी माँ सब सुध बिसारकर सब काल उसीके सिरहाने बैठी रहती थी। जब बच्चीकी पलकें कभी कुछ देरको लग आतीं तभी उसके खटोलेकी पट्टीको वह छोड़ती थी।

तब धीरे धीरे थपकाकर वह मुन्नीकी नींदको मानो उन पलकोपर जमा देती, और जब नींद जम जाती तब फिर अचक पाँव धरती हुई वहाँसे वह कहीं जाती।

बच्चीकी हालत गिरती ही गई। जीनेकी चाह ही जैसे भीतरसे धीमी होती जा रही थी। डाक्टर हारने लगे और हकीम वैदोकी समझमें भी कुछ बात

ठीक न बैठी। बस, बच्चीकी अम्माका जी ही इस बारेमे पक्का था कि मुन्नीको जीना होगा।

बुखार तो कट गया था, पर शरीर छीजता ही जाता था। पथ्य कोई लगता ही न था। मानो अब तो वह अपनी माँकी सदभिलाषाओपर और उसके संकल्पके बलपर ही जी रही थी।

एक रोज शरबतीकी ऑख छब्बीस घंटेके बाद कहीं जाकर लगी, तब माँ जरा उसे छोडकर नित्य-कर्मसे तनिक निवृत्ति पानेके लिए उठ कर उठी। पर इस बीच भी वह हर तरहकी आहटके प्रति चौकन्नी रह रही थी। थोड़ी देरमें उस ओरसे किसीकी बारीक चिचियानेकी आवाज उसने सुनी। वह भागी गई कि देखती है कहीसे मुन्नीके खटोलेपर नन्हासा बिल्लीका बच्चा एक आ गया है। मुन्नीने दोनो हाथोकी मुट्ठियोंमे उसे जोरसे दबोच कर रक्खा है और वह की-की कर रहा है।

अम्माको आते देखकर ही मुन्नीने कहा—अम्मा, बिल्ली-बच्चा!

उस समय उसके चेहरेपर जैसे कुछ लौटी हुई सुधिकी आभा दीखी। और मानो यह कहते कहते बच्चेपरसे उसकी उँगलियाँ कहीं कुछ ढीली न हो गई हो, और भी उसे दबोचकर मुन्नीने कहा—अम्मा, बिल्ली बच्चा!

बिल्लीके बच्चेने और भी जोरसे किया—की-कीं-की। फिर भी मानों वह अपने-पर क़ाबिज उस स्वामित्वसे बिछुड़ना न चाहता था।

बिल्लीका बच्चा सूखा-सा था। मानो किसीने अभी मुँहमे लेकर उसे बुरी तरह झकझोर दिया हो, वह सहमा हुआ था।

मुन्नीने कहा—अम्मा, दूधू।

अम्माने खुश हो पड़कर कहा—दूध पियेगी बेटा?

मुन्नीने बिल्ली-बच्चेको दिखाकर कहा—बिल्ली-बच्चा, अम्मा।

माँने डरकर कहा—बेटा, उसे छोड़ दे, पजे-वंजे मार देगा।

और माँ उसके हाथमेंसे बच्चेको ले लेनेके लिए आगे बढ़ी।

मुन्नीने अपनी मुट्ठियोको मजबूत कर लिया। उसके चेहरेपर दीखा, मानो कि वह मुकाबिला करेगी। और बच्चा ज़ोरसे कींका।

माँ पास आते आते रुक गई, धीमी और स्निग्ध वाणीसे बोली—बेटा, उसे छोड़ दे। जानवर है, पंजे-वजे गाड़ देगा।

मुन्नीने कहा—अम्मा, बिल्ली-बच्चा दूधू पीए। कहकर बच्चेको ज़ोरसे उसने अपनी छातीमे खींच लिया।

माँ लौटकर एक कटोरीमे दूध ले आई।

मुन्नीने बच्चेको गर्दनसे दबोचकर उसका मुँह कटोरीमे करते हुए कहा—पी, दूधू पी, बिल्ली-बच्चे।

लेकिन बच्चा अपनी गर्दन छुटानेमे अधिक आग्रही रहा, दूधकी ओर समुत्सुक नही हुआ। मुन्नीने तीन चार थप्पड उसको जमाये, कहा—नही पिएगा, ऐ? नहीं पिएगा?—पी, पी।

पीट-पाटकर जब फिर उसका मुँह कटोरीमे किया तब भी बच्चा हठपर ही कायम दीखा। उसने दूध पिया ही नही। मुन्नीने उसको उस समय बडे प्यारसे थपका, उसके बदनको सहलाया, उसके मुँहको अपने मुँहके पास ले जाकर प्यार किया, उसके गालोंको अपने गालोंसे रगडकर कहा—पी ले मेरे, बिल्ली-बच्चे, मेरे बच्चे। कहकर उसके मुँहका चुबन भी लिया।

इस बार बिल्लीका बच्चा अपनी छोटीसी जीभ निकालकर कटोरीका दूध चाट-कर पीने लगा। लडकीको यह देखकर बडा कुतूहल हुआ, उसमे इस बच्चेके लिए स्नेह जाग आया।

फिर तो अनायास ही जीवनका स्नेह भी उसमे खोया न रहा। उस दिनसे वह अच्छी होने लगी। हमेशा बिल्ली-बच्चेको अपने पास चिपटाकर ही सोती। जगनेपर कभी वह न मिलता तो उसे पाये बिना न खुद चैन लेती, न हमे चैन लेने देती।

उसके बाद तो आप जानते ही हैं कि एक दिन वह भी आया कि वह फल-फूलकर खूब मोटी भी हो गई।

'हंस'का अनुरोध पाया कि कहानी लिखो। कहानी लिखनेको तैयार होकर सोचता हूँ, क्या लिखना होगा। उसी समय तारवाला आकर एक तार दे गया। परमात्माकी दया देखो कि कैसी विचित्र है। तारमे है कि शरबती मर गई है। तारवाला अभी गया है। शरबती मेरी अपनी बेटी थी। इकलौती तो आप यो न कहने देंगे कि विजय भी मुझे मिला था, जो बचपनमे ही मुझसे लुट भी गया। तो भी लगभग जीवन-भर शरबतीको इकलौती ही समझता आया हूँ। छोटे छोटे चार बच्चे छोड गई है। खैर तार पाकर मुझे बिल्ली-बच्चेकी बात याद हो आई। सो आपको सुना दी है।

मुझे आशा है, कहानी-सुनकर आप कहानी-लेखक होनेसे सदा बचेंगे।

राज-पथिक

भोजनकी थालीपर बैठे छोटे राजकुमारने पूछा—माँ, वह महल लाल पन्नोंका है न ?

रानीने कहा—कौनसा महल, बेटा ? यह तुम कुछ खा नहीं रहे हो, खाओ।

राजकुमारने कहा—माँ, सात समंदर-पार जो नीलमके देशकी छोटीसी रानी है, उनका महल लाल पन्नोंका तो है न ?

माँने कहा—हाँ, बेटा, लाल पन्नेका है, और उसमे हीरे भी लगे हैं, और उस महलका फर्श—पर वह तो कहानी रातको होगी। अब तुम खाना खाओ।

बालक चुपचाप खाना खाने लगा। वह सोचने लगा कि नीलमदेशकी राजकन्या उस बड़े महलमे अकेली रहती है। कोई साथी संगी पास नहीं है। कहानीका प्रतापी राज-कुमार जब तक उसके पास नहीं पहुँचेगा, तब तक वह बेचारी अकेली ही रहेगी। वह बाट ही देखती रहेगी। नीलमके द्वीपमे उस राजकन्याका महल लाल-पन्नोंका है। और उसमे हीरे भी लगे हैं और फर्श—राजकन्या बहुत छोटी-सी है। दूधसी सफेद है और...

राजकुमारका जी उस राजकन्याके चारों ओर घूम रहा है। वह खानेमे नहीं है। उसने सोचा, राजकन्या अकेली क्यों है ? और वह प्रतापी राजकुमार जाने कितनी देरमे सात समदरोंको पार करके वहाँ पहुँचेगा—

सहसा बालकने कहा—माँ रानी अकेली हैं ? वह क्यों अकेली हैं ?

माँने कहा—कौन रानी बेटा ?—हाँ, वह नलिमके देशकी रानी। वह बेचारी तो सहस्रों वर्षोंसे अकेली ही है। प्रतापी राजकुमार जब वहाँ पहुँचेगा

तब उसका उद्धार होगा और उस दिन उस नीलमके देशमें दूधकी वर्षा होगी।

बालकने कहा—माँ, वह राजकुमार कब पहुँचेगा ?

माँने कहा—बेटा, खाना खाओ। कहानी रातको होगी।

राजकुमार चुप हो खाना खाने लगा। उसने सोचा कि कहानी तो रातको हो जायगी, पर राजकन्या तो अकेली है। वह प्रतापी राजकुमार वहाँ जाने कब पहुँचेगा ? क्यो कि, जो सात समदर बीचमे हैं, वे बहुत बड़े-बड़े हैं। ऐसे क्या बहुत ही बड़े हैं ? उन्हे तैरकर पार नहीं किया जा सकता ? और वह राजकन्या अपने महलकी सीढ़ियोपर बैठी पानीकी परियोसे कैसे बात करती होगी ?

चुपचाप खाते खाते सहसा बालकने पूछा—माँ, वह रानी क्या खाती हैं ?

माँने कहा—क्या खाती है ! समुंदरके नीचेसे पानीकी परियॉ सीपके पात्रोमे तरह तरहके फल-फूल लाती हैं। फूलोको वह सूँघ लेती है, फलोका रस ले लेती है। और वहॉकी हवा स्वच्छ दूधकी-सी है। उसको पीती है।

बालकने कुछ विस्मित होकर कहा—नही मॉ, हवा नही पीती।

"तो क्या पीती है ?"

"हवा नही पीती।"

"बेटा, तो वहॉ गौका दूध थोड़े ही होता है !"

"तो हवा ही पीती हैं ?"

"और नही तो क्या !"

"अच्छा-आ !"

बालकको यह सूचना बडी अद्भुत मालूम हुई। उसने सोचा कि जब रात चाँदनी होगी, और वह अकेला होगा, तब देखेगा हवा कैसे पी जा सकती है ? उसने उत्साहके साथ पूछा—माँ ! वह कपड़े कैसे पहनती है ?

माँने कहा—बेटा, खाना खाओ।

बालक खाना तो खाने लगा, लेकिन नीलमके देशकी रानी कपडे कैसे पहनती हैं, यह उसकी समझमें नहीं आया। दो-चार कौर खाकर उसने फिर पूछा—नही अम्मा, नीलम देशकी रानी कपडे कैसे पहनती हैं ?

माँने कहा—तुझे बताया तो था कि कपड़े कैसे पहनती है। रतनके जड़े कपडे पहनती है। और सोनेके तारके वे बुने होते हैं।

बालकने निश्चयपूर्वक कहा—नहीं—

राजपुत्रको संदेह होने लगा है कि माँको सब बातें ठीक अच्छी तरहसे पता नहीं हैं। वह क्या जानता नहीं कि रतन पत्थर होते हैं, और सोना भारी होता है। यह बिल्कुल झूठ बात है कि नीलम देशकी रानी जब हवा पीती हैं तब रतन-जडे वसन पहनती हैं। पीती तो जरूर हवा ही होगी, पर पहन रतन नहीं सकती। इसीसे उसने निश्चयपूर्वक कहा—नहीं।

माँने कहा—क्यो, भला?

कुमारने कहा—रतन तो पत्थर होता है।

माँने कहा—तो फिर क्या पहनती है?

"तुम बताओ, क्या पहनती हैं!"

मॉने कहा—मै तो समझती हूं, कि तब वह कुछ भी नही पहनती।

"नगी रहती है?"

"हॉ, नगी ही रहनी है।"

वह बात राजकुमारको एक दम बहुत बुरी लगी। उसने एक साथ ही सामनेसे थाली सरकाकर कहा—झूठ, झूठ!

मॉने कहा—बेटा, खाना खाओ। रातको बाते होगी कि वह क्या पहनती है?

किन्तु बालकके मनको यह रानीके कुछ भी न पहननेकी बात तो एकदम अस्वीकार्य ही जान पडती है। नही—नहीं, कभी ऐसा नही हो सकता। उसे अपने नीलम देशकी रानीकी यह बड़ी भारी अवज्ञा मालूम होती है। छिः छिः, मॉ इतना भी नहीं जानती कि ऐसा कभी नहीं हो सकता।

उसने कहा—नही, मुझे भूख नही है।

मॉने कहा—खाओ, बेटा, अभी तुमने खाया क्या है।

बालकने गुस्सेमे भरकर कहा—मैं नही खाऊँगा। रानी नंगी नहीं रहती हैं, तुमने क्यो कहा?

माँने हँसकर कहा—हाँ, हाँ मुझे याद आगई। वह सपनेके कपडे पहनती है। मै भूल गई थी। और वह चाँदनीसे बारीक होते हैं।

बालकने बहुत सोच-विचारमे पड़कर पूछा—सपनेके कपड़े कैसे होते है, माँ?

मॉने कहा—तुम खाना खाओ, मै बताती हूँ।

बालकने थाली पास सरका लेकर कहा—बताओ।

बालकने खाना शुरू किया, माँने बताना शुरू किया। बताया कि सपनेके कपड़े बड़े महीन होते हैं। शबनम जानते हो, उससे भी महीन होते हैं। मकड़ी-का जाला देखा है, उससे भी महीन होते हैं। वैसे ही कपड़े वह नीलमके देश-की रानी पहनती है।

बालकने विस्मयसे कहा—अच्छा-आ!

उस नीलमके द्वीपमें जो सूने महलोंमें सहस्रों बरसोंसे अकेली, छोटीसी, राज-कन्या रहती है, उस द्वीपकी रानी है, और आदिसे प्रतापी राजकुमारके आनेकी प्रतीक्षामें अकेलापन काट रही है, बचपनसे कल्पना उसीके चारों ओर अपना बसेरा बनाती रही है। राजकुमारके छः भाई और हैं, वह सबसे छोटा है। राज-काजमें उसकी आवश्यकता नहीं है, और वह माँके प्यारकी छाँहमें क्षत्रियकी भाँति नहीं, फूलकी भाँति बढ़ रहा है। बढ़कर वह बड़ा हो रहा है। उसकी कल्पना अब पहले जैसी कच्ची नहीं है। पर कल्पना तो सदा कल्पना ही है। जितनी अधिक अवास्तवताको वह अपना सके उतनी ही तो वह बलिष्ठ होती है। वयके साथ राजकुमारकी कल्पनाका कर्तृत्व भी बढ़ता गया है। जो राजकन्या नीलमके देशके महलोंमें अकेली है, वही धीरे धीरे उसके जीवनमें मानो अर्थ पकड़ती जा रही है। जैसे उसको लेकर यथार्थ ही उसे अपने भीतर अभाव अनुभव हो आने लगा है। प्रतापी राजकुमार क्या सात समंदरोंको पार न करेगा? क्या वह यहीं उनसे घिरकर बन्द रहेगा? और वह नीलम देशकी राजकन्या अकेली ही रहेगी? बीचमें समदर सात हैं, और वे एकसे एक दुर्लंघ्य हैं, तभी तो प्रतापी राजकुमारको उन्हें पार करना है। क्या अनत क्षीरोदधिके बीचमें सूने पड़े हुए महलोंमें कोई राजकुमार प्रतापी बनकर उसका अकेलापन हरने करने न पहुँचेगा?

किन्तु कहाँ है वह नीलमका देश? कौन है उसका दिशादर्शक? 'यह नहीं है' 'यह नहीं है'—यह ध्वनि तो युवक राजकुमारके हृदयमें स्पष्ट सुन पड़ती है। पर कहाँ है, इसका तो भीतरसे कोई निर्देश ही नहीं प्राप्त होता। वह प्रतापी राजकुमार कब उस एकाकिनीके पास पहुँचेगा?.. सब छोड़ चल देना होगा। समदर सात हैं और जीवन थोड़ा है। समदरोंकी विकटता भी तो गहन है। सब छोड़ चल देना होगा, क्योंकि वह अनूढा रानी प्रतीक्षामें है।

राहमे कहाँ रुकना है, क्योंकि नीलम प्रदेशकी राजकन्या अकेली है। अनन्त क्षीरोदधिके वक्षमे, सूने महलोमे वह अकेली है।

अब राजकुमार राजेश्वर है। विधि देखो कि छहों उसके भाई राजलिप्सामे मर-कट गए हैं। राजा बननेको रह गया है यह, जो हृदयमे स्वप्नको पोसता रहा है, और जो दीन भी रहने दिया जाता तो क्या बुरा था।

किन्तु, वह राजेश्वर है। चारो ओर वैभव है। अभाव वहाँ कहाँ है? सब हैं, जो उसके आदेशकी प्रतीक्षामे हैं। कब राजेश्वरकी इच्छा हो और वे उसकी राहमे बिछ जावे। अप्सराओमी सुन्दरी सात उसकी रानियाँ हैं। उन सबके लिए वही पति है। चारो ओर राज्यके काम है, जिन सबका वही अधि-नायक है। इन सबमे अपनेको दान करनेमे वह चूका नही है। कर्मठ शासक है, वत्सल प्रतिपालक, प्रेमी पति। सद्यः वह पिता भी हुआ है, और बड़ा स्नेही पिता है।

किन्तु, सात-समदर पार नीलम देशकी वह राजकन्या क्या प्रतीक्षामे अकेली नही है? बीचमे समदर सात हैं, क्या इसीसे वह अकेली रहेगी? क्या इसीसे राजकुमार प्रतापी होनेसे रह जायगा? क्या समदरोके इस ओर ही वह भरमा रहेगा? और कौन है वह राजकुमार जो सातो समदरोके ऊपरसे पार होकर आनेवाली नीलम देशकी अनूढा राजकन्याकी प्रतीक्षाकी मूकवाणीको सुनेगा? सुनेगा, और चल पड़ेगा लॉघन वह सातों समदरोको? और, वह प्रतापी राज-कुमार कौन है? क्या वह अभी नही जन्मा है?

राजनिष्ठ राजेश्वरके मनमे अहर्निशि उठता रहता है—'वह कौन है? वह कौन है? क्या वह अभी नहीं जन्मा है?' अपने राज-काज, राज-वैभव और राजरानियोके बीचमे भी उसमे उठता रहता है—'वह कौन है? वह कौन है?' वह मानो स्वप्नमे सब कुछ करता है, जैसे परदेशमे हो, किसी माया-पुरीमे हो। पूछता रहता है—'क्या वह प्रतापी राजकुमार अभी नहीं जन्मा है?'

और, समदर क्या अनुलंघनीय ही रहेगे और नीलमकी वह राजकन्या अनूढा? और क्या प्रतापी राजकुमार यहाँ ही भरमा रहेगा? और, जब कि समदर गरज रहे हैं, और उनके पार राजकन्या अपने प्रतापी वीरकी राह देख रही है, तब क्या वह यही सफेद दीवारोसे घिरे महल, नियमोसे घिरे राज्य,

विलाससे घिरे जीवन और ममतासे घिरे पुत्र-कलत्रोंमें ही घिरा रहेगा ? वह चल न पड़ेगा, उन समदरोंको पार करनेके लिए जो उसके और अनत प्रतीक्षा-मग्न उस एकाकिनी राजकन्याके बीचमें दुर्धर्ष होकर गरजते हुए लहरा रहे हैं ? अरे, कैसा वह प्रतापी वीर है ?

× × × ×

और एक रात, जब कि चाँदनी छिटक रही थी, रात आधीसे अधिक बीत गई थी, सब सोए पड़े थे। वाम पार्श्वमें स्वच्छ शय्यापर शिशु राजकुमारको छातीमें लेकर पटरानी स्वप्नमग्न थी, तब राजेश्वर समस्त आभरण उतार, सब छोड़, निरीह पथ-यात्री बनकर, चुपचाप चल पड़ा। चल पड़ा, कि उन सातों समंदरोंको पाएगा और पार करेगा।

वे कहाँ हैं ? पर वह महल छोड़कर चला जा रहा है दूर, और दूर। वह चलता ही चला जायगा, जहाँ कहीं होंगे, उन समदरोंको पाएगा और पार करेगा।

वह राजेश्वर चला जा रहा है अकेला, अनन्त-पथ-यात्री, कि नीलम देशकी राजकन्या मुस्कराए कि उसका प्रतापी राजकुमार आया है !

मौतकी कहानी

चर्चा छिडी प्रेमपर, आ पहुँची मौतपर । किस रास्ते प्रेमसे चलकर इस बेहूदे विषयपर हमारी चर्चा आ गई, यह हमको ठीक तौरसे पता नही चला । हमारी क्लब-मडलीके रस-प्रधान सदस्य बाबू प्रेमकृष्ण भटनागर एडवोकेटने कहा—यह मौत जाने कहाँसे बीचमे कूद पड़ती है कि हमारा सब करा-कराया चौपट कर देती है । इसके मारे नाकमे दम है । आज यहाँ बैठे हैं, कलका भरोसा नहीं । ऐसेमे क्योकर कुछ करनेको जी चाहे । यही है, कि जाने कब वह बीचमे आ टपके· इसलिए जितने दिन रहना, मजेस रहना, अपना तो यही उसूल है ।

इसके समर्थनमे फिर एक शेर कहा, जो मुझे याद नही है ।

प्रोफेसर ज्ञानविहारीने कहा—बस अब वह थोडे ही दिनोकी मेहमान है । अब भी अपनी दवाइयोसे कम्बख्तको साल-दो साल दूर भगाये रखते हैं । थोड़ी देर और ठहरनेकी बात है, फिर तो उसे ऐसी धता बताई जायगी, कि इधर भूलकर भी मुँह न करे ।

प्रोफेसर ज्ञानविहारी साइसके बडे प्रोफेसरोंमेसे थे और पदार्थ-विज्ञानमें विशेष पैठ रखते थे ।

डा० विद्यास्वरूपने कहा—उसकी आवश्यकता अब धीरे-धीरे समाप्त होती जा रही है । जीवन क्या इसलिए है, कि उसका अन्त मौतमे हो जाय ? नही, जीवनकी यह हार चिरकालीन नहीं हो सकती । जीवनका कुछ अर्थ ही नहीं, अगर मौत उसके आगे फुलस्टापकी तरह आकर बैठ जाए । इसलिए मृत्यु स्थायी वस्तु नही है । प्रकृति हमें इसलिए नही जिला सकती कि पीछेसे

हमे मार देना है। कही कुछ गडबड़ अवश्य है जो हम मरते हैं। नहीं तो मरना अप्राकृतिक होना चाहिए, असभव होना चाहिए।

मैने पूछा—मौतका खाता बन्द हो जायगा, तो जन्मका सिलसिला भी रोक देना पडेगा। नही तो धरतीपर ऐसी किचमिच्च मचेगी कि साँस लेने-को भी जगह न रहेगी। बच्चे नहीं होंग, तो स्त्री भी नही रहेगी। फिर पुरुष भी ऐस नही रहेगे। सब मिलकर हिजडेस बन जायँगे। क्यो यही बात है न?

इतनी दूरकी बात विद्यास्वरूपजी और ज्ञानविहारीजीने काहेको सोची होगी। वह सहसा उत्तर न दे सके। ज्ञानविहारी हँस पड़े, और विद्यास्वरूप, जैसे सोचमे पड़ गये। वह पी-एच्० डी० हैं, इसलिए हर बातको उन्हे हस्तामलकवत् जानना चाहिए, ऐसा उनका खयाल है।

मि० खन्ना एडीटरने कहा—होगी, नही होगी, इससे हमे कुछ भी मत-लब नही पर चीज बडी खराब है। मेरा वश चले, तो एक दम रोक दूँ।

मैने कहा—मेरी भी यही राय है। इस चीजको अभी रोक देना चाहिए। और इसके लिए अभी यह काम करना चाहिए कि अगली बार, इस मनमाने परमात्माको खीचकर जब अपनी मर्जीके मुताबिक वोट देकर परमात्मा बनानेका मौका आये, तो इसके लिए हम तैयार रहे। खूब वोटस् कनवास करे, और मि० खन्नाको उसके लिए चुन डाले। मिस्टर खन्ना गये, कि हमे मौतसे छुटकारा मिल जायगा।

'इसी तरहकी बातोंमे हम मौतको पकड कर जिन्दगीका मजा लेने लगे।'

मैने कहा—हम लोग उसके पीछे इतनी बडी बडी बाते बनाते हैं। खतम कर देगे, यह कर देगे, वह कर देगे। सामने जब वह आ पहुँचेगी, तो मुँहसे बात भी न निकलेगी।

प्रेमकृष्णने कहा—वाह, मौतकी क्या बात है! सैकडो हँसते-हँसते मर जाते है। कैसा मलाल, कैसा दुःख, जरा कुछ भी जो उन्हे खयाल होता हो। पर ऐसा वही कर सकते है, जो जिन्दगीका लुत्फ उठाना जानते हो। वही मौतका भी मजा ले सकते है।

फिर बात चली, कि किसीने मौत देखी भी है या नही। आमने-सामने देखी हो, यह नही कि किताबोमे पढ लिया, या दूसरेको मरते देख लिया।

सब सहमत हुए कि भय नामका देव, है सचमुच बड़ा डरावना। और सोचने लगे, कि वास्तवमे वह किसी अस्त्र-शस्त्रसे आदमीको नही मारता, दरअसल मारता ही नहीं, आदमी उसे देखकर डरके मारे आप ही मर जाता है।

एक हमारा मेम्बर है प्रमोद। इस स्थलपर वह भी आ पहुँचा। हम सब लोगोको बड़ी खुशी हुई। पूछा—तुम तो कलकत्ते थे, कब आये?

उसने कहा—बस, आ ही रहा हूँ समझो। सोचा, शामका वक्त है, पहले आप ही लोगोसे मिल लूँ, फिर और कुछ करूँगा।...क्या बातचीत है?

प्रेमकृष्णने कहा—बड़ा झमेला आ पड़ा है। सवाल यह है कि किसीने म्याऊँका ठौर पकड़ा है।

लगभग साथ ही मैने कहा—बात यह है कि मौतका मामला है। यह जानना है कि किसीने उसे आमने-सामने देखा है। तुमने इतना सब-कुछ देखा, पर इसे भी देखा है?

प्रमोदने कहा—आप लोगोको शामके वक्त यहाँ क्लबमे मौत देखनेकी सूझी है। यही था, तो अकेले मरघटमे जाकर बैठते। वहाँ देख पानेकी कुछ आशा भी हो सकती थी। वास्तवमे मौत अपना रग बदलती रहती है। किसीको कैसी दीखती है, किसीको कैसी। अब कुछ, तो फिर कुछ। या कहो कि वह वैसी ही रहती है, अलग-अलग आदमियोको अलग-अलग तरहकी दीखती है। मैने जब देखा था, तब तो बिलकुल डरावनी नही मालूम हुई थी, अब जाने कैसी लगेगी।

हम सब जाननेको बड़े कुतूहल-ग्रस्त हुए कि इसने कैसे उसे देखा, और इसे क्यो डरावनी नही लगी।

डाक्टर विद्यास्वरूपने हँसकर कहा—मौत जिसे देखती है, उसे अपने साथ ले जाती है। इसलिए कि कोई उसे देखकर यहाँ फिर उसका भेद न खोल दे, जिससे उसका सारा डर-वर जाता रहे। तुम तो यहाँके यहाँ मौजूद हो!

प्रमोदने कहा—तो आप चाहते है, मै यहाँ न होता, कही और चला गया होता। आप क्या चाहते है कि मै स्वर्ग-लोकमे चढ़ गया होता, या नरक-लोकमे जा पडा होता। या बताइए आप चौरासी लाख जोनियोमेसे किस जोनीमे मुझे भेजना पसन्द करते?...मै तो अपनेको बिलकुल छोड बैठा था कि मुझे अब कोई ले जाय, अब कोई ले जाय। पर कोई लेने ही नही आया। और पाँच मिनट

इस मौतके चक्करमें पड़े रहनेके बाद मैं चगा हो गया। शक है कि पाँच मिनट भी लगे या न लगे। शायद तीन ही मिनटमें सब काम हो गया हो। उन तीन मिनटोके बाद मैं जैसा भला-चगा था, वैसा ही हो गया। पान मै तभीसे नही खाता हूँ। मौतसे डरनेके बजाय मैं पानसे डर लेना अपने लिए काफी समझता हूँ।

इस तरह बहुत देर तक खूब झिकाकर खूब उकसाकर, जो कहानी उस कम्बख्तने हमे सुनाई, वही मै आज आपको सुनाता हूँ। उसके लिए आप मुझे जिम्मेदार न मानें।

✠

उसने कहा—

पहले आप यह समझ लीजिए कि मै हमेशा ऐसा न था। जब पढता था, तब अच्छा शकील था, जवान था। जाने उम्रके साथ शकल क्यो बुड्ढी होती है। शकलका क्या जाता है, जो वह उसी तरह भरी गुलाबी नही रहती। अबकी शकलसे आप बिल्कुल अन्दाजा नही लगा सकते कि मैं कामदेव था, और मन आस्मानमे रहता था। तब सोचता था, ब्याह नही कराऊँगा। क्या ब्याह-ब्याह! घरके अन्दर ही नोन-तल-लकडीके चक्करमें पडकर घूमते रहो, और एक दिन आए कि थकथकाकर वही ढेर हो जाओ। तब कोई कहता कि तू अडतीस बरसकी उमरमे चार बच्चोका बाप होकर फिर दूसरे ब्याहके लिए मरता फिरेगा, तो मैं उसे थप्पड लगाकर गाली देनेका मजा चखा देता। पर आज मै अचरज नही करता। यहाँ हर बातपर अचरज करते फिरोगे, तो उसीमे मर जाओगे। जर्रा-जर्रा यहाँका अचरजसे भरा पडा है। यहाँ तो अपने काम-से-काम रखना चाहिए। तो मै आपको वह बात सुनाऊँ। बहुत दिनोकी बात हो गई है। मै सेकड ईयरमे था, या थर्ड ईयरमे, अच्छी तरह याद नहीं। उन दिनो मै बडी सुधारकी बाते सोचा करता था। गाँवोमे विद्याकी कितनी हीनता है, और हम लोग जो पढे-लिखे हैं, इस ओर अपना ऋण बिल्कुल नहीं चुकाते हैं—यह सोचकर मुझपर जिस भारी कामका उत्तरदायित्व है, उसका बोझ मै अपने कन्धोपर अनुभव किया करता था। सोचता था—जरा पढ लूँ, कुछ हो जाय, फिर गाँवोकी हालत सुधारनेमे लग जाऊँगा। जीवनकी सफलता है उत्सर्गमे, बने-ठने फिरनेमे कुछ नही है। उन दिनो यह बात मानों

मैंने अपनी रग-रगमें समा ली थी। दधीचि और शिविके कार्य और सनातन आदर्शको मानो खीचकर अपने भीतर रख लिया था, और उसे ऐसा सजग रखता था, कि कभी आँखसे वह ओझल न होने पाए। उसके प्रकाश और उष्णताकी ओरसे कभी चित्त फेरकर रह ही न सकूँ, उस आदर्शको ऐसा प्रज्ज्वलित करके मैंने अपने भीतर समा रक्खा था।

मेरे एक दूरके चाचा थे। वह गाँवके जमीदार थे, वहीं रहते थे। दाँतोके बीचमें जैसे जीभ रहे, वैसे ही मानो अपनी कुशलताके बलपर वह वहाँ रह पाते थे। उनके पिताने कहीं दूर देशसे आकर अपने एक मित्रकी सहायतापर भरोसा रख कर, असपन्न दशामे वहाँ पैर रक्खा था। वह साथ कौन भाग्य लाये थे, कि जहाँ कृपाप्रार्थी और कृपाजीवी होकर पैर-भर रखनेकी उन्होंने जगह पाई थी, वहाँ ही हवेली उठकर खडी हो गई। और इसके साथ ही उनके मित्र, जो वहाँके जमीदार थे, उनका सब कुछ गिरने लग गया। होते-होते, यह मित्र हाल-बेहाल हो गये, और मेरे चाचाके पिता, बिस्वा बिस्वा होते, गाँवके बीसो बिस्वे जमीदार हो चले। पुरानी ब्राह्मणोकी अमलदारी और जमीदारी उखडकर वहाँ बिना किसी उत्पातके एक बनियेकी अमलदारी कायम होने लगी, तो गाँवके कुछ वृद्ध ब्राह्मण पुरुष चेते। उन्होने दल बनाकर—कटिबद्ध होकर इस वैश्य-पुत्रका मुकाबला करनेका निश्चय कर लिया, पर उनकी प्रमत्तावस्थामे युग-धर्मने ब्राह्मण-वृत्तिको तलाक देकर वैश्य-वृत्तिको वरण कर लिया है—यह उनको पता नहीं था। इस गाँवमे ही नही, और बडी-बडी जगह आकर बनियोने सिंहासनपर अपना स्थान बना लिया है, और उन्होंने बडी-बडी अदालते और बडी-बडी चीजे खडी कर दी हैं, इसका भेद भी उन्हे अच्छी तरह नही मालूम था। इस लिए इस अज्ञानता-मे उस ब्राह्मण-दलने जो कुछ किया, अदालत आदि बहुत-सी बाहरी वस्तु (Factors) बीचमे आ जानेके कारण ऐसा कुछ हुआ कि वह उन्हींके मुँहपर आकर पडा। वैश्य-पुत्रके झूठे मामले भी सच्चे होने लगे, और उन्हे अपनी मौरूसी जमीनसे बेदखल होना पडा। इधर उनके सच्चे मामले भी चित्त पड़ने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि ब्राह्मण-दल चुप हो बैठा—खुल कर वैध-रूपसे कुछ कर पानेकी आशा छोड़ बैठा। और अकेला एक वैश्य सर्व-शक्तिमान् होकर वहाँ राज्य करने लगा। सर्व-शक्तिमान् होनेसे मेरा मतलब यह है कि वह सब शक्ति, जो बाहरसे जमा हो सकती थी, उसके पैसेके

नीचे आकर इकट्ठी हो गई। वस्तुतः वही सब पराई शक्ति वैश्यके पैसेसे पुष्ट होकर वहाँ राज्य करती थी। मेरे चाचाके वह पिता तो अपनी निजकी भीतरी शक्तिके अभावमे बेचारे राज्य क्या करते थे, उस राज्यके विस्तारमे कैद होकर अपनी जानके लिए डरते-डरते दिन बिताते थे। जो उन्होने जमा कर पाया था, उसका बहुत-सा भाग उसको कायम रखनेके लिए, और उसके कारण जो डर उन्होने अपने चारो तरफ खडा कर लिया था, उससे अपनेको बचानेके लिए उन्हे खर्च करना पड़ता था। लेकिन जो डर भीतर है, उससे बचनेके लिए लट्ठ लेकर बाहर आदमीको खड़ा कर देनेसे तो काम नही चल सकता। इससे डर तो उनका जाता नही था, हाँ अपनी आयके इस तीन-चौथाई खर्चसे परमुखापेक्षिता उनके हाथ अवश्य आती थी।

लेकिन एक तरहके वह दबग आदमी थे, और चतुर थे। वाणीमे एक प्रकारका प्रभुत्व था। भीतर खटका रहता था, पर बाहरसे ऐसे निश्शक होकर, डॉटकर बोलते थे, कि सबको दबदबा मानना पड़ता था। इस लिए वह तो ठीक तौरसे चालीस बरसकी अवस्थामे मर गये। वह स्थूलकाय थे, भीतर लगे डरके कीड़को दस बरस तक उनके कलवरमेसे खाद्य मिलता रहा। अन्तमे उसने चालीस बरसकी अवस्थामे बिलकुल खोखला करके उन्हे गिरा दिया और इस ससारसे बिदा कर दिया।

पीछे छोड गये दो लड़के।—

'क्या? कहानी कहूँ? भूमिकाकी जरूरत नही है?' मेरे टोकनेपर मेरी ओर मुडकर उसने कहा—'भूमिकाके बिना तो कुछ हो ही नही सकता। वह तो बड़ी जरूरी चीज है, जैसे लगूरको पूँछ उसके लिए बड़ी ज़रूरी है। उसके पूँछ न हो, तो आप समझते हैं, वह कूदता-फॉदता रह सकता है? लगूर तो वह दरअसल पूँछके कारण ही है, नही तो सिर-धड तो हरेकमे होता है। वास्तवमे वह पूँछहीसे लगूर है, बाकी सब व्यर्थकी बात है। यही कहानीकी बात है। भूमिका...'

'मै बाज आया ऐसे टोकनेसे।' मैने कहा—'अच्छा-अच्छा, बाबा, जैसी मर्जी हो तुम्हारी, कहो। नया लेक्चर मत शुरू करो।'..

उसने बिना रुके कहना जारी रक्खा—आप उकताते हैं, तो मै छोड़ देता हूँ। लेकिन फिर आपके पछतानेका मै दोषी नही हूँगा। मै अब बातपर ही आ रहा हूँ। हॉ, तो हमसे कटे हुए हमारे दादा मेरे दो चाचा छोड़ गये।

घबड़ाएँ नहीं। यहाँ एक बात और कहूँगा। जबकी बात कहता हूँ, उससे एक साल पहले तक इन चाचाओंके अस्तित्वका मुझे पता भी नहीं था। बात यह थी कि हमारे दादा दो भाई थे। छोटे भाईकी बहू शादीके दो साल बाद मर गई। अब दूसरे ब्याहके लिए बिरादरीमें लड़की न मिली। हार कर हमारे सगे दादाने छोटे भाईका ब्याह बिरादरी छोड़कर कर दिया। नतीजा यह हुआ कि हमारे परदादा जातसे खारिज हो गये। खैर, वह तो दड-वड देकर और दो एक ज्यौनार देकर फिर जात-बिरादरीमें आ गये। छोटे दादाको काट कर ऐसा अलग कर दिया गया, कि उनसे सम्बन्ध रखना पातक हो गया। बिरादरीके लोग इसपर कड़ी निगाह रखने लगे कि वे लोग आपसमें खान-पान तो एक नही करते। उनकी निगाह बचाकर सम्बन्ध कैसे बनाया रक्खा जा सके? घरसे टूट कर आखिर और कही उन छोटे दादाको अपना बसेरा बना लेनेको लाचार होना पड गया। ऐसी ही हालतमें भटक-भटकाकर वह आगरा जिलेके उस गाँवमें जा पहुँचे थे। वहाँ, जिस तरह वह जमीदार बन बैठे, यह आपको मालूम हो ही गया है।

हम सब बच्चोंको उन चाचा-दादाके अस्तित्वके बारेमें चिन्ता-पूर्वक बिलकुल अँधेरेमें रखा जाता था। इस लिए पिछले साल जब मुझे एकदम पता चला कि हमारे एक चाचा हैं, जो गाँवमें रहते है, जमीदार हैं, तो मुझे अचरजके साथ प्रसन्नता भी हुई। दिल्ली शहरमें रहता था और जाने गाँधी-बाँधी किस-किसकी किताबें पढता था, इसलिए गाँवकी भूख जीमें बड़ी लगी रहती थी। चाचाके गाँवमें रहनेकी बात क्या सामने आ गई, भूखेके सामने परसी-परसाई थाली आ पहुँची। और साथ ही, उसके साथ बड़े प्यारका खाओ-खाओका अनुरोध भी आया।

वह बात यों हुई थी--

हमारे घरोंमें यों तो आना-जाना लगभग नहीं था। चिट्ठी-पत्री भी नही आती जाती थी। फिर भी आत्मीयता थी। ऐसी भी आत्मीयता होती है, जो आने-जाने, चिट्ठी-पत्रीके व्यवहारपर टिक कर ही नही जीती। वह बिना इस सहारेके यों ही सदा हरी रहती है। सो एक दिन उनमेंसे बड़े चाचाकी चिट्ठी आई कि छोटे भाईको दुश्मनोंने लाठीसे बड़ा मारा है, बच जाय तो खैर समझो, नही तो उम्मीद बिलकुल नही है। पिता आदिको तुरत आनेके लिए लिखा था। हम लोगोंको भी साथ बुलाया था। पिताजी खबर

पाते ही फौरन चले गये, और स्त्री-वर्गने रोना आरम्भ किया। मुझे मेरी माता-से यह भी मालूम हो गया कि अभी एक महीना पहले घर आकर जो मुझे खूब बाजारकी सैर-वैर कराने ले गये थे, और जिन्होंने मुझे तरह-तरहकी चीजे खिलाकर और तमाशे दिखाकर मेरी खूब खातिर की थी, वह वही मेरे छोटे चाचा थे, जिनके मारे जानेकी खबर आई है। उनकी याद तो मुझे खूब थी। वही चाचा थे और उनको ही दुश्मनोंने मारा है, यह मालूम करके मेरा जी भर कर फूट चला और मैं एकान्तमे जाकर रोने लगा।

फिर वह मर गये, अच्छे नहीं हो सके। वह कालिजमे एम० ए० मे पढ़ते थे। और हममे अपनमे किसी तरहका अन्तर नही मानते थे।

अगले वर्षकी गर्मीकी छुट्टियोमे मै अपने चाचाके पास गया।

बस, अब मै कहानीपर आ गया हूँ। सुनिए।

※

मैंने जाकर देखा, चाचा उस बडे-से गॉवमे बुरी तरह अकेले रहते हैं। अपने पिताकी तरह खर्च करनेका शौक उन्हे नही है। इसलिए पैसा खर्च कर कुछ मुसाहब-कारिन्दोंको भी वह अपने पास नही जुटा सके हैं। वह एफ० ए० तक अँग्रेजी पढ़े हैं। उसके बलपर अफसरोंमे कुछ दोस्ती बना बैठे हैं। और उस दोस्तीके बूतेपर छाड कर और कर्तव्य परायण होकर अकले-दम अपनी जमीनदारीका काम चलाते हैं।

यहाँ आकर गॉवमे मेरा यह करने और वह करनेका इरादा सब मिट्टी हो गया। यहाँका हाल-चाल ही कुछ टेढा दिखाई दिया। मै अपनी सदिच्छाओंको लेकर लोगोंके पास पहुँचता, तो उनकी जुबान जाने कहाँ चली जाती। यो दिन-भर हुक्केके चारो ओर खाटोपर बैठकर कहाँ-कहाँके कुलावे मिलाया करते होंगे, मेरे जाते ही गुम-सुम हो रहते। मै जानता हूँ, मै कोट-पैटमे रहता था, बिल्कुल उन्हीकी बोलीमे मै बात नही कर सकता था। लेकिन क्या वह समझते हैं, उनमे मिलकर काम करनेके लिए कोई पूरा उनके जैसा होकर ही रहेगा? मैंने भी सोचा, अगर नहीं है गरज उन्हे शिक्षा और रोशनीकी, तो क्यो मै व्यर्थ बहुत-सी चिन्ता मोल लेकर हैरान होता फिरूँ। मै फिर अधिकतर घरमे रहने लगा। कभी अकेले बागोमे, खेतोमें सैर करने सुबह-शाम निकल जाया करता।

चाचाने पैतृक-रूपमें दो चीज़ें खूब प्रचुरतामे पाई थीं—एक द्रव्य और दूसरे अदालत-बाज़ीका शौक। दूसरी वस्तुको उन्होंने खूब बढ़ा-चढ़ाकर उत्कर्षपर पहुँचा लिया; इसलिए पहली वस्तु उतनी प्रचुरतामे सगृहीत न रह सकी। वह द्रव्य पानीकी भॉति द्रवित होकर बह-बहकर अदालतके गड्ढेमें जा गिरने लगा। और उस गड्ढेके पानीमे उसके चारो ओर बसनेवाले जीव, टर्र-टर्र करते हुए, उसे भर-प्यास पी-पीकर, खूब स्थूल होने लगे।

चाचाके उस अदालतबाजीके शौकका मेरे हितमे यह परिणाम हुआ कि मैं अपना दिन-भर चाचीके पास बितानेको खाली पाने लगा। चाची भी मेरे साथ बात-चीत करनेको अपनेको खाली पाने लगी। वह होगी कोई २२-२३ वर्षकी, पढी-लिखी अच्छी थी और समझदार तो...

प्रेमकृष्णने बीचहीमे कहा—अब इतनी देरमे आई कहानी! हॉ, पढ़ी-लिखी थीं, और कैसी थी?

प्रमोदका स्वर भारी हो आया। उसने कहा—कहानी आई नहीं, उनके साथ तो कहानी गई। वह अब नही हैं। मै फिर दुबारा उनके घर पहुँचा, तो शव देखने पहुँचा। मै समयपर पहुँच जाता, तो आशा है, वह मरने न पातीं। वह मुझे बहुत प्यार करती थीं। अपने बेटेको भी इतना न करती होगीं।

प्रेमकृष्ण चुप हो रहे। प्रमोदने रूमाल मुँहपर फेरकर कहना जारी रक्खा—

वह बडी स्नेहशीला थी। सबको वह प्यार करती थीं। मैं उनकी बातोंको सुनकर अघाता न था, क्योंकि उन सबमे उनका स्नेह बहता रहता था। वह अक्सर लाला—देवर—का जिक्र करती थीं। घण्टो हो जाते, लालाकी बातोका पार न आता। उनका अतीत लाला-लाला-लालासे भरा था। एक पग भी उसमे रखती कि लालाकी किसी न किसी बातसे आ टुकरातीं। वह बात फिर जीमे विद्रोह मचाती हुई उमड़ आती। और उसके बाद सिलसिला बाँधकर लालाकी मूर्तिके साथ जुड़ी हुई और-और सब बाते भी, सिनेमा-चित्रोकी भॉति आकर फिरती हुई चली जाती, और उसी प्रकार कतार बाँधकर ऑसू भी ढुलकते चले आते।

मै कुछ वैसे ही एक बारके साक्षात्कारसे, स्वर्गीय छोटे चाचाके प्रति कुछ आर्द्र भाव रखता था। अब वे अत्यन्त कोमल और अत्यन्त दृढ़ हो गये। मैंने उनके चित्रको अपने सामने बिल्कुल प्रत्यक्ष कर लिया। उनके जीवन और मृत्युके प्रत्येक विवरणसे मैंने अपनेको अवगत कर लिया।

इधर चाची सुनाया करती थीं, उधर शामको मौका पाकर चाचाजी वही अपने छोटे भाईकी हत्याका हाल सुनाते थे।

जिन्होंने उनके भाईकी हत्या की, उन सबके नाम वह जानते हैं। इस बारेमें उन्हें बिल्कुल ही सन्देह नही है। प्रमाण असन्दिग्ध हैं। पर लाख कोशिश करनेपर भी उनमें किसीको भी सजा न मिल सकी। गॉव-का-गॉव जो विपक्षमें होकर, एक बन बैठा है, उसके कारण गवाह नही मिल पाते हैं, यह अंधेरखाता है।

जिन-जिनके नाम बताये गए कि इन्होने उस हत्यामें भाग लिया था, वे मेरे अपने-आप दुश्मन बन गए। उनमें डालचदका नाम और उसका भाग प्रमुख था। पहले उसीने लाठी मारी थी, इस बारेमें काफी सबूत चाचा पा चुके हैं। इसमें कोई शक है ही नहीं। उस क्रूरने गिरनेपर भी कई लाठियॉ मारी थीं। वही छोटे चाचाका हत्यारा है। यह भी पता चला था, कि वह अभीतक इनका कर्जदार है और उस सिलसिलेमें जब कभी मिलता है, बड़ी भलमनसाहतसे मिलता है। बड़ा विनीत बन जाता है। व्यवहार-चलनमें बड़ी मिली-भगत रखता है। आये-गये नेग-काजपर चाचाके यहॉ न्यौता तक भेज देता है। बात मीठी करता है, पर भीतर छुरी है। पास एक गॉव है, उसका चार आना मालिक है। बड़ा रोबवाला और रसूखवाला आदमी है, पर एक नम्बरका बदमाश है। कम्बख्त किसी तरह हाथ नही आता।

इसके बाद परसादीलाल, माधारामके भी नाम आते थे। उन्होंने भी अपने मनकी करनेमें कसर नही की है। वे सब लोग मौका पाएँ, तो हमारे घरके हरेक आदमीको मार डाले। जैसे-तैसे बड़े ढबसे, यह तो चाचा बचे रहे हैं, नही तो मौकेकी तलाशमें रहते हे। चूकनेवाले नही है।

इन सब बातोंसे मैं बड़ा सशंक होकर रहता था। यह डालचन्द नामका आदमी कैसा है, कौन है, यह जानना चाहता था, फिर भी नही जानना चाहता था। वह मालूम कर ले, कि मैं इनका रिश्तेदार हूँ, तो मुझपर ही न हाथ साफ कर बैठे। माधोके देने न ऊधोके लेनेमें रहनेवाले, एक हॅसमुख, मिठबोले, निरीह प्राणीको जब यह डालचन्द अपने साथियोंको लेकर लाठियोंसे कुचल कुचलकर मार सका, तो उसके हाथसे और भी कुछ क्यों नही वैसा ही आसानीसे हो सकेगा, यह मेरे मनमें नही बैठता था। मैंने गॉवके पासके बागके किनारेकी जामुनके पेडों और कुछ झाडियोंसे ढकी हुई वह तिमिराच्छन्न जगह

कई बार देखी और उसके साथ मिलान करके हर-हर बार उस डालचन्दकी काली घनी भयकरता भी अपने मनसे साकार बनाकर देख ली।

साथ ही कभी-कभी मै यह सोचता था कि यदि एक ओरसे विश्वास और सचाईके साथ मैत्रीका हाथ बढाया जाय, तो क्या यह दूसरी ओरकी बर्बरता उतनी ही क्रूर बनी रहेगी ? क्या वह कुछ कम कठिन न होगी ? और क्या यह अच्छा न होगा ?

❦

गाँवमे रहते-रहते मुझे पन्द्रह-बीस दिन हो गये। जिन्दगीमे इतने दिनोमे कोई नई बात ही सामने नही आई, जिसमे स्वाद मालूम होता। जैसा आजका दिन, वैसा ही कलका दिन, ठीक बिल्कुल वैसे ही और सब दिन। मन लगानेको और बहलानेको यहॉ अदल-बदल कोई जरा भी नही मिली। एक-सा सपाट जीवन, कोई चढाव उतार नही।—मेरा इससे जी भर गया। जिसे मै भूख समझता था, वह शायद भूख नही होगी। क्योकि गॉवका स्वाद चखने-चखनेमे ही मै तो अघा उठा था, अच्छी तरह चबाकर उसे भीतर डालनेका अवसर भी नही आने दिया। भूख होती, तो बिना इतना किये मिटती ?

खैर, तो मुझे उस समय बड़ा आराम मिला जब चाचाने कहा—चलो, आज एक दावत खाने चलना है।

मैने कहा—कहॉ चलना है ?

उन्होने कहा—पास ही एक गॉव है। दूर नही है। शहरकी दावते देखी है, एक यह भी देखो।

बीस रोजमे एक तो चीज मिली, उसे भी छोड देता ?—मै झटपट बिल्कुल तैयार हो गया।

दावत क्या थी विडम्बना थी। उन गुट्ठल-सी कचौरियोको सामने लाकर कहा जाता—बाबूजी, यह और लीजिए, बड़ी करारी है, गरमागरम, तो जी होता, उठाकर फेक दूँ। सागमे नमक है, तो मिर्च नही, और मसालोका तो नाम न लीजिए। बस दही-बूरा, दही बूरा। ज्यौनार क्या थी, दही-बूरा था। वही सपोट जाओ। और सचमुच लोग ऐसे सपट्टे मार रहे थे, कि सुड़ड़सपकी आवाज दूरतक सुनाई पड़े।

एकने कहा—बाबूजीको दही देना, दही ।

जिससे कहा गया, वह मेरे पास आया ही था, कि चिल्लाया—परसादी, ओ परसादी, वह बूरा उठाता ला ।

मैं हठात् इस परसादी नामके आदमीको देखनेमें लग गया ।

इधर दहीवाले आदमीने ढेर-सा दही पत्तलपर बिखेर दिया ।

वह परसादी बूरा लेकर मेरी तरफ़ आया । काला चेहरा है, आँखें सुरुचि-पूर्ण नहीं हैं । बाल, अभी कटी दूबसे हैं, मूछें घनी-काली हैं ।

मैंने कहा—मै बूरा नही लूँगा ।

परसादीने पस भरकर बूरा पत्तल पर डाल देनेका इरादा करते हुए कहा—बाबूजी, थोड़ा ले लीजिए ।

मैने पत्तलको दोनो बाँहोसे ढँककर कहा—मै नही लूँगा, नही लूँगा ।

'बाबूजी थोड़ा तो लेना ही होगा'—यह कहकर वह पस-भर बूरा उसने वहीं छोड़ दिया । उसमेंसे कुछ मेरे हाथोंपर आ रहा, कुछ जगह पाकर पत्तल-में जा गिरा और वह काला मुँह लेकर परसादी इसपर हँसने लगा ।

इस परसादी नामक कुलक्षण व्यक्तिको क्यो एकाएक मेरे आतिथ्यके प्रति साग्रह हो उठना चाहिए, यह उस समय मेरे लिये बड़ी दुर्भावनाओंका विषय बन गया । कुछ देर बाद मैंने समझा कि मैने इसका भेद समझ लिया ।

इस सफेद पिरामिडके भीतर दबे हुए दही-सागरसे, इतने लोगोंके बीचमें बैठकर, मैं क्या करके अपना पिंड छुड़ाऊँ । इसको सोचकर कुछ निश्चय करूँ कि एक नाम पिघले-सीसेकी तरह कानमें सनसनाता चला गया । किसीने कहा—चाचा डाल-चद, बाबूजीको दही दिया है, एक कचौरी तो और दे जाना ।

मैने एकदम आँख ऊपर उठाकर देखा । डालचद ताज़ा कचौरियोंका डल्ला लेकर हँसता हुआ मेरे सामने आया । गोरा-भरा चहरा था, मजबूत हाथ-पाँव थे । बिल्कुल गँवार नही मालूम होता था । आँखे हँस रही थी, जाने क्यो हँस रही थी ।

आकर बोला—लो, बाबूजी, एक कचौरी तो मेरे हाथकी भी लो ।

हाय राम, यह क्या हो रहा है ! मै कुछ बोल नही सका, हाथ पत्तलके ऊपर करके फैला दिये ।

'बाबूजी, यह बात नही होगी'—उसने कहा—'एक तो लेनी ही पड़ेगी ।'

और यह कहकर बड़ी तरकीबसे एक कचौरी उसने मेरी पत्तलके बीचों-बीच डाल ही दी।

अब मै उस कचौरीको लेकर क्या करूँ? उसे उसी डालचदके, बेहयाईसे हँसते, चेहरेपर फेककर मार सकूँ, तो ठीक हो जाय, लेकिन इतने बड़े जनसमुदायसे घिरकर—जो अब बड़े सम्मान और आग्रहके साथ मुझ शहरी सभ्यको ही देख रहा था—यह मुझसे किसी तरह भी नही बन सका। और मै चुपचाप उस कचौरीको एक हाथसे चूर-चूर करके, उसकी एकाध किनकीको बूरेके ढेरसे छुआकर, मुँह चला-चलाकर खानेका दिखावा करने लगा।

जब पगत उठी, तो इस भारी सकटसे मै छूटा। राम-राम करके, झटपट हाथ-वाथ धोकर, बाहर निकलकर, कब घर भाग जानेका मौका मिलेगा, यह सोच रहा था। लेकिन बाहर आता हूँ, तो देखता हूँ, द्वार रोके पानोके थाल लिये लोगोकी एक भीड़ खडी है।

मै पास आया, तो सुना, किसीने कहा—चाचा डालचद, बाबूजीको पान दो।

मुड़कर देखा, तो कहनेवाला है—परसादी।

डालचदने एक बडा-सा बीडा देखकर, थालीमेसे उठाकर, हँसते हुए, मेरे सामने कर दिया।

झपटकर उसे लेते हुए मै दरवाजेसे बाहर हो गया।

पान फेक देनेकी कही सुविधा मुझे नही मिल रही थी, इसलिए उपयुक्त अवसर और स्थानकी प्रतीक्षामे मै पानके बीडेको हाथमे ही लिये था, कि चाचाने कहा—जरा रूमाल देना।

मै बाये हाथसे बायी तरफकी जेब टटोलने लगा। लेकिन रूमाल था कोटके दायी तरफके अदरके जेबमे।

चाचाने कहा—निकाला?

बाये हाथसे उस जेबमेसे रूमाल निकालनेमे कठिनता हो रही थी। मैने झट उस हाथको खीचकर, उसमे पान लेकर, दाहिना हाथ जेबकी तरफ बढ़ाना चाहा।

इसी समय—'अरे, अभी तक रूमाल नही निकला!'—कहते हुए उन्होंने मेरी ओर मुड़कर मेरी सकटापन्न अवस्थाको देख लिया। पूछा—'अरे, हाथमे यह क्या है, पान है! रख क्यो छोड़ा है, खा क्यो नही लेता?'

मैने कहा—मैं खाता नही हूँ पान।

'ऐं, खाता नहीं है !'—उन्होने कहा—'खा-खूकर खतम कर। क्या तमाशा बना छोड़ा है।'—यह कहकर जैसे वह मेरे हाथसे लेकर पान मेरे मुँहमे देनेको हो गये।

तब मैने स्वय उसे मुँहमे ले लिया। चबाना शुरू करना था, कि झट थूक डालनेके लिए मुझे कहीं दौड़कर अलग जाना पड़ गया। हलक तकसे सारा थूक मैंने बड़े जोरके साथ खखार-खखार कर निकाल दिया और पासके पेड़की छाँहमे पड़ी एक चारपाईपर लेट गया।

ॐ

सिर चकरा रहा था। बदनमे सनसनाहट-सी फैल रही थी। जीमे उब-काई आ रही थी और धरती-आस्मान झूलने लग गया था। सब कुछ जैसे मुझे बीचमे करके मेरे चारो ओर चकराने लगा।

अब जैसे सब कुछ ठीक-ठीक समझमे आने लगा। सिरमे रुई धुनी जा रही थी, फिर भी विचारोमे अद्भुत सगति थी। पागल हो जाने-जैसी कोई भी बात नही थी। हरेक बातका कार्य-कारण और परिणाम-सम्बन्ध ठीक मिला करके बैठा सकता था।

सशय नही रहा, कि कूचका वक्त अब आया, अब आया। महायात्राके लिए प्रस्थान करनेसे पहले जहाँ बैठे हैं, वहाँसे कैसे विदा लेनी चाहिए, यह प्रश्न अपनी स्पष्टतामे सामने आ गया। मै उसीको निश्चित करनेमे लगा और इधर-उधरकी बात कोई भी मुझे तग करने नही आई। घबड़ाहट कुछ नही थी, जल्दी बिल्कुल नही थी। जहर है, क्या है. सभव हो सकता है, कि भूलसे कही कुछ कम ज़हरीला रह गया हो, उपायकी सम्भावना हो सकती है, कम-से-कम वैसी चेष्टा आवश्यक है—आदि-आदि विचार मुझे अस्थिर नही कर पाये। जाना है, सो किस तरह खूबीके साथ जाया जाय, यही एक विचार मुझे वशमे किये था। मेरे चुपचाप उठ जानेकी बात क्रमश. माता-पिता, बहन-भाईको मालूम हो ही जायगी, इसकी चिन्ता करनेकी आवश्यकता नही है। उनके जीमे एक कसकता हुआ अभाव रह जायगा—इसका हलका-सा आभास हृदयमे क्षणभरको उदित हुआ, किन्तु फिर वह विलापका रूप धारण करेगा, कैसा दारुण-विलाप मचेगा—इन सब सम्भावनाओपर जाकर फिरनेका अवकाश मेरे विचारको नही मिला। बस, इसी एक प्रश्नको केन्द्र बनाकर मेरी

समग्र मानवीय चेतनता उसके चारों ओर, सुलझानेके यत्नमे परिक्रमा करती हुई घूमने लगी, कि किस प्रकार अपनी बिदाको सुन्दर बनाकर यहाँसे अपनेको मै मुक्त करूँ ।

सोचा—क्या यह नहीं हो सकता, कि यह सब आपसी वैर-भावको मेरी लाशके ऊपर मिलकर आँखोकी राह बहा दे और परमात्माके दो सगे पुत्रोकी भाँति हिल-मिलकर रहे । मुझ मरते हुएकी तरफ देखकर क्या यह लोग मेरी अन्तिम अभिलाषाको मान लेनेके लिए विवश नहीं हो जायँगे ? मरते मरते मैं अगर एकके हाथोको दूसरेके हाथोमे देकर दोनोके आँसू अपने ऊपर ढलवा सका, तो मै फिर बडी सुख-शान्तिके साथ आँख मीच लूँगा । मृत्यु फिर मेरे लिए बड़ी सुन्दर हो जायगी । समझूँगा, जीवन इस मौतमे आकर सार्थक हो गया । उस सुखद दृश्यको उत्पन्न करके फिर उसे इस धरतीपर अपने पीछे चिरन्तन रूपमे जीवित रहनेके लिए आँख मीचकर, चुपचाप चल देनेके लिए मुझे क्या दर्द शेष रह जायगा । मै फिर मानो अमर होकर अपने सृष्ट किये हुए इसी स्वर्ग-दृश्यके लोकमे रहनेके लिए चला जाऊँगा ।

मनकी वैसी विमल शान्ति और स्थिरता (Equipoise) उसके पहले और उसके बाद मैने फिर कभी अनुभव नही की ।

लेकिन बदन मानो ऐठ रहा था । ऐसी कुछ मिचलाहट जीमे मच रही थी, कि जैसे अँतड़ियाँ भीतरसे उबक कर, बाहर होकर, एक-एक करके बिखर जाना चाहती है ।

एक आदमी उधरसे जा रहा था । सहसा मुझे वहाँ पडा देखकर मेरे पास आया और विस्मित प्रश्नवाचक दृष्टिसे मेरी ओर देखने लगा । बहुत साहस करके उसने पूछा—क्या हुआ ?

मैने जैसे-तैसे, सकेतसे कुछ बोलकर उसे यह समझा दिया कि चाचाको तुरन्त यहाँ आना चाहिए ।

लगभग तुरन्त चाचा वहाँ आ गये । पूछने लगे—क्यों क्या हुआ ?

उस समय मेरे दिलमे एक साथ कैसी विनीत याचना और कैसे दृढ़ विश्वासके भावका उदय हो आया था, वह सब कुछ मेरी आँखोमे आ रहा होगा । मैने वाणीको बिल्कुल स्थिर बनानेकी चेष्टा करते हुए कहा—हुआ कुछ नहीं है । जरा जी मिचलाता है ।—फिर लेटे-लेटे, बराबरकी खाटपर बैठे और हैरान होकर मुझे देखते हुए चाचाके चेहरेपर अपनी उस समयकी आँखोको

भरपूर जमा कर और उनके दोनो हाथ अपने हाथोमे लेकर मै उनको देखता रह गया।

चाचाने घबडाकर कहा—ऐसा क्या हुआ है ?

मै फिर ऑख नीची करके रोने लगा।

चाचाने अपने हाथोको उसी तरह मेरे हाथोमे रहने दिया और वह मेरी ओर देखने लगे।

मै उन्हे किस तरहसे कहूँ, कि मै यहाँ कुछ मिनटोके लिए और हूँ। और उन मिनटोमे वह जल्दी करके इस भतीजेको प्यार कर ले और डालचद आदिको बुला दे क्योकि उनका भतीजा इन मिनटोमे यहाँकी धरतीको स्वर्ग बनाकर चल देना चाहता है। ज्यादा समय उसके पास नही है।

मै उनके दोनो हाथोको मीज-मीजकर कभी अपने गालके नीचे करके और कभी ऑखोके पास कर कर खूब रोने लगा।

उन्होने कहा—अरे, बात क्या है, क्या बात है ? कुछ कह भी।

मै कह क्या पाता ? सिसक-सिसककर रह जाता।

कुछ देर बाद चाचाने मानो अपने आपसे कहा—ठहरो, डालचदसे जाकर कहता हूँ। अभी साइकिलपर चढकर शहरसे डाक्टरको बुलाकर लाए। लड़का रो क्यो रहा है, जाने क्या हो गया है।

फिर वह तेजीसे उठकर अदरको चले गये।

हाय ! चाचा, तुम डालचदको कही मत भेजो और डाक्टरको मत बुलाओ। कुछ फायदा नही है। और तुम सब लोग यहाँ आओ। मेरी एक बात सुनो। मै बहुत बात नही करूँगा, बस, वह मान लेना। मै सुखी हो जाऊँगा और तुम्हारा अहसान मानूँगा। और चला जाऊँगा।

चाचाके लौटनेपर यह सब बाते उन्हे समझा दूँगा। और बड़ी अच्छी बात होगी कि डालचद भी उनके साथ होगे। वह मेरी बात अवश्य मान लेगे। मरते हुएके जीकी एक बात नही मानेगे ? वह जरूर मान लेगे। बस।

इतना कहकर प्रमोद चुप हो रहा। हम सब भी चुप बैठे थे। चुप बैठे-बैठे एक-दो-तीन मिनट हो गये। चौथा बीतने लग गया। यह प्रमोद क्यो यो चुप होकर कुर्सीपर आ बैठा है। फिर क्या हुआ, कहता क्यो नही। हारकर इस सन्नाटेको तोड़कर प्रेमकृष्णने कहा—फिर ?

प्रमोदने कहा—फिर क्या, बस।

प्रेमकृष्णने झल्लाकर कहा—अरे तो फिर क्या हुआ? लौटकर आये, डाक्टर आये, फिर कैसे क्या हुआ?

प्रमोदने हँसकर कहा—बस, कहानी खतम हो गई। होना-जाना क्या था।

प्रेमकृष्णने और भी खीझकर कहा—तो तुम यहाँ कैसे बैठे हो? ठीक बताओ, क्या हुआ, तुम कैसे बच गये?

प्रमोदने कहा—बच कहाँ गया, मर गया। मरकर फिर जी गया और अब यहाँ आ गया हूँ।

प्रेमकृष्णने कहा—क्या फजूल बकते हो जी। ठीक बताओ, फिर क्या हुआ, क्या नही। फिर तुम बच कैसे गये। बडा होशियार डाक्टर होगा, या उस डालचदको जहर देना नही आया होगा।

प्रमोदने कुछ और झिकाकर कहा—अच्छा, बता ही दूँ?

सबने बताये जानेकी इच्छा प्रकट की।

प्रमोदने कहा—वहाँसे बच गया, तो यहाँ तो आप लोग मुझे नही मारने लगेगे?

हम सब लोग हँस पड़े। पर हँसीमे उसने बात उड़ नही जाने दी। उसने सबसे वचन लेकर ही छोडा। कहा—एक बार मौतमे पडकर अब बार बार मरनेकी इच्छा नही रह गई है। इसलिए खूब सोच-समझकर चलना चाहता हूँ।

सबसे वादे लेकर और सब कुछ पक्का करके उसने कहा—चाचा डालचद वगैरह कई आदमियोके साथ लौटकर आये। उन्होने कहा—उठो, चलो। पानमे जरा-सी तम्बाकू पड गई थी। घर चलने-भरमे तबीयत ठीक हो जायगी।

मैं उठकर चल दिया।

प्रमोदके बजाय हम सबने अपने सामनेकी मेजको खूब जोर-जोरसे पीटना शुरू कर दिया।

जनता

बाबा भगीरथजी विचित्र पुरुष हैं। मनमे आया, वैसे ही रहते हैं। अपनेसे बाहर भी कुछ है, जिसका असर व्यक्तिपर होना चाहिए, इसकी सूचना मानो उन्हे प्राप्त नही है। समाज अगर कुछ है, तो ठीक है, हो. सरकार अगर कुछ है, तो अवश्य हो, किंतु इस कारण उनके मनको जैसा अच्छा लगेगा, वैसे वह क्यो न रहेंगे। हॉ, उनसे किसीको कष्ट न हो, इसका पता वह रक्खेंगे। यही क्यो, उनसे भरसक सबको आराम पहुँचे, इसका भी खयाल वह रक्खेंगे। और, बस। इसके आगे उनके नजदीक दुनिया जैसी है, वैसी ही नही है।

मै कहता हूँ, यह ठीक नही है। दुनिया है, और इसमे निभकर चलना पहली बात है। इससे बाहर जाकर तो गुजारा नही। इससे अगर विद्रोह भी करना हो, तो उससे मिलकर ही हो सकेगा। दुनियासे अजीब, अलग, रूठे हुए बननेसे काम नही चलेगा। कुछ लोग है, जो डाढी रखते हैं, और कुछ लोग है, जो डाढ़ी नही रखते। अपना तरीका तरीका है। जो डाढी रखते हैं, वे रखनेके तरीकेसे रखते हैं। उन्हे मालूम होता है कि यह डाढी है, कोई झाड़ी नही है, जिसके न कुछ अर्थ हैं, न प्रयोजन। और, डाढी नही रखते, तो शेव किया कीजिए। और, कपड़ोमे पतलून है, पाजामा है, धोती है, कुर्ता, कमीज, कोट, वास्कट हैं। अब, न डाढ़ी रखना, न न रखना, और कपड़ोमे ऊपर गिनाई सब चीजोंको छोड़कर कोई अपनी ही ईजाद करके पहनना, और सोलहमे पद्रह आने उघारे बदन ही रहना—मै कहता हूँ, यह भी कुछ समझदारी है? लेकिन बाबा भगीरथपर किसीका बस चले, तो बाबा भगीरथ कैसे।

मैने एक दिन कहा—देखिए बाबाजी! आदमी जो समझता है, ठीक है, उसे फिर उसके साथ कसकर देखना होगा, जिसे दुनिया समझती है, ठीक है।

उनके समन्वयसे जो मिले, वही तो व्यक्तिका मार्ग है। क्योंकि आदमी अपने-मे पूरा कहाँ है ? पूर्ण होनेके लिए उसे समाजकी अपेक्षा नहीं है क्या ?

बात यह है कि मैं अपने मनके ऊपरसे बाबाजीको टालना चाहता हूँ। मन उनपर जाकर कुछ सुख नहीं पाता। उसमें कुछ विद्रोह, एक बेचैनी-सी होती है। बाबाको देखकर जीमें होता है कि तेरी प्रतिष्ठा, तेरी दुनियादारी, तेरी कामयाबी जूठी है, झूठ है, छल है। चाहता हूँ, बाबापर दया कर डालूँ, और इस तरह अपने बडप्पनको स्थिर रक्खूँ, सँभाले रक्खूँ। पर यह होते होता नहीं। बाबाको सामने पाकर बड़प्पन हठात् मुझपरसे खिसकने लगता है, उतरकर जैसे मुझे छोड़ जानेको उतारू हो जाता है। तब उस बाबा और उसकी सारी फिलासफीपर मुझे बड़ा गुस्सा आता है। लेकिन कभी वह साढे तीन सौ मासिक पाता था, मेरा सीनियर था, गण्य-मान्य था। और, आज है कि मै चार सौ पाता हूँ, और उसे ठौरका ठिकाना नही है, और मित्रोका कृपानुजीवी ही, समझिए, बनकर उसे रहना होता है। मै उसे पागल कह सकूँ, बैरागी कह सकूँ, साधु-सन्यासी कह सकूँ, तो मुझे चैन पड़ जाय। क्योंकि समाजकी रीति-नीतिमे इन लोगोंके लिए जगह है, समाज इन्हे पहचान सकती है। कहा, पागल है, और चलो छुट्टी हुई। इस बाबासे, लेकिन इस तरहकी छुट्टी मुझे किसी भाँति नही मिलती। और, वह सदा इतना खुश और इतना पक्का और इतना ताजा रहता है कि मन-मनमे मै कितना ही झुझुलाऊँ, उसके प्रति एक प्रकारकी श्रद्धासे भी मुझसे बचा नही जाता।

बाबाने कहा—देखो भाई, समाजसे मै इनकार नही करता। जिसको मै सही कहूँ, मन हो, तो क्यों न समाज उसे गलत माने। स्वतत्रता चाहने-वाला मै समाजको तो और भी स्वतन्त्रता दूँगा। मै तो कहता हूँ, जिसको मै अपने लिए सही समझूँ, उसीको समाज मेरे लिए निषिद्ध ठहरा सकता है। मैं यदि अपने समर्थनमे उसका विरोध करूँ, तो उसका धर्म है कि अपने समर्थन-मे वह मेरा विरोध करे। यहाँ तक कि मै चुप हो जाऊँ, नहीं तो मिट जाऊँ। समाजने ईसाको सूली चढाकर समाज-धर्मकी प्रतिष्ठा ही की। किन्तु ईसाको यदि ईसा बनना था, तो सूलीपर भी चढ़ना था। समाजको समाज रहनेके लिए, उसी तरह, ईसाको, जो ईसा बने बिना मानता न था, सूली दिये बिना न रहना था। सूली चढ़नेवाला ईसा समाजके इस दायित्वको जानता था।

इसीसे अपने कंधो सलीव लेकर वह वधस्थल गया। कोई अड़चन उसने वधिकोंके काममे नहीं उपस्थित की। अब, मै यह कहता हूँ कि अपने ऊपर समाजको पूर्ण स्वतन्त्रता देकर क्या अपनी नियतिको अपने ही रूपमे सपन्न करनेका अधिकार ईसाका नही हो जाता? समाजके हाथों जब वह खुशीसे सूली चढ़नेको उद्यत है, तब ईसा ईसा बने बिना किस भाँति रह सकता है? इसलिए व्यक्ति अपने लिए, समाजकी ओर नही भी देख सकता है, बल्कि नही देखना चाहिए, अगर उसमे समाजके दडसे बचनेकी इच्छा नही है, और वह समाजका हितैषी ही बना रहकर उसके दण्डका स्वागत कर सकता है। अगर दुनिया मुझे पागल कहेगी तब भी मैं उसका बुरा न सोचूँगा, मुझे पीडा देगी, तब भी उसकी कल्याण-कामना करूँगा—यह माननेके बाद क्या अपने मुताबिक चलनेका हक मेरा न मानोगे?

देखा आपने! यह बाबा भगीरथ है। इस बाबा भगीरथको, आप समझते हैं, कभी जीवनमे आराम मिल सकेगा, सफलता मिल सकेगी? क्या नही समझते कि उमर-भर उसे मोहताज और आवारा ही रहना होगा?

और आइए, मैं आपको सुनाऊँ, बाबाके बाबापनका एक रोज क्या गुल खिला। किस्मत समझिए कि बाबा मौतसे बाल-बाल बच गया, नही तो विधनाकी ओरसे तो तैयारीमे कमी रखी गई न थी।

और आप जानते है, क्या? उसके बाद भी बाबाको होश नहीं हुआ है, और वह वही है।

※

मास्टर दीनानाथजीकी ग्यारह बरसकी लड़की सुखदाको पाँच छह रोजसे उनके घर आये बाबा भगीरथजीसे एक भेदकी खबर मिली है, जिसने उसके चित्तको विभ्रममे डाल दिया है। बाबाने उसे बताया है कि रामजीने उसे एक जामनके पेड़के नीचे डाल दिया था। वहाँ वह की-की-की खूब रो रही थी। दया करके बाबाने वहाँसे उसे उठा लिया, और यहाँ आकर फिर उसकी माँको पालने को दे दिया। समझी कि नही? चाहे तो अपनी माँसे पूछ ले कि तू कहाँसे आई थी। बाबा ही दे गया था कि नही।

लड़कीने कहा—'नही-नही-नही। झूठ, बिलकुल झूठ।"

और तभी वह सोचने लगी कि जामनके पेड़तले पडी वह नन्ही-सी कैसी लगती होगी।

भगीरथजीने कहा—" इसमे क्या बात है। जाकर अपनी मॉसे न पूछ आओ।"

मॉसे पूछा, तो उसने भी बता दिया कि हॉ, ठीक तो है, पेडके नीचे ही तो भगीरथजीने उसे पाया था।

लड़कीने ऑख फाडकर पूछा—' अच्छा!"

मॉने पूछा—" तो तू बाबाजीके सग जायगी?"

बेटीने कहा—" हॉ, बाबाजीके सग जाऊँगी। तू तो मुझे मारती है।"

इस तरह, और जाने किस-किस तरह, बालकोको रिझा और हिला लेनेमे भगीरथजी-सा दूसरा आदमी न होगा। सुखदा बाबूजी और मॉको भूलकर सदा बाबाजीके ही सिर चढी रहती है। या उसके सिर कहा ' बाबाजी ' चढे रहते है।

मास्टर दीनानाथजीसे उन्होने कहा—देखो मास्टरजी, यह इस्कूल-बिस्कूल गलत बात है। जब तक हम रहे, लडकी किसी स्कूलमे पढने नही जायगी। और, सबसे बडी शिक्षा खुली हवामे घुमाना है। आप छाडिए सुखदा-को मेरे ऊपर। अभी तो एक महीने मै यहॉ हूँ।

सो, लड़की अब स्कूल नही जाती, सुबह-दोपहर-शाम जाने कहॉ-कहॉ बाबाजीके साथ नई-नई चीजे देखने जाती है। एक-दो घटे बाबाजी ही उसे पढा भी देते हैं।

जाडोके दिन थे। दस बजे होगे। मीठी-मीठी धूप फैली थी। और निक-ल्सन बागमे घासपर बैठे बाबा भगीरथजी और सुखदाजी बाते कर रहे थे। और, उस बागके बाहर भी दो-तीन आदमी घूम रहे थे।

यहॉ एक बात खयाल रखनी चाहिए। सुखदा सुदर है, गोरी है, देखनेसे ही अच्छे घरकी मालूम होती है। अच्छी, साफ साडी है, पैरोमे बढिया चप्पल। भगीरथजी नगे पैर हैं, जिनमे बिवाइयॉ फट रही है, उघार बदन, बस एक मटमैले रगका जॉघिया है। छह महीनेकी डाढी है। रग धूपसे पका तॉबिया।

सुखदाने पूछा—बाबाजी, यह चौराहोपर आदमी क्यो खड़े रहते हैं?

" अच्छा, बताओ, इस चौराहेपर जो खड़ा था, कौन था?"

लडकीने बताया—सिपाही ।

भगीरथजीने कहा—हॉ, सिपाही है । जानती हो, क्यो रहता है ? आते जाते तॉगे-मोटरोको वह रास्ता बताता है, नही तो वे लड़ जायँ । इनका नाम पुलिस है । ये पुलिसके सिपाही हैं । इनसे डरना नहीं चाहिए । समझी ? ये लोगोको मदद देनेके लिए हैं । तुम डरती तो नहीं ?

" नही । "

" हॉ, डरना कभी नही चाहिए । अच्छा, धोती यहीं उतार जाओ । जॉंघिया तो है न ? जाओ, जितनी तरहकी कल घास बताई थी ढूँढ़कर उनके नमूने लाओ तो । "

लडकी चली गई । इतनेमे एक आदमी आया । आकर पूछने लगा—आप कहॉ रहते हैं ?

" हम कहॉ रहते है ? यही रहते है । "

" यहीं क्या, देहलीमे ? किस महल्लेमे ? "

बाबाजीने कहा—क्यो, तुमको मेरे मुहल्लेसे खास काम है ?

आदमीने कहा—हिन्दू हो या मुसलमान ?

बाबाजीको यह बड़ा विचित्र लगा । कहा—भाई, हम जो हैं, है । जहॉ रहते है, रहते है । तुम जाओ अपना काम देखो ।

इतनेमे लड़की आ गई, और एक अजनबीको देखकर मनमारी वहॉ बैठ गई । बाबाजीने पूछा—क्यो, बेटी ?

आदमीने पूछा—यह लडकी कौन है ?

बाबाजीको इस आदमीका यह सवाल बहुत बुरा मालूम हुआ । कहा—तुमको इससे मतलब ? जाओ, अपना रास्ता देखो ।

आदमी चला गया, और लड़कीने घास दिखानी शुरू की ।

इतनेमे एक आदमी और आया, बोला—आप कितनी देर तक यहॉ बैठेंगे ?

हमारी तबीयत ।

" मै पूछता हूँ, घटे, दो घटे, आखिर कितनी देरतक आप यहॉ है ?

" तुम सुनते नहीं हो । " बाबाजीने कहा—हमारी तबीयत है, जबतक हम यहॉ हैं ।

आदमीने कहा—अच्छी बात है। और वह चला गया।

बाबाजीके मनपर किसी तरहकी कोई जूँ नहीं रेंगी। और, देखा गया, बगीचेके बाहर टहलते हुए आदमियोंकी संख्या दो-तीनसे छह-सात हो गई है। उसमें एक बावर्दी पुलिसका सिपाही भी है।

लड़कीका उत्साह अकारण मंद पड़ने लगा, और उसका जी बैठने लगा।

बाबाजीने कहा—देखो सुकी, मैंने छह तरहकी घास तुम्हें बताई थी, और छहों इस बगीचेमें हैं। तुम लाई चार ही।

लड़कीने कहा—बाबाजी, घर चलो।

"क्यों ?" बाबाजीकी समझमें जैसे यह बात बिल्कुल नहीं आई।

"नहीं, हम तो घर चलेंगे।"

"अच्छी बात है, चलो।"

दोनों उठकर चले।

बगीचेसे बाहर निकले, तो वे छहों-सातों आदमी भी पीछे-पीछे चले। अब बाबाजीने जाना कि दालमें कुछ काला है। पर उन्हें आशंकासे अधिक कुतूहल हुआ, और वे दोनों चुपचाप चलते रहे।

फ़र्लांग भर गये होंगे कि पचास-साठ आदमी हो गये। एक बावर्दी घुड़सवार भी साथ दिखाई देने लगा। सब अपने-अपने अनुमानोंसे भरे थे। और पुलिसके लिए शीघ्र एक यह काम भी हो गया कि जनताके भरे सदस्योंको मर्यादासे आगे बढ़नेसे थामे रहे।

"जरूर मुसलमान गुंडा है। बाबा बनकर लड़कियाँ भगाता है, बदमाश!"

"मुसलमान नहीं है। है हिन्दू, पर गुंडा है।"

"लड़की किसकी है ?"

"देखते रहो, कहाँ जाता है ?"

"देखना, निकल न जाय।"

"बदमाश आज पकड़ा गया।"

पुलिसने कहा—पीछे रहो, पीछे रहो।

खुशीसे भरी जनता घुड़सवार पुलिसमैनके पीछे बाढ़-सी बढ़ती और उमड़ती हुई चलने लगी।

"क्या है ? क्या है ?"

"देखते नहीं, सामने क्या है ?"

"ओह, यह ! पाजी—"

कृतार्थ होकर अत्यंत उत्साहके साथ पूछनेवाला भी भीड़के साथ हो लिया।

"अपना नाम इसने मौलाबख्श बताया है, पर असली जैनुद्दीन यही है।"

"जैनुद्दीन !"

"सौ-सौके छह नोट इसके जॉघिएकी जेबमें मिले हैं।"

"अब ले जाकर लड़की बेच देता। अजी इनका गिरोह है, गिरोह।"

"मुसलमान क्यों बढ रहे हैं ? इसीसे तो।"

"कौन कहता है, लड़की मुसलमान-खानदानकी है, और यह शख्स हिन्दू गुंडा है ?"

"झूठ। मुसलमान है।"

"हरगिज नहीं। काफिर है।"

"वह जिंदा क्यों है ?"

"तुम झूठे हो।"

"तुम नालायक हो।"

"कोई मर्द नहीं है, जो यहीं उसे करनीका मजा चखाए।"

पुलिस—"पीछे रहो, पीछे रहो।"

भीड़ बढती ही चली गई। हिंदू भी थे, मुसलमान भी। इसमें दो रायें न थीं कि यह शख्स जिंदा न बचने पाए। और, सबको यह बुरा मालूम हो रहा था कि यह पुलिस कौन चीज है, जो सामने आकर उनके और उस बदमाशके बीच, यानी इंसाफ और जुर्मके बीच, हायल है।

रेलका पुल आते-आते तीन-चार हजार आदमी हो गये होंगे। जैसे समंदरके बीचमें बूँद बूँद नहीं होती, वैसे ही भीड़में आदमी आदमी नहीं रहता। भीड़का अपनेमें एक अस्तित्व है, एक व्यक्तित्व है। वह अतर्क्य है।

"सीधे चलो, सीधे चलो !"

"कोतवाली ! कोतवाली !"

लड़की सहमी-सहमी चल रही थी। उसने जोरसे भगीरथजीका हाथ पकड़ रक्खा था। उसकी समझमें न आता था, यह क्या है। एक निश्शब्द त्रास उसके

मनपर छा रहा था, और बाबाजीको भी बोध हो रहा था कि परिस्थिति साधारण नही रह गई है। लोगोकी भीरुता और मूर्खतापर उन्हे बड़ी झुँझलाहट हो रही थी।

घुड़सवारने आगे बढ़कर बाबासे पूछा—तुम कहाँ जा रहे हो ?

"आप देख तो रहे है, मै जहाँ जा रहा हूँ।"

"किस मुहल्लेमे रहते हो ?"

"जिसमे रहता हूँ, वही तो जा रहा हूँ।"

"मै घर जाऊँगी बाबाजी, घर।"

पुलके आगे उनका रास्ता मुडता था। मुड़ने लगे, तभी घुडसवारने उनके सामने आकर कहा—सीधे चलना होगा।

यह बाबाके लिए अप्रत्याशित था। पूछा—"कहाँ ?"

"कोतवाली।"

"क्यो ?"

"मै कहता हूँ इसलिए।"

'आप कहते हैं, इसलिए ? या भीड कहती है, इसलिए ?

सवारने उत्तर न दिया। वह लौट गया, और उसने समझ लिया, यह आदमी वैसा नही है जैसा ख्याल है।

दोनो चुपचाप सीधे कोतवालीकी तरफ बढ चले।

जुलूस पीछे पीछे आ रहा था। बात अबतक दूर-दूर फैल गई थी। अब चौकमे भी जुलूसको गुजरना हुआ। पाँचसे दस, पद्रह, बीस हजार तक भीड़ पहुँच गई। टेलीफोनसे पुलिसके कई दस्ते आ गये थे। पर भीड़को शान्त रखना मुश्किल हो रहा था। शोर बेहद था, और उसमे अब पक्ष भी पड़ने लगे थे। मुसलिम-पक्ष और हिन्दू-पक्ष।

परिस्थिति भीषण होती जा रही थी, और लड़कीके कारण बाबाजीको चिन्ता होने लगी थी। पर मालूम होता था. बात अब वशसे बाहर हो गई है। क्या कोई मेरी बात सुनने योग्य इस जनस्थितिमें होगा ?

"अरे यह लड़की तो दीनानाथकी है!"

"दीनानाथ! हेडमास्टर दीनानाथ ?"

"ओह, दीनानाथकी ?"

चुटकी बजाते बात फैल गई कि दीनानाथकी लड़कीको एक मुसलमान गुंडा उड़ाकर ले आया है। हिन्दू-पक्षके क्रोधकी सीमा न रही, और मुस्लिम-पक्षका उत्साह तनिक मद हो गया। तब दो-एक मुसलमानोको सूझा कि पुलिससे कहे कि मामलेकी जाँच भी पहले की या नही।

दो-एक शरीफ़ मुसलमान उस समय पुलिस-इन्सपेक्टरके पास गये। तभी बाबाजीने इन्स्पेक्टरके पास पहुँचकर कहा—"आप यह क्या गजब कर रहे हैं। आप क्या चाहते हैं। आखिर इस बेचारी लड़कीको तो बापके पास जाने दीजिए। पता मै बताता हूँ, सिपाहीके साथ लड़कीको घर भेज दीजिए। मै आपके सामने ही हूँ।

मुसलमान सज्जनोने कहा—जी हाँ, कोतवाल साहब, यह शरीफ आदमी मालूम होते हैं। पता तो लीजिए कि बात क्या है।

पुलिस भीड़मेसे उन्हे एक खाली दुकानकी तरफ ले गई। वहाँ बाबाजीने मकानका पता दिया। और, तय हुआ कि एक सिपाही वहाँ जाय, और मालूम करके आवे, तब तक दोनो यही रहे।

इस बीच बात आगकी तरह फैलती रही। महावीर-दल, अर्जुन-सेना, भीम-सेना-सगठन, हिंदू-रक्षा-सभा और अखाड़ा बजरगबली आदि मदल-बल मौकेपर आ गये। इधर हुसैन-गोल और रफीकाने-इस्लाम तथा रजाकाराने-दीन भी चौकन्न चौकस हो गए।

इधर दीनानाथजी चार मित्रोके साथ भोजन कर रहे थे। दीनानाथजीकी लडकी भगा ली गई है, यह इस सभासे उस सभा तक सबको मालूम हो गया था। दीनानाथको ही बतलानेकी, या उनसे पूछनेकी, जरूरत किसीको नही हुई थी। वह निश्चिन्त, प्रसन्न भोजन कर रहे थे, तभी नौकरने खबर दी—बाबूजी, एक सिपाही आपको पूछ रहा है।

"क्या चाहता है?"

"पूछता है, आपकी कोई लड़की है।"

"अबे, है, तो उससे उसे क्या है?"

"कहता है, जरूरी कामसे दारोगा साहबने फौरन आपको बुलाया है।"

"कह दो, मुझे फुर्सत नही है।"

नौकर गया, और फिर लौटकर उसने खबर दी—

“ जी, वह तो जाता नहीं। कहता है, आपकी लड़की वहाँ है, और आपका वहाँ चलना बहुत ज़रूरी है।”

“ होने दो लड़की वहाँ। मैं अभी नहीं जा सकता। और, वह आदमी अभी नहीं जाना चाहता, तो उसे खड़ा रहने दो वहीं।”

नौकर गया, और दोस्तोंमे फिर ठट्ठा होने लगा।

“ देखा! यह पुलिस है! कोई गुलाम बैठा है कि फौरन हुक्मपर दौड़ा जाय!”

“ आखिर लड़की कहाँ है?”

“ होती कहाँ? भगीरथजीके साथ है। फिर उनके साथ कहीं भी हो, फिकर क्या है।”

उधर जनतामे न्यायकी भूख और हिंसाकी प्यास खूब बढ़ रही थी। चौकमे एक दुकानके भीतर बेंचपर भगीरथजी बैठे थे, उनसे चिपटी-सिमटी सुखदा, कुर्सीपर इस्पेक्टर थे, आस-पास सिपाही। और चौककी चौड़ी सड़क एक फर्लांग तक नर-मुंडोसे पटी थी। जो सिपाही भेजा गया था, उसके लौटनेकी प्रतीक्षा की जा रही थी। न्याय रुका हुआ था, जनता खाली थी, और उसका मद उत्तरोत्तर बढ़ रहा था। बातचीतसे दारोगाजीको मालूम हो गया था कि यह बाबा शरीफ आदमी है। लेकिन इस भूखी–मतवाली जनताके बीचमे अब इस बाबाको आज़ाद छोड़ना जानवरोंके बीचमें छोड़ना है, फिर उसकी बोटी बाकी न बचेगी।

सिपाहीने आकर खबर दी कि मास्टर दीनानाथने उसे घरसे बेइज्जत करके निकाल दिया है, और कुछ जवाब नहीं दिया।

इसपर तय हुआ कि दोनोको कोतवाली ले चलना होगा। लेकिन पैदल ले चलना खतरेसे खाली न था, इसस ताँगा मँगवाया गया। ताँगा चला, और भीड भी चली।

“ देखा! पुलिसको चकमा देता था।”

“ अब जायगा कहाँ?”

“ अब तो यही इसको बाहिश्त दिखाई देगी।”

दारोगा ताँगेमे आगे बैठे थे, लडकीके साथ बाबा पीछे। उस वक्त लड़के बाबापर कंकडियाँ फेंक रहे थे, लोग बेत चुभो रहे थे, कभी-कभी जूते भी पास आ गिरते थे, और लडकी बाबाकी गोदमे दुबकी जा रही थी।

ज्यों-त्यों दोनो कोतवालीके अंदर ले जाए गए, और भीड़ बाहर तैनात हो गई।

*

शहर-भरमे सनसनी फैल गई थी। दल-के-दल कोतवालीके सामने पहुँच रहे थे। कोई खाली हाथ न था। लाठी, डंडे, बल्लम, जिससे जो हुआ, साथ ले आया था। सबको खबर थी—"मास्टर दीनानाथकी लड़की उड़ाई गई, मास्टर दीनानाथकी!"

"अजी, सोलह बरसकी है। तुमने नहीं देखा? खूबसूरत, कि गजबकी खूबसूरत!"

"अभी ब्याह नही हुआ।"

"और पढ़ाओ लडकियोंको। जभी तो ब्याह जल्दी करना चाहिए।"

"सगाई हो गई थी। ब्याह बैसाखमे हो जाता।"

"अजी, पहलेसे लाग-साग होगी। नही तो इतनी उमरकी लडकीको कौन ले जा सकता है।"

इधर यह सब कुछ था, उधर मास्टर दीनानाथके कानो भनक न थी। उन्हे अचरज अवश्य था कि अभी तक सुखदा और भगीरथजी घूमकर आए नही, पर सोच लेते थे, अब आते ही होंगे। चिन्ताकी जरूरत हो सकती है, यह सभावना तक उनके पास न फटकती थी।

तभी पडोसी मनोहरलाल बाहरसे ही चिल्लाते घरमे दाखिल हुए—

"मास्टरजी, मास्टरजी, लडकी मिल गई।"

"क्या-आ?"

"अजी, लड़की गायब हो गई थी न, वह मिल गई। और, वह गुडा भी पकड लिया गया है। लाइए, मिठाई खिलाइए।"

"क्या कह रहे है आप!"

"मै कहता हूँ, अबसे आपको होशियार रहना चाहिए। मुसलमानोंको आप जानते नही है। और बनिए कांग्रेसी! आस्तीनके सॉप हैं, साहब, आस्तीनके।

दीनानाथजीने कुछ हॅसना भी चाहा, लेकिन बॉह पकडकर उतावलीसे पूछा—

"मनोहरलाल, कह क्या रहे हो?"

" अजी, मैं वहींसे आ रहा हूँ। लखूखा आदमी हैं। उसकी बोटी भी बच जाय, तो मेरा नाम नहीं। साला..."

" कहाँसे ? कहाँसे ?"

" कहाँसे ? जनाब, वहाँसे, जहाँ अब भी वह गुडा मौजूद है, और लडकी भी है। आप लडकीकी शादी क्यो नही कर देते ?"

" मनोहरलाल "— दोनो बाँहोसे मनोहरलालको झकझोरकर दीनानाथने पूछा—" कहाँ हैं वे लोग ?"

" कहाँ हैं ! क्यो, क्या अब भी कोतवालीमे वह नही बैठा है। लेकिन मै कहता हूँ, कुछ दमका और मेहमान है वह। फिर तो उसका बाल भी नहीं मिलेगा।"

दीनानाथने साइकिल सँभाली, और भागे। भीडके पास पहुँचे, तो किसीने उन्हे पहचानकर बधाइयाँ दी—

" मास्टरजी, लडकी मिल गई।"

" यही मास्टर है ? इसीकी लड़की है ? शर्मकी बात है।"

" जगह दो, जगह।"

" लड़कीकी हिफाजत होती नही, पढानेका शौक है। बुरा हो इस पढाईका।"

भीड़को चीरते हुए दीनानाथ कोतवालीमे दाखिल हुए। लड़कीके बापके आनेकी बातपर भीड़मे नशेकी एक और लहर आ गई। अदर दारोगा साहबने कहा—" आइए, मास्टर, साहब, आइए।"

" यह आप क्या गजब कर रहे हैं। वह कहाँ है ?"

उस कमरेमे पहुँचे, तो लड़की इनसे चिपट गई।

दारोगाने पूछा—यह आपकी लड़की है ?

" जी हाँ, साहब ! और यह मेरे दोस्त बाबा भगीरथजी हैं।"

" ओ हो, माफ कीजिए। इनको बड़ी तकलीफ उठानी पडी।"

" लेकिन जनाब, आपने भी तो ग़ज़ब किया। देखिए न, कितना हजूम जमा है।"

विचार होने लगा कि इस भीड़मेसे कैसे बाबाजीको ले जाना होगा। आखिर, सोचा गया कि मास्टरजी साथ रहेगे, तब ज्यादा खतरा नही है।

पुलिसकी मददसे ताँगेमे सवार हुए, और मास्टरजी बराबर साइकिल लेकर चले।

"मास्टरजी, यही गुंडा है ?"

"अरे, मास्टरकी लड़की भगानेवाला यही है।"

"साला, जाने न पावे।"

मास्टरने चिल्लाया—"अरे, क्या गजब करते हो!"

लेकिन साहसी व्यक्तियोंने बढ़-बढकर भगीरथजीके धौल-धप्पे जमाने शुरू कर दिये।

ताँगा दौड़ा। पत्थर फिके। दीनानाथ साइकिल दौड़ाते जा रहे थे।

भीड़ एकाएक कुछ स्तब्ध रह गई थी, और ताँगा इतनेमे निकल गया। यही कुशल हुई।

लेकिन रास्तेमे स्वयसेवकोके दल अभी चले ही आ रहे थे।

देखा, मास्टर दीनानाथ ताँगेके बराबर साइकिलपर जा रहे हैं, और ताँगे-पर लडकीके साथ एक मुसलमान-सा बैठा है।

"मास्टरजी, यही है ?"—और दे डडा!

"मास्टरजीकी लडकी यही तो है जी!"—और पाँच-सात आदमी दौडे ताँगेकी तरफ लाठियाँ उठाए। कुछ ताँगेकी छतपर पडी, एक-आध बाबापर भी। पत्थर भी खास बाबाको लगे। पर ज्यो-त्यो, आखिर ताँगा घर पहुँच ही गया।

❧

लेकिन बाबाजीने न अपना जाँघिया बदला, न भले मानसोकी तरह कुर्ता-कमीज कुछ पहनना शुरू किया।

"ओ हो, बाबाजी, आप थे! मै मोटरपर जा रहा था, भीड मैने भी देखी थी। क्या पता था, वहाँ आप घिरे थे! आप भी खूब हैं।"

"भीड़ तो हमने भी देखी थी। लेकिन बाबाजी, आप ठीक तरह क्यो नहीं रहते?"

बाबाजीको इससे कुछ भी सुख या दुःख नही जान पड़ता कि वह मौतसे बच गये। वह हँस देते हैं, और बाबा छोडकर कुछ और बनना नहीं चाहते।

एक टाइप

मेरठ स्टेशनसे जब रेल चली तब देखा—एक पकी आयुके सज्जन दो बेंचोंके बीचसे अपनी राह बनाते हुए मेरी बिछी दरीके पासकी खाली जगहको निगाहमें रखकर मेरी ओर बढे आ रहे हैं।

" क्या मैं यहाँ बैठ सकता हूँ ? "

कहा, और दरीके कोनेको जरा उठाकर रूमालसे उस जगहको झाड़ते हुए मेरे उत्तरकी बिना अपेक्षा रखे वह वहाँ बैठने लगे।

मैंने कहा—फिक्र न कीजिए, इसीपर बैठिए। और उनके हाथसे दरीका छोर लेकर मैंने फिर ठीकसे बिछा दिया। सज्जन बैठ गये।

बैठकर अपने चश्मेके मोटे लैन्सोंमेंसे उस कम्पार्टमेण्टमें अवस्थित नर-नारियोंको वह निस्संग भावसे देखने लगे।

कुछ लोग अपनेमें व्यक्ति नहीं होते, वे एक टाइपके प्रतिनिधि हुआ करते हैं। उन्हें अपने जातिगत व्यक्तित्वकी इकाई समझिए। वह रामलाल हैं, या श्यामलाल हैं, या शीतलप्रसाद हैं, या ये तीनों न होकर चौथे नामवाले हैं। इससे कोई फर्क नहीं आता। ये सब जगह सब नामोंके नीचे एक ही मूल्यके द्योतक हैं। सामाजिक प्राणीकी हैसियतसे अमुक ही उनकी जीवनकी नीति होती है, वस्तुओंका अमुक मूल्य, और विचारोंकी वही एक काटकी बनावट। वे अपना निजका व्यक्तित्व बनानेके झझटसे आरम्भसे ही बचे होते हैं और अपने विश्वास आप गढनेका कष्ट भी उन्हें उठाना नहीं होता। ऐसे ये विश्वासी जीव निरापद जीवन यापन करते हैं।

इसी भाँति मध्यम-मार्गी दीन-दुनियादार आदमियोंकी जातिका भी एक साँचा-सा बन गया है। वह मध्यम शिक्षा उठाकर, मध्यम नौकरी या मध्यम व्यवसायमें लग जाता है, और अपनी मध्यम गिरस्ती रचाता है। वह पापसे बचता है, दान-पुन्न करता रहता है। घर बनाता है, बाल-बच्चे बनाता है, जीवनका बीमा कराये रखता है, और अन्तिम दिनोंमें परलोक-साधनके लिए व्यवस्थित रूपमें भगवद्भजन करता है। चोरी उसके लिए पाप है, झूठ गुनाह, तीर्थयात्रा धर्म, रिश्वत हक, और सूद सबसे ईमानदारीकी आय। पैसा बड़प्पन है, और बड़ा मकान, बड़ी गिरस्ती और बड़ी आमदनी ही इसके लिए प्रतिष्ठाका लक्षण और सफलताकी पहचान है। वह समाजके धरातलको बताता है। वह समाजकी रीढ़ है। बँधा धर्म, बँधी आय और बँधे कर्मका यह स्वस्थचित्त और सन्देह-मुक्त जीव, अर्थप्रधान जलवायुमें अच्छा मग्न रहता है।

रेलवेकी वर्दीका जाड़ोंका एक नीला कोट सज्जन पहने थे, गोल फेल्ट कैप थी, ठीक-ठाक कमीज, ठीक-ठाक धोती और सुव्यवस्थित रूपमें तस्मोंसे बँधा हुआ काला शू। जेबमें एक किताब पड़ी हुई थी। सुघराईसे रखी इज्जतदार मूछें थीं और शव आज ही किया हुआ था। अवस्था पचास-पचपन होगी।

"आप कहाँ जा रहे हैं?"

मेरे हाथमें अँगरजीका अखबार था जो उसी स्टेशनमें लिया था। और मैंने देख पाया कि उधर उन्होंने देखा है, गोया वह कहना चाह रहे हैं—'मैं अखबार रोज पढ़ता हूँ, रोज पढ़ता हूँ, लाइए, दीजिए।' मैंने कहा—मैं पास ही जा रहा हूँ, लीजिए अखबार देखिए'। उन्होंने अखबार ले लिया, उसे हाथोंमें रखकर पूछा—गाँधी महात्मा आजकल कहाँ है?

मैंने मनके भीतर कहा—'अजी महात्माजीकी फिक्र छोड़िए। उनकी फिक्र आप अपनपर चढ़ने देंगे तो आपका चैन अखण्ड न रहेगा।' और भीतर यह कहकर मैं चुप रहा।

मुझे चुप देख वह बोले—गाँधीजी सच्चे महात्मा हैं, साहब। मैं भी खद्दर पहनता हूँ। यह देखिए, अन्दरकी बनिआइन, देशी मीलकी है। लेकिन साहब, खद्दर मँहगा बहुत है। हम गरीब क्या करें?

मेरा ध्यान अखबारोंको पकड़े हुए उनके दाये हाथपर था, जिसकी नसें उभरी हुई थीं, भूरे-भूरे घने बाल उगे थे, अँगुलियाँ मोटी और छोटी थीं,

अँगूठा गुहल था, और कलाईपर चमड़ेमें जड़ी 'कीप सेक' बैठी मिनट-मिनट सरक रही थी।

"दिलसे साहब हम महात्माजीके साथ हैं। लेकिन घर-बार है, बाल-बच्चे हैं। एकदम तो सब कुछ छोड़ा नहीं जा सकता। हमारे कस्बेमे भी एक बार महात्माजी आये थे।"

कुछ देरमे एक स्टेशन आया, रेल ठहरी और बराबरकी बेंचसे एक महाशय वहाँ उतर गये। सज्जन उठकर उस खाली जगह चले गये।

मैंने कहा—बैठिए, बैठिए।

बोले—मै ठीक हूँ, आप आराम कीजिए।

उन्होने अपनी आँखोंके सामने अखबार फैला लिया ओर मै कुछ देर टालकर बिस्तरपर लेट गया।

अखबारका यह सफा देखा, वह सफा देखा, वाटेडपर कुछ देर रुके और तीन-चार मिनटमे अखबार मेरी ओर बढाकर कहा,—'लीजिए साहब। थैंक्स।'

अखबार लेकर मैंने तकिएके नीचे डाल लिया। अब वह रेलकी खिड़कीकी राह बाहर भागते हुए खेतोकी ओर देखने लगे। मालूम हुआ—वे इसमे बहुत मग्नता पा सकते हैं। मानो उन्हें वहाँसे कुछ सदश-सा, कुछ विस्मृति-सी अथवा कुछ स्मृति-सी प्राप्त होती है। वे कुछ देर चश्मेमेंसे बाहरका दृश्य देखते, कुछ देर बाद चश्मा माथपर चढा लेते और खुली आँखोंमे दृश्यपान करते।

मैंने पूछा—कहिए आप कहाँ जाएँगे?

बोले—मै भी दूर नही जाऊँगा।

मैने पूछा—क्या कारबार है? मुलाजमत करते हैं?

"करना कराना तो साहब सब निबटा चुका। अब तो भगवानका सुमरन ही है।"

"पेन्शन हो गई है?"

"जी हाँ, बाल-बच्चे काम सँभालते हैं।"

मैंने कहा—बडा लड़का है? क्या उमर है?

"तीस बरसका होगा। रेलमे ३५) का नौकर है।"

"और उसके भाई-बहन हैं?"

"जी हाँ, चार भाई और चार बहने और हैं।"

" सबकी ब्याह-शादी हो गई ? "

" नहीं साहब, दो लड़के और दो लड़कियाँ अभी छोटी हैं। "

" क्या पेन्शन है ? "

" अजी पैंतीस रुपए मिलते हैं। बीस रुपएसे मेरी नौकरी लगी थी। रिटायर होते वक्त सत्तर तक पहुँच गया।...दो लड़के हाईस्कूलमे पढ़ते है। छोटा प्राइमरीमें है। बड़े दो नौकरीसे लगे हुए हैं। दो लड़कियोंके हाथ पीले कर ही चुका, बाकी दोनोंके ब्याहमें दो-दो ढाई-ढाई हजार और लगाना है। वह भी हो जायगा। लड़कोंके लिए दो अलग मकान बनवा दिये हैं। अपना फर्ज इतना ही कर देना है। आगेकी भगवान जाने। वे हैं और उनका भाग्य। अजी कौन किसका करता है। सब अपने करमका खाते हैं। जितना हो सका कर दिया है। और अपना क्या है। दो साल और रहा तो बीमेकी रकम भी पक जायगी। आठ हजार वह हो जाएँगे। यह सब बाल-गोपालका ही समझिए। हमे अपने लिए अब क्या करना है ? दो रोटी और रामका नाम। "

मैंने पूछा—आपको पेशन पैंतीस रुपए है न ? फिर यह सब आपने कैसे बन्दोबस्त कर लिया ?

वह हँसे नही, रुष्ट भी नही हुए, उन्हें जैसे विस्मय हुआ और उन्होंने कहा—तनख्वाह बीससे ही शुरू हुई थी, लेकिन उसीके भरोसे कौन रहता है ?

मैंने कहा—रेलमे इतनी आमदनी है ?

बोले—करनेवालेके लिए सब जगह रास्ते है। अनसूझतेके लिए क्या कहा जाए।

मैंने कहा—तब तो आप बेफिक्र हैं ?

बोले—जी हाँ, मैं किसी खटरागमे नही हूँ। दुनिया देखी, सब माया है। सब परपञ्च है। जितना मोह करो, उतना ही वह खाने आता है। और कुनबेवाले क्या ? सहाई क्या ? अपना असलमे कोई भी नही है। सत्त नाम ही अपना है और कुछ साथ नही जाता।

मै सज्जनकी ओर देखने लगा। वह हर भाँति सभ्रान्त और शीलवान् दीखते थे। देखते ही उनके प्रति आदर होना स्वाभाविक था। उनके जीवनमे और उनके मनमे शकाका कीडा कही न दीखता था और पचास-पचपनके होने पर भी उनके चेहरेपर और कदाचित् हृदयपर भी विशेष रेखाएँ न बनी थीं।

मैंने तब हठात् अपने तकिएके नीचेसे अखबार झपट कर खींच लिया। उसमें आँख चिपका, मै तकिएके सहारे सीधी तरह लेट गया। पलकोपर सपने-से आने लगे और मै सो गया।

मुझे प्रतीत हुआ, जैसे मैं कहीं बागमे हूँ और ऊँचे-ऊँचे पेड़ हैं और बहुतसी मधुमक्खियाँ भनभन भनभन कर रही हैं। मै दोनों हाथोंसे उन्हें हटाना चाहता हूँ, पर उनकी भनभनाहट दूर नहीं होती। वे इकट्ठीकी इकट्ठी मिलकर चारों ओर घुमड़ रही हैं। मुझे भय है, वे मुझे काटेंगी। मै हटाना चाहता हूँ, वे नहीं हटती। मै सकटमे हूँ।...

तभी सहसा मेरी आँख खुली। मैंने पाया, सज्जन अपनी सीटपर बैठे आँख मूँदे कुछ गुनगुना रहे हैं। मुझे मालूम हुआ वह भगवानमें लीन हैं। वह जैसे मचल-मचलकर कहना चाह रहे हैं—

" सान्ताकारग भुजकसेनंग पदमनाब सुरेखम् "

वह खूब भावासिक्त हैं, आर्द्र हैं, और उनका सिर रह-रहकर भक्तिमे डोल रहा है—

" विसिआधार गगनसदिसा मेघवर्णन सुभागम्। "

मैं फिर सोनेकी चेष्टा करने लगा। लेकिन श्लोकके दुहराए जाते चरण रुक-रुककर मेरे कानोपर लगते थे। वे किसी भी भाँति प्रीति-वर्द्धक नहीं थे। और मैं सोचता था—भक्ति मौनावलम्बी हो तो क्या उसकी कम सुनाई होती है? लेकिन श्लोक तो पूरा होता ही रहा—

' लक्ष्मीकान्त कमलनैन योगिविन्ध्या सुनगरम्। '

फिर चौथा चरण भी आया—

' बन्दे विष्णु भवभय हरम सर्व लोकेअनाथम्। '

उसके काफी देर बाद तक आँखे उनकी मुँदी रहीं। फिर जब वे खुलीं, मालूम होता था वे नई-ही-नई इस दुनियाकी मायापर खुली है और यह माया उनकी कोरी दृष्टिसे एकदम नीचे है।

उन्होंने मेरी ओर देखकर कहा—आपने यह पुस्तक देखी है? और जेबमेसे वह पुस्तक निकाली। मैंने पुस्तकका नाम देखा—' तत्त्वचिन्तामणि। ' वह मेरी बहुत ही रुचिकी पुस्तक थी। एक बार देखकर मैंने उसे अपने स्वाध्यायकी पुस्तक बनाना चाहा था। लेकिन उसी पुस्तकको उनके हाथोंसे

अपनी ओर बढ़ती आती पाकर मुझे असमञ्जस हुआ। उस पुस्तकको उस समय हाथमे लेकर उलटना-पलटना और उसकी प्रशसा करना मुझे रुचिकर न हुआ। मैने कहा—जी हाँ, आपको इस पुस्तकमे रस मिलता है?

बोले—अपूरब पुस्तक है। आपने 'कलियान पत्तर देखा' है! गोरखपुरके ये कलियानवाले लोग बड़ा उपकारका काम कर रहे हैं, साहब।

मैने कहा—जी-हॉ, जी-हॉ।.. आप सस्कृत तो खूब जानते होगे?

बोले—अजी नही साहब। सस्कीरत जानने तो नही। लेकिन देवभाषा तो साहब, वही है। और उसमे कितना मिठास है, देखिए—

"सान्ताकारग भुजगसेनग..."

और दो दो बार दुहराकर श्लोकके पूरे चारो चरण उन्होने मुझे फिर सुनाये।

और भी गहन तत्त्वकी और दर्शन भक्तिकी बाते वह मुझसे करते रहे। गनीमत यही थी कि मुझे पास ही उतरना था। मेरा स्टेशन आया और मैंने उतरते हुए सज्जनसे विदा ली।

उन्होने कहा—"अच्छा जाइएगा? भगवान कुशल-मगल रखे।" और बिस्तरको लपेटते हुए जो मेरा अखबार नीचे गिर गया था उसे उठाकर, मुझे दिखाकर सज्जनने कहा—क्या इसकी आपको जरूरत है?

मैने कहा—नही-नही, आप रखिए।

और मै चला आया।

मित्र विद्याधर

जी जब हारता-सा है और ताकत चाहता है, मैं अपने मित्र विद्याधरके पास पहुँच जाता हूँ। वह नगण्योमे नगण्य हैं पर अपने लिए जिन थोडोको मैं गिनता हूँ, उनमे उन्हे अवश्य गिनता हूँ। बी० एस सी० किया, एम० ए०, एल-एल० बी० किया, उसके बाद एम० बी०, बी० एस० भी किया। फिर छक गए। आगे और कुछ करनेकी भूख नही रही। पास खाने-पीनेको था, और स्वभाव मननशील पाया था। उसके बाद बरसो-बरस, घूमकर और बैठकर, बहुत कुछ देखा, छाना, और पढा। इस सबके परिणाममे आज वह सैतीस वर्षसे ऊपरके है, बिनब्याहे एकाकी हैं, और एक प्रचार-सस्थाके अवैतनिक उपमत्री है। सभाके दफ्तरमे आकर पॉच-छह घण्टे मनोयोग-पूर्वक चिट्ठी-पत्रीकी लिखा-पढी करते रहते हैं। और वह कुछ नही है, और कुछ नही करते।

उन्हे बुद्धिमान् कहूँ, तो कैसे कहूँ। और मूर्ख भी वह नही हैं। उनकी ऑखे भरपूर खुली हैं। वह दुनियामे ऊँचा नीचा सब देखते हैं। फिर भी सब कुछ होकर न-कुछ बने रहनेमे उन्हे अप्रसन्नता नही है। उनके मनके भीतरकी आकाक्षाको कोई खा गया है। मुझे ऐसा लगता है, इतने बरस अकेले रहकर, जब-तब अपने भीतरकी तह फाड़कर अपना सिर उठा उठने-वाली आकाक्षाको ही यह चुपचाप खाते रहे हैं—यहॉतक कि अब उसका जड़ मूल ही निश्शेष हो गया प्रतीत होता है। बस चले, और अवसर आये, तो यह जीवन-भर चाकरी करते रहे—और मगन बने रहे। बहुत पढने और जाननेसे यह शून्य बिंदु हो रहे हैं,—यो शून्य हैं, कोई अपने दाये इन्हें ले ले, तो उसका दसगुना मूल्य बढा दे। मानो इनकी साधना ही यह रही है, कि यह शून्य हो जायँ। मित्र सब कुछ जानकर यह नही जानते, सो नहीं है। मूर्ख ज्ञान

चाहता है—मूर्खताका उनमे इतना अभाव है कि वह ज्ञानतक नही चाहते। शैतान काम चाहता है—शैतानका ऐसा आत्यन्तिक अभाव उनमें है कि वह सर्वथा निष्क्रिय रहकर अप्रसन्न नहीं हैं। इतनी अधिक जानकारी उन्होंने पाई है कि जड हो गए हैं, ऐसा जड, जो सचेतन है, और जिसने चेतनाका ऐसा विकास किया है कि वह, जैसे यत्न करके जड़त्वको अपना उठा है।

बात कितनी समझ आती है, मै नहीं जानता। पर, मुश्किल यह है, वही समझमें पूरी तरह नही आते। पर, यहाँ कुछ कह लूँ, उनके सामने मेरी एक नहीं चलती। उनके सामने होकर देखता हूँ, उनसे कुछ पा ही रहा हूँ, उन्हें दे सकने योग्य मेरे पास कुछ नहीं है।

किन्तु, इतना सुनकर, मेरे बारेमे भूल न हो। मैं उनकी तरह नही हूँ। घर-कुटुम्बवाला हूँ, प्रतिष्ठा—पैसेवाला हूँ, मेरा नाम खासा परिचित है, और जहाँ पहुँचता हूँ, गिना जाता हूँ।

पर जब विद्याधरके पास पहुँचता हूँ, तब मेरे साथ इनमेंसे कुछ भी परिग्रह नही रह पाता। अपनी प्रतिष्ठा, सभ्रम, प्रसिद्धि, रौब और दभ—इनमेसे कुछ भी अपने साथ बटोर कर रखनेकी आवश्यकतासे, मुझे, उसकी उपस्थितिमे, मुक्ति मिल जाती है। कारण यही, कि ये सब चीजें उस क्लर्क विद्याधरकी निगाहसे नीचे रह जाती हैं। उसे दीखती नही, सो नही, पर अपनेमे उस निगाहको उलझा नही सकती, उसमे किसी तरहका विकार नही ला सकती।

जो अपने कारण, सबकी निगाहमे क्लर्कसे भी गया-बीता है, और अपनी डिग्रियोंके कारण केवल जो सभाका उपमंत्री है,—उसी छोटे आदमी विद्याधरके सामने मै पहुँचता हूँ, तो अपने बडप्पनको अलग उतारकर पहुँचता हूँ। और मनमे यह अनुभव कर प्रसन्नता ही पाता हूँ कि मै उसकी तुलनामे ओछा रह जाता हूँ।

मुझे कभी-कभी खेद होता है कि क्यो यह मेरा मित्र विद्याधर वहाँ है, जहाँ है। क्यो मुझे, उसे समाजमे उसके योग्य स्थानपर पहुँचाने नहीं देता। पर मै उसे इतनी-सी छोटी बात समझानेमें असमर्थ हो जाता हूँ, कि गलीका झम्मन भगी सम्राट् जार्जसे छोटा है। मै बहुत करता हूँ, तो वह तनिक हँस पडता है। वह कम्बख्त क्यो नही समझता कि दुनियामे छोटा-बड़ा है, है, एकसे लाख बार है और हमेशा रहेगा, और उसे बडा बनना ही चाहिए, छोटा नहीं रहना चाहिए। और मुझे खीझ होती है कि मै क्यो नहीं उसे बडा बननेको राजी कर सकता। और जब वह छोटा है,

तो मै ही क्यो दुनियामे बड़ा बना खड़ा हूँ ? ऐसे समय वह कहता है—छोटा बड़ा नहीं है। पर, एक-सा भी नहीं है। सब अपनी-अपनी जगह हैं। और उनकी जगह वही है, जो है। सब, कुछ और होना चाहते हैं। जो होना चाहते हैं, उसे बड़ा माना। इसीलिए जो हैं, वह छोटा हो गया। मनके भीतरका यही छुट-बड़पन जगका राजरोग है। मनमेंसे इस कीडेको निकालना होगा। तब रूस समानताकी वास्तविक चाहमे तुम्हारे पीछे आयगा।

मैंने मनमे कहा—मर कम्बख्त। रूस-वूस करता है, यह नही कि क्लर्की छोडकर कुछ बने।

यह सब कुछ है। पर, जब जी हारता है, मै उसीके पास पहुँचता हूँ। उस मिट्टीके माथेमे फर्क नही आता। पर मेरे जीको ताकत मिलती है।

* * * *

तो रातको जब मै अकेलेमे फूटकर रो उठा, और रोनेके बाद भी मन सीसे-की तरह भारी ही रहा और तनिक चैनकी किरन चारो ओरके अँधेरेमे कहींसे भी फूटती मुझे नही दीख सकी, और मुझे लगा, ऐसे समय भटकती मौत कही आ जा रही होती, तो उसे कसकर ऐसे चिपटा लेता कि फिर मुझे साथ लिये बिना जाने न पाती, तब सोचा—विद्याधरके पास जाऊँगा।

इस तरह हल्के होकर मैने नीद ली, और सबेरे निबट कर ग्यारह बजे उसकी सभाके दफ्तरमे पहुँचा।

उसने कहा—आओ। क्यो, क्या हाल है ?

मैंने कहा—तुम कहो, तुम्हे क्या मौतके दिन तक यही मरना है ? मेरी पूछते हो, यह नहीं कि कुछ अपनी फिकर करो।

विद्याधर तनिक हँसा। मुझे यही असह्य होता है। सब बातपर, जैसे भेदसे, वह हँसता क्यो है ? मैंने कहा—तुम्हारे स्वामीजी कहाँ हैं आजकल ?

उसने सहज भावसे कहा—यही हैं। दौरेसे आ गए हैं। इस समय अपने बँगलेपर ही होगे।

मैने कहा—वह बँगलेपर कोचपर होगे। मै पूछता हूँ, तुम दफ्तरमे मेजपर क्यों हो ?

उसने फिर जैसे हँसना चाहा। कहा—मै स्वामीजी नहीं हूँ, विद्याधर हूँ; इससे अपनी जगह हूँ। लेकिन, तुम अपनी—मनकी बात कह डालो। मुझे लेकर अपनेको यो मत पैनाओ।

मै—स्वामीजी किस न्यायसे वहाँ हैं ? और तुम किस तर्कसे वहाँसे वंचित हो ? और मै कहता हूँ, तुम क्यो अपने व्यवहारसे इस अन्यायको स्वीकृत और

पुष्ट करते हो? बडी सभा है तुम्हारी। प्रचार करती है, उद्धार करती है, तुम्हे क्लर्क बनाती है, और स्वामीजीको बगलाधीश बनाती है। क्यो?—इसीलिए कि तुम अधिक योग्य हो, और स्वामीजी धर्मसे अधिक दूर हैं? और, अब तुम मुझसे कहोगे, सब ठीक है, और मै गलत हूँ।

विद्याधर—हॉ, सहज न रह सकना, गलतीकी पहचान है।

मैं—फिर वही सहजकी बात करते हो। अंधेरके सामने सहज रहा जाय? कैसे रहा जाय? वह दिल नहीं कुछ और है, जो सहजसे कुछ और होना जानता नही। और तुम जानते क्या हो, आदमीपर क्या बीतती है, और क्या-क्या बीत सकती है। अकेले हो, यहॉ मेजपर बैठे रहते हो और सहज भावसे कह देते हो—सहज रहो।..

विद्याधर—ठीक है, अब तुम शायद अपनी बात कहनेके निकट आ रहे हो। कुछ लेकर आये हो, उसे कह कर हल्के हो जाते हो नहीं, मुझे लेकर गर्म होते हो।

और, वह उसी तरह मुस्कराकर रह गया। हॅसना है, तो हॅस क्यो नही पडता मुस्कराकर क्यो रह जाता है? और क्यो ऐसे देखता है? वह हिलता क्यो नही, क्यो अचल रहता है? मै क्या उसका कुछ नहीं हूँ, और वह क्या मेरी विपत नही देखता, कि खुद हॅसता है!

मैंने कहा—विद्याधर, तुम आदमी नही हो। पशु होते, तो भी अच्छा होता, तुम पत्थर हो। और मुझे कुछ नही कहना—मैं जाता हूँ।

विद्याधरने कहा—नही, तुम जाओगे नही। कुछ बीता है, तुम्हारे साथ। तुम जानते हो, उसमे मेरा दोष नही है। किन्तु रोष मुझपर ही करते हो, इससे प्रकट है, चित्त तुम्हारा स्वस्थ नही।

मै बैठ गया। मुझे सुख नही था। और वह बेलाग स्वस्थ-चित्त बैठा है, इससे मुझे और दुख था। रोगीके सामने डाक्टर कुर्सीपर अविचल भावसे बैठकर हाल पूछकर और नब्ज देखकर, गभीर भावसे नुस्खा लिखकर, अलग करता है, तब क्या रोगीको कुछ अच्छा लगता है? क्या वैसा अच्छा लगता है, जैसे जब मॉ सिरहाने आ पूछती है—'बेटा, कैसा जी है?' और उत्तरमे दो बूँद ऑसू गिरानेको तैयार हो जाती है। जब सामने वह मिलती है—मॉ पत्नी या कोई—जिसका जी अपनी हालतसे छूकर रो उठे, तब अपने जीको ठढक मिलती है। पर रोगका निदान तो डाक्टरके पास ही है, मॉके पास नही। रोगी डाक्टरसे ठढक न पाये. आरोग्य वहींसे पायगा।

मैने पूछा—विद्याधर, तुम जानते हो, प्रेम कम्बख्त क्या चीज है ?

विद्याधर गभीर हो गया, जैसा कि वह कम होता है।

'प्रेम चीज नही है, प्रेम विभूति है। हम कम्बख्त हैं, जो उसे अपना मानते हैं। वह ईश्वरका ऐश्वर्य है। अव्याबाध व्यापक है। अपने-अपने बूते मुताबिक सबको मिलता है।'

मैने कहा—विद्याधर, तुम नही जानते प्रेम क्या है। जिसे प्रेमपर ईश्वर याद आये, वह वास्तव प्रेम, मानव-प्रेम क्या जानता है ? विद्याधर, मुझे बताओ, क्या तुमने कभी प्रेम किया है ? तब मुझे तसल्ली होगी।

विद्याधरने कहा—हम मानव जड़ हैं। चैतन्य प्रेम है। उसीके प्रकाशमे हम चैतन्य हैं। उसकी ऊष्मा हमारा जीवन है। उससे रिक्त हुए कि जीवनान्त हुआ। कौन प्रेममे वचित है?—वह अभागा है। वह अभाग्य पूर्ण हुआ कि मौत आई। पर, अपने-अपने बूतेकी बात है। मेरा बूता विनोद, शायद थोड़ा है।

मैने कहा—तो तुमने प्रेम किया है ?

विद्याधर—तुम पूछते ही हो, तो मै कहूँगा, हॉ किया है। पर, उसका दर्द छूट गया है। अब उसका आनद ही मेरे साथ शेष है। स्मृति-रूपमे मेरे साथ वह नही है। स्मृतिमे कसक है, परायापन है, अतर है। मेरे साथ वह प्रत्यक्ष है, एकाकार है। बीचमे सयोजक बनकर स्मृतिको टिकनेका अवकाश नही है।.. तभी देखते हो, मै रोता नही हूँ। बाते सब मेरे साथ रोनेकी है। देखो न, तुम विद्याधर न होकर भी मेरे पास आकर विद्याधरकी परिस्थिति-पर रोया करते हो। मेरा प्रेम विलग हो, तो रोऊँ। वियुक्त, दूर हो, तो तडपूँ। इसीलिए मै अकेला हूँ, इसीलिए सदा तुष्ट हूँ।

मैने कहा—विद्याधर !

विद्याधर, जो कभी नही हुआ, अब हुआ। वह विचलित हुआ।

मै अवश हो उठा। मेरी बात पीछे होगी विद्याधर, और तुम्हे अपनी बात मुझे सुनानी होगी।

उसकी आवाज हिल आई। कहा—विनोद, नही, यह नही..।

मैने कहा—तुम जानते हो, मै कौन हूँ। विद्याधर, मै तुम्हारा हूँ।

विद्याधर सामनेको देख उठा। मेरे बहाने मेरे पीछेकी दीवारमे वह क्या देख रहा था, जैसे उसीको लक्ष्य कर उसने कहा—अपने जीसे चीरकर अलग करे, तब सुनाये।—नही, यह सुखद नही है।

मैंने अपना हाथ बढ़ाकर मेजपर पड़े उसके हाथको पकड लिया। कहा—विद्याधर !

और हिमाचलसे ऊँचा यह महाशुभ्र-पत्थर विद्याधर, मानो मंत्रबलसे एका एक गलकर बह पड़नेको हो उठा।

मै सहसा ही घबडा गया।

मैने देखा, वह चुप, निस्पद बैठा है।

वह जाने कहाँ देख रहा है। मेरे चेहरेको आर-पार करके कहाँ दृष्टि गडी है कि निर्निमेष हो पड़ी है।

कि,—उन फैलीं, टँकीं, आँखोंमे एक खारी बूँद आई और टप् मेजपर टपक पडी !

उस टप्की आवाजसे वह एक साथ चौंका। मानो कहींसे टूटा, टूटकर गिरा। सब स्तब्ध था। उसने झपटकर आँखे पोंछ ली।

तब मानो उसने मुझे देखा। एक क्षीण मुस्कानकी छाया उसके ओठोंके किनारे आ रही। वे ओठ किंचित् खुले—

उसी समय द्वारपर साफेबद एक ग्रामीण पुरुष दीर्घाकार नकारकी भाँति उपस्थित हो गया। बोला—स्यामीजी, इहाँ ही रैते हैं ?

वह मुस्कान स्फुट होकर ओठोंपर फैल गई। क्या वह हँसा ? उस नीरव हास्य-पर मेरे जीमेसे हाय उठी, और मैने उसे मसोस ली। उसने अँग्रेजीमे कहा—समय गया, वह आ गया था—चला गया, इसमे मेरा दोष कहाँ है ? देखो, क्या अब वह फिर आता है ? विनोद, तुम जाओ, खुश रहो। सब भगवान् करता है।

मैंने कहा—विद्याधर !

वह ग्रामीणकी ओर मुड गया, कहा—स्वामीजी यहाँ नही रहते हैं। पर आओ भाई, तुम कहाँसे आते हो ?

" मै जी, स्यामीजीके दिरशनोंको आया था। रोत्तकके पास रैता हूँ, जी। स्यामीजी म्हारे गाम आए थे—"

" अच्छा, कौन गाँव ? "

और, मैने देखा, वह हटात्, गँवारसे छुट्टी पा लेना नहीं चाहता।

वह बातोंमे उलझ गया, मै चुपचाप उठकर चला आया।

रामूकी दादी

रामूकी दादीने उठकर जो तकिएके नीचे टटोला, तो पाया–दो हैं, एक गिन्नी गुम हो गई है। उनकी वृद्ध देह इसपर क्षमतासे भर आई। उठ बैठीं, बिस्तर खखोल डाला, यहाँ देखा, वहाँ देखा। पर, गिन्नी बिल्कुल गायब थी।

अब, गिन्नी गिन्नी है। और आज यह गिन्नी होना अपनेमे किसी तरह कम बात नहीं है। तिसपर चीजोंके लापता हो जानेका सिलसिला ही उठकर यो चल पड़नेका नाम ले लेगा, तो हद कहाँ मिलेगी। रामूकी दादी सोचने लगी, आखिर गिन्नी हो क्या गई होगी।

उससे आदमीके मनमे पख भले लग जायँ, पर गिन्नी चीज वजनदार है, इज्जतदार है, आदमी सरीखी जानकी वह नही बनी, और खोटी नही है, सच्चे सोनेकी वह बनी है और ठोस है। इसस तकिएके नीचेसे वह यदि एकदम अलभ्य बन गई है, तो किसी भाँति स्वय उसपर सदेह नही किया जा सकता, उसके लिए किसी आदमीको पाना होगा।

'एसा कौन गिन्नी ले सकता है?'—दादीने सोचा—रधिया चौके और दालानसे उठकर इधर आई नहीं। और अभी घटा भर हुए ही तो मैंने सँभालकर रक्खी थी। कही गिर ही तो नही गई! देखूँ।

उसने देखा—

अब बात यह है कि एक नाम भीतरसे उठकर ऊपर आना चाह रहा है। पर जैसे उस नामको इस सबधमे अपने सामने पाना उसे पातक लगता है। इससे चाहती है, यह किसी तरह सिद्ध हो जाय कि गिन्नी गिर ही पडी थी। उसके मनमे यह निरतर बज रहा है कि 'ऐसा नहीं है, ऐसा नही है।' 'गिरी नहीं है और चोरी करनेवाला वही एक है' पर इसी बातको

अपने निकट अस्वीकृत करनेके लिए उसने फिर खोजा और फिर देखा।—पर, गिन्नीको न मिलना था, न मिली।

रमचन्नापर अविश्वास करना उसे स्वय अपने प्रति लाछन मालूम होता है। पर कितना ही सोच देखे, क्या कोई और है जो इस बीच उसकी कोठरीमे आया गया है, और जिसके लिए तनिक भी सभावना है कि गिन्नियोके अस्तित्व-को जाने ?

रामचरण, अर्थात्—रमचन्ना, बारह बरसकी उमरसे इनके यहाँ नौकर है। अब उसकी अवस्था तीसपर पहुँचती होगी। यो तो यही उमर है जब गिन्नी-की क़ीमतकी आदमीका खूब पहचान हो. पर ठीक यही उमर भी है, जब रामूकी दादीको वह अतीव आकर्षक, प्रिय और अनिवार्य लगता है।

रमचन्ना बेहद घरका आदमी है। इस घरके काम या जरूरतके मौकेपर वह सदा ऐसे ही काम आता रहा है, जैसे सोनेका जेवर। छोटेसे यही बड़ा हुआ है। उसका ब्याह इसी घरके लोगोने कराया, और अब विधुर है, तो फिर इस परिवारके लोग झटपट उसका ब्याह करा देनेको उत्सुक है। और तीन बरसका रामू तो बस इसीका है। उसे जब देखो, तब रमचन्ना। दादीकी गोदमेसे पूरी तरह ऑख खोलकर उठा नही कि—रमचन्ना। इस रमचन्नाकी कमर और कंधे पाकर और दादीकी गोद पाकर इस काठके उल्लू रामूको यह भी पता नही है कि कोई मॉ भी होती है, जो उसके नही है। और कोई बाप भी होता है जो भी लगभग उसके नही है। जबसे इस रामूका बाप इस दुनियामेसे रामूकी मॉको खोकर और महीने-भरके इस नन्हेंसे रामूको दादीके ऊपर छोड़कर विलायत जाकर रम रहा, तभीसे शनैः शनैः यह रमचन्ना उस दादीके निकट नौकर कम होता गया और बेटा ही ज्यादा-से-ज्यादा होता गया।

'रमचन्ना, और घरमे ही सेध लगाए!'—दादी अत्यत विपन्न भावसे सोचने लगी—'उसे क्या नही मिला ? और वह और क्या चाहता है, जो कहकर नही पा सकता ? लेकिन यह बहुत खराब बात है, और आज इसे तरह दे दूँ, तो कल और कुछ भी हो सकता है। और मै नही चाहती, यह लड़का रमचन्ना चोर बनकर जेलमे सड़े।'

दादीने जोरसे आवाज दी—रमचन्ना !

आवाजसे पास सोये रामूकी नींदको आघात हुआ। उसने चौंककर दोने-सी

बड़ी-बड़ी अपनी कोरी आँखें ज़रा खोलीं, मीचीं, खोलीं और फिर मींचकर करवट ले दादीकी छातीसे लगाकर सो रहा।

दादीने पुकारा—रमचन्ना!

रामचरण भीतर आया और दादीकी खाटके पास खडा होकर हँसते हुए बोला—हमारे रामजी सो रहे हैं! क्या है, अम्मॉंजी? लाओ, इसे बाजारसे रेवडी दिला लाऊँ, बहुत सो लिया।

यह लडका चोरी करेगा और फिर इस तरहसे सामने आकर बनेगा भी। दादी कठिन हो गई, और तुरत कुछ बोल नहीं सकीं।

रामचरणने देखा, कहीं कुछ गलत है। उसने हठात् कहा—उठो राम-चंदरजी, भोर हो गई।

और रामूने झट ऑंखें खोल लीं, बाँहे फैलाकर कहा—लमअन्ना।

वह बढकर रामूको गोदमें उठा ही लेना चाहता था कि दादीने कहा—ठहर रे रमचन्ने!

बच्चा सहमकर रह गया और इसपर दादीका मन भीतरसे और भी कठिन हो आया। इस समय उसके मनको बडा क्लेश था।

'ठहर रमचन्ने,'—दादीने कहा—'पहले बता, तैने यहॉंसे गिन्नी ली है?'

'कैसी गिन्नी अम्मॉंजी?'—रमचन्नाने हँसकर कहा और झुका कि रामूको गोदमें ले ले।

'मै कहती हूॅं, तैने यहॉंसे गिन्नी नही ली? सच बोल, नही ली?'

रामचरण चुप।

दादीने कहा—मै जानती हूँ, तैंने ली है। मैं तो सोचती थी, तुझसे कहूँ कि अगर तुझे जरूरत है, तो मुझसे क्यो नहीं कहता। एक छोड़ क्या दो गिन्नी मैं तुझे नहीं दे सकती? पर, क्यो रे, तू अब ऐसा हो गया है कि पहले तो चोरी करे, फिर उसे कहे नही, और पूछे तो चुप हो जाय?

रामचरण चुप रहा। बुढिया सोचती थी कि अगर यह हॉं कह दे, तो इससे गिन्नी वह वापिस नहीं लेगी। इसमे उसे सदेह न था कि अगर और कुछ नहीं होता, तो वह खुलकर यही कह दे कि उसने नहीं ली। तब वह उसे छोड़कर कहेगी—'अच्छी बात है, नहीं ली। तो जाओ खोजो, वह कहाँ गई।'

वह इसके लिए भी तैयार हो सकती थी कि इसीमें कुछ दिन निकल जायें और फिर बात आई-गई हो जाय; लेकिन यह जो रमचन्ना सामने गुम-सुम खड़ा है, पूरी तरह खुलकर बात भी नहीं कर सकता, जैसे उसे मैं खा जाऊँगी, यही उसे बड़ा बुरा लग रहा था। कहा—

'अरे, बोल! कुछ मुँहसे कहता क्यों नहीं?'

रामूने दादीका हाथ पकड़कर कहा—अम्मॉजी, अम लेबली खाअँगे।

हाथसे रामूको अलग झिटककर दादीने कहा—हरामी, राकशस, बोलता क्यों नहीं?

बिल्कुल खोएसे बैठे रामूको देखता हुआ रामचरण चुप हो रहा।

दादीका सारा शरीर काँपकर थर्राने लगा। उन्होंने हिलते हुए हाथको उठाकर चीखकर कहा—नमकहराम! निकल जा मेरे यहाँसे! (और तभी जरा मद्धम भी वह पड गई।) हम कहते हैं, बोल, बातका जवाब दे, सो उसमें इसकी मौत आती है!

रामचरणने कहा—अच्छा माँजी, मैं चला जाता हूँ।

रामू बोला—लमअन्ना।

दादीने अत्यन्त क्रुद्ध होकर, मुँह बिगाडकर कहा—

'माँजी, म्ये चिल्या जाता हूँ'। क्यों एक गिन्नीसे तेरा भर गया पूरा पेट, जो चला जाता है? चल मुझे नहीं चाहिए तेरी गिन्नी, अपने पास ही रख और निकल जा इसी दम मेरे यहाँसे, बदमाशक बच्चे!'

उसने हाथ जोड़कर कहा—अच्छा माँजी, तो मै चला जा रहा हूँ।

'हाँ, जा, जा, जा!'—चिल्लाकर दादीने कहा—'मेरा दम तोडने यहाँ क्यो खड़ा है? जा, टल।'

अत्यन्त उद्धत होकर, मचलनेको तैयार, रामूने कहा—लमअन्ना, अम लेबली खाअँगे।

रामचरण मुँह झुका बाहर निकलता चला आया। रामूको देखा भी नहीं।

रामू सुध-बुध खोया-सा चुप बैठा रहा और रामचरण बिलकुल ओझल हो गया, तो बिना कुछ कहे वह लातों और थप्पडोंसे दादीको मारने लगा।

इस रामूकी मारको खाकर दादीमें धन्य आनन्दका भाव ही उठा है; पर इस बार दादीने जोरसे दो चपत उसकी कनपटीपर जडकर कहा—चुप बैठ

सूअरके बच्चे ! और धक्केसे उसे वहीं खाटपर लुढ़काकर बुढ़िया दादी झटकेसे उठकर चलने लगी।

रामू सिसक-सिसककर रोने लगा।

उसके रोनेकी आवाज सुनकर फिर लौटी और सिसकते बच्चेकी पीठपर और धौल जमाकर कहा—रोता है ? ले रो !—एक थप्पड़ और रख दिया।

फिर तेजीसे चलकर भीतरकी कोटरीमे घुस गई। वहाँ एक मटकेमेसे गूदड निकाला और फिर दो मुट्ठी रुपए। उन्हे गिना, और फिर एक मुट्ठी और निकाले। पचासके ऊपर भी पाँच रुपए उसके हाथमे रहते थे, वह पूरे पचास चाहती थी। लेकिन गुस्समे अब वह पाँच अतिरिक्त रुपए वापिस मटकेमे नही रख सकी और उसमे ज़ोर-जोरसे वही गूदड ठूँसकर भर दिया।

लौटकर चिल्लाई—रधिया, रधिया ! अरी ओ कम्बख्तकी बच्ची, सुनती है ?

रधिया जब गीले हाथोको लेकर सामने आई, तो दादीने कहा—तू बहरी है, जो इतनी देरसे चीख रही हूँ और तू सुनती नहीं है ? ले ये रुपए। वह रमचन्नेका बच्चा अभी बाहर ही होगा। अभी जा। ये सब रुपए, उसके सिरपै मारकर आ। कहना, मुझे नही चाहिए उसकी गिन्नी और कहना, मै अब उसका मुँह न देखूँ, और जो उसने रामूकी तरफ कभी देखा, तो अपनी खैर न समझे। देखती क्या खड़ी है, जाती क्यो नही ? समझ लिया न, सिरपर देकर मारियो। चल, जा।

वह लौटी तो सोचती थी कि वह रामू बदमाश, ऐसे थोड़े ही हाथ आयगा, बिना पीटे वह ठीक न होगा। लेकिन गई तो देखा, वह सो गया है, और ऑसू उसके गालपरसे अभी नही सूखे हैं। जोरसे इस बिना माँ-बापके बेटेको अपनी छातीमे भरकर, चूमकर, वह रोने लगीं। पहले तो इस आकस्मिक उपद्रवपर चौककर, और दादीको देखकर वह बच्चा भी चिल्लाया, और फिर ऑसू ढारती दादीका मुँह निहारकर वह अपने छोटे-छोटे दोनो हाथोमे दादीकी ठोडीके साथ खेलने लगा। और दादीके ऑसू और भी अटूट होकर झरने लगे।

पढ़ाई

यह सुनयना जाने कितने बरसकी हो जानेपर ठीक ठीक सुनयना बनेगी ! अभी तो दिनभर नूनी ही बनी रहकर ऊधम मचाती डोलती रहती है। जब दो बरसकी थी, मैने गोदमे बिठाकर पूछा—'बिट्टी, तेरा नाम क्या है ?'

बिट्टीने कहा—ऊँ-ई ।

बिट्टीकी बुआने कहा—नूनी ! हॉ, बिट्टा, फिर कहना नूनी !

और बिट्टीने फिर कहा—ऊँ-ई ।

हम सब हँस पड़े, और उसने झट दोनो हाथ लपकाकर मेरी डाढ़ी पकड़ ली, कहा—आ-ऊँ-ऊँ-ई ।

तब तो यह सब कुछ ठीक था। पर, अब चार बरस और गुजर गए हैं, छह बरससे भी ऊपरकी हो गई है । अब पुराना वह सब कुछ नही निभ सकेगा। उमर आ गई है कि अब अदब सीखे, कहना माने, और शऊरसे रहे। और, वह शऊर जानती नही। छह बरसकी लड़कियाँ दूसरी जमात तक पहुँच जाती हैं, और एक यह है कि माँका दूध नही छोडना चाहती। यो काममे माँको अँगूठा दिखाकर भाग जाती है। माँ इससे बड़ी असन्तुष्ट है,—एक तो लड़की है, वह यो बिगड़ी जा रही है। बिगड़ जायगी तो फिर कौन सँभालेगा, उन्हींके सिर तो सब पडेगा। सो, वह भी औरोंकी तरह फिकर करना छोड़ बैठे, तो कैसे चले। उनकी और सुनन्दाकी कहा-सुनी इस बात-पर अक्सर हो जाती है।

बिट्टीकी बुआ कहती हैं—अरी, क्यों उसे धमकाया करती है। आखिर, बच्ची ही तो है।

वह कहती हैं—जीजी, बच्ची तो है, पर लाड़का वखत-बखत होता है। लाड क्या मैं करना नहीं जानती ? पर, उमर होती, और कामके बखतका लाड़ बिगाड़ ही करता है। और जीजी, कामसे आदमी बनता है, लाड़से तो कोई बनता नहीं है।

ऐसे समय नए कपड़ोंको मैला बनाकर, नूनी यदि आ पहुँचती, तो अम्मा उसकी कहती—क्यो, फिर खेलने बाहर पहुँच गई थी ! अब तू ठीक तरह पढ़ेगी नहीं ? अच्छी बात है।

और उनकी मुद्राको देखकर नूनी बुआकी गोदके पास सरक जाती। और बुआ उसे गोदमे दुबका लेती।

उस समय ' नहीं जीजी, यह नहीं होगा '—कहती, और नूनीको उस गोदमेंसे खीचती हुई वह ले जातीं। उसे रुलातीं, और फिर अपनी गोदमे लेकर, तभी मँगाकर मीठी मीठी बर्फी खिलाती।

उनके पेटकी कन्या है, पर दुनिया बुरी है। उसने पढ़ना-लिखना जैसी भी चीज अपने बीचमें पैदा कर रक्खी है। और उसी दुनियामें मास्टर लोग भी हैं, जो डडा दिखाकर बच्चोको पढ़ा देगे और आपसे रुपया लेकर पेट पाल लेगे। और उसी दुनियामे एक चीज है प्रतिष्ठा। और भी इसी तरहकी बहुत-सी चीजे हैं। और फिर है, ब्याह, जिसमे एक सास मिलती है और एक ससुर मिलता है।

वह माँ है, और उसके पेटकी कन्या है। पर इस दुनियाको लेकर वह झझटमे पड़ जाती है। तभी नूनीको थप्पड़ मारकर अपनी गोदीसे दूर करके कहती हैं—पढ़ !

और नूनी रोती है और पढ़ नहीं सकती।

और माँ कहती हैं—कम्बख्त, पढ़।

तब लड़कीके पढ़ उठनेसे ही गुजारा होता है। या माँके जीमें आँसूकी भाप-सी उठ आनेपर भी गुज़ारा हो जाता है। तब वह कहती हैं—मास्टरजी, इसे तस्वीरवाला सबक पढ़ाना। और मास्टरजी, इसके मनके मुताबिक पढ़ाना।...

और फिर नूनीकी ओर जो देखती हैं, तो और कहती हैं—अच्छा मास्टर-जी, आज छुट्टी सही। जरा कल जल्दी आ जाना।

माँ तो माँ है, पर लड़की तो सदा लड़की बनी रहेगी नहीं। माँके मनमे यही बात उठकर दर्द दे रही है। आज तो लड़की है, पर एक कल भी तो

आ पहुँचनेवाला है, जब उसका ब्याह होगा, और लोग पूछेंगे, कितना पढ़ी है, क्या जानती है। तब उनके सामने यह बात किस तरह कहने लायक हो सकेगी कि मेरे बडे दुलारकी है, बड़े प्यारसे मैंने पाली है। तब तो खोजकर यही कहना होगा कि खूब काम सीखा है, और उस मास्टरसे इतना पढी है, और वहाँसे यह पास किया है। उस कलके दिन आनेपर चुप नही रह जाय, बल्कि बहुत कुछ उस रोज कहनेके लिए और दिखानेके लिए उसके पास जमा हो—इसीके प्रबन्धमे तो वह है। वह माँ तो है, पर यह भी कैसे भूले कि इसीलिए है कि किसी अजनबीको खोजकर पाए और उसे अपनी लड़की सौप डाले। यह जिम्मेदारी, वह बहुत कम क्षण भूल पाती है।

मै लिख रहा था, उन्होंने आकर कहा—तुम तो देखते नही हो, और नूनी यो ही रह जायगी। पढने-लिखनेमे उसका चित्त नही है। और तुम घरसे बैरागी बने हो। क्यो नही बुलाकर उसे जरा कुछ कहते ?

मैने कहा—अभी छः बरसकी ही तो है।

यो ही बीस बरसकी भी हो जायगी।..

मैंने हँसकर कहा—यो ही तो बीस बरसकी कैसे हो जायगी। चौदह बरस बीचके काट लेगी तब होगी।

तुम तो यो ही कहते हो। मै कहती हूँ, नेक उसका ख्याल भी रख लिया करोगे, तो कुछ तुम्हारा बिगड नही जायगा।

मैने कहा—अच्छी बात है—

'अच्छी बात नही है.. ..'

मैने कहा—अच्छा, अच्छी बात नही है—

होते-होते वह सचमुच बिगड़ने-सी लगी।

मैंने कहा—तुम उसे नूनी फिर क्यो कहती हो ? नाम तो उसका सुनयना है। नूनी बनकर वह खिलवाड नही छोड़ सकती। और तुम कहना चाहती उसे नूनी हो, फिर चाहती हो, खेलना छोड दे। अर्थात् नूनी रहना छोड़ दे। तुम उसे नूनी रखना छोड दो. वह भी आप छोड देगी।

'हाँ मै सुनयना नही, और कुछ कहूँगी'—तुम्हारी मत कैसी है कि उल्टे मुझे ही कहते हो, यह नही कि उसे नेक बुलाकर समझा देते।'

मैंने कहा—अच्छा, अच्छा, तुम चाहती क्या हो ?

उन्होंने कहा—मै पाठशाला तो भेजना नही चाहती। अध्यापिका सब ऐसी ही होती हैं, बच्चेका नेक ख्याल नहीं रखती। और धमकावें मारे भी, इसका क्या ठीक है। नही, बच्चेको मै आँख-ओझल नही करूँगी। पर, एक पढ़ानेवाली और लगा दो। घरपर पूरे पाँच घण्टे उसे पढ़ना चाहिए।

मैने कहा—पाँच घण्टे!

तुम्हारा बस हो, तुम सारी उमर उसे खेलने दो।

मैने कहा—पाँच घण्टे बहुत होते है। एक घण्टा पढ लेना बहुत काफी है। यों अभी जरूरी वह भी नही है।

तुम्हारे लेखे जरूरी कुछ नही है। सिर तो मेरे बीतती है।

मैने कहा—अच्छी बात है, एक घण्टा मै पढा दिया करूँगा।

तुम पढ़ाकर रखोगे? यह होता तो दिन ही अच्छे न होते।

मैने कहा—समझो, अब दिन अच्छे आगए। मै पढाऊँगा।

पढ़ाना,—कही तमाशा करो—

जैसे पढाऊँगा पढा दूँगा। यह काम तो मेरे ऊपर रहने दो।

वह आश्वस्त और प्रसन्न होकर बोली—अच्छी बात है। मैं देख लिया करूँगी।

और वह चली गई और मै अपने काममे लग गया।

पर कुछ ही देरमे वह लौट आई, और मेरे सामनेके कागजोको सरका देकर मेजके पास खड़ी हो रही। जिज्ञासा-भावसे मै उनकी ओर देखकर रह गया।

बोली—तुम नाराज तो नहीं हो गए? देखो, नाराज मत होना। मै क्या करूँ? मेरा मन कहता है, बिट्टनको खूब पढ़ाना चाहिए, और खूब अच्छा बनाना चाहिए। इसीसे मै कहती हूँ।...

मैने कहा—ठीक तो है।

'..मेरे मन बिथा बड़ी होती है। तुम जानो, उसका ब्याह भी होगा। इसीसे मै इतना कहा करती हूँ।

मैने कहा—ठीक तो है।

और सोचा. लड़कीको ब्याह देनेके वक्तकी व्यथाको इतने साल दूरसे खीच लाकर अपने मनमे आज ही प्रत्यक्ष अनुभव कर उठनेवाला स्त्री-माता-का हृदय कैसा है?

सबेरे-ही सबेरे कोलाहल सुन पड़ा। जान पड़ता है, यह हो-हल्ला फिर नूनी-को लेकर ही है। नूनी नहीं होती घरमे, तब सब चुपचाप अपने-अपनेमे हो रहते हैं, मानों उन्हें अपने कामसे और अपने निजसे ही मतलब है, एक दूसरेसे कुछ मतलब शेष नहीं रह गया है। नूनी न हो बीचमे, तो हम दोनो तकको आपसमे बात करनेके लिए विषयका अभाव-सा लगता है। नूनीको लेकर आपसमें बोल लेते हैं, झगड़ लेते हैं, मिल लेते हैं। इस तरह खाली-से हम नहीं रहते। दिन भरे-से-हुए बीत जाते हैं।

सुना, कहा जा रहा है—तो नही पिएगी, तू दूध ?

'नहीं पीते।'

'नही पीती ?'

'हम नहीं पीएँगे !'

'देख लो, जीजी, यह तुम्हारी बेटीजी दूध पीती नहीं हैं।' यह जोरसे कहा गया।

और दूर चौकेसे नूनीकी बुआने कहा—दूध पी ले बेटी। कैसी रानी मेरी बेटी है।

रानी बेटीने कहा—हमें रोज रोज दूध अच्छा नही लगता—

नूनीकी माँने कहा—रोज-रोज खेलना तो बड़ा अच्छा लगता है!

बुआने चौकेसे आते हुए कहा—पी ले, बेटी, फिर खेलना।—और अपनी छोटी भौजाईको कहा—बच्चेको नेक प्यारसे कहो, सब मान जायगा।

'प्यारसे नहीं, मै तो बड़े गुस्सेसे कहती हूँ ? लड़की इसीसे तो मुँह चढ़ी है।'

बुआने कहा—पी, बेटा, पी—

मै अपने कमरेमें बैठकर यह सुनने लगा। मेरी बहन चली गई, और लड़कीने शायद दूध पीना आरम्भ कर दिया।

इतनेमे नीचेसे पड़ौसीके लड़के हरियाने आवाज़ दी—नूनी, ओ नूनी!

नूनीने कहा—आई!

नूनीकी माँने कहा—पहले दूध पी—(और कहा)—हरी, वह नहीं आयगी।

हरियाने ज़ोरसे कहा—नूनी, अरी आई नही।

इतनेमें मैने सुना—बच्चोंको कड़ी ताकीदमें रखनेकी उपयोगिताके सम्बन्धमे भाषण आरम्भ हो गया है, जिसमे श्रोतृवर्गमे केवल बालकोंके पिता लोग ही जान पड़ते हैं। और मेजपर शायद एक बाल-मूर्ति भी है, जिसको भली भाँति डॉट-डपटकर और मार-पीटकर भाषण, सामने-के-सामने, सोदाहरण परिपुष्ट किया जा रहा है।

मै समझ गया, नूनी अनुशासनकी मर्यादाको, हरियाकी बॉसुरी-की-सी आवाजपर, तोड़-ताड़कर अपने शिशु-अभिसारको संपन्न करनेके लिए भाग छूटी है। और मैंने जान लिया, अपने विक्षोभको खर्च कर डालकर स्वस्थ हो जानेके लिए, विवाद मोल लेनेको मेरी पत्नी अब फिर बहनके पास पहुँच गई हैं। और जो वहाँ होना आरम्भ हो गया, उसकी स्पष्ट ध्वनि भी मेरे कानोंपर आकर थप्पड़ो-सी बजने लगी।

मै उस ओरसे उदासीन होकर बाहर छज्जेपर आ गया, और गली देखने लगा।

नीचे देखता हूँ, इस चौबीसों घण्टे चलनेवाली पत्थरकी गलीको तो ये बालक लोग भरा-समन्दर बना बैठे हैं, और इस समन्दरमे अकेली खड़ी हुई नूनी नामकी मछली झुककर अपने टखने छूकर, कह रही है—' इत्ता!'

पर, मुझे तो कुछ भी मालूम न था। मछलीका नाम नूनी तो नहीं है, गोपीचन्दर है, और हरियाके साथ और पॉच-सात जने मिलकर, किनारे खड़े-खड़े कह रहे हैं—

' गोपीचन्दर, भरा समन्दर,
बोल मेरी मच्छी, कित्ता पानी!.. '

और गोपीचन्द्र जैसे सुन्दर नामवाली मीन अब-के घुटनो तक ही झुक सकती है, क्योंकि समुद्र इस बीच घुटनो तक बढ़ आया है, और बतलाती है—इत्ता!

समुद्र क्षण-क्षण बढ़ रहा है, और उस मछलीके मनकी चौकसी भी बढ़ रही है। वह देखो, जो अबके गाकर और चिल्लाकर पूछा गया है ' कित्ता?' तो वह दोनों हाथोंको कटिपर रखकर, एक ठुमकी लगाकर बतला रही है, 'इत्ता।' हाय-हाय, देखो उस बेचारीके कटितक समुद्रका पानी आ गया है, वह सिर तक डूबनेको होती जा रही है।—

और मुसाफिर भाई, तुम बेखटके इस गलीमेसे निकलते चले जाओ। तुम्हारे लिए रोक-टोक नही है। पानी तुम्हे नहीं छुएगा। किनारे खड़े ये जो ऊधम करते हुए लड़के-लड़कियाँ हैं, सो ये अब शरारत करके समन्दरपर हमला करनेवाले हो रहे हैं, और गोपीचन्द्र नामकी अकेली मछली ही अपने राज्यकी रक्षा करनेके लिए कटिवद्ध हुई गलीके बीचमे खड़ी है। मुसाफिर, तुम झटसे निकलते हुए चले जाओ, नही तो ये लोग समन्दरमे घुस पड़ेंगे, तब वह कुछ नही जानेगी, एकाधको जरूर पकड़ लेगी, और तब उसे उसीकी तरह गोपीचन्द्र नामकी मछली बनकर समन्दरमे रहकर पहरा देना होगा।

और उनको भी तो देखो। कैसे उल्लसित बाट देख रहे है कि पानी उस समन्दरकी रानीके कान तक आया नही कि वे हुकमतकी स-धूमधाम अवज्ञा करके समन्दरमे घुस पड़ेगे और जोर-शोरसे मल-मलकर नहा डालेगे।

पर, मत समझो, रानी चौकन्नी नही है। उसके राज्यमे पैर रखकर देखो तो—। वह एक-एकको ऐसा पकड़ती है कि—हाँ।

सबने पूछा—मच्छी-मच्छी, कित्ता पानी ?

मच्छी-रानी एकदम अपने दोनो तरफ देखती हुई सतर्क हो रही। वह सबको खूब अच्छी तरह ताड रही है—

उसने कान तक हाथ बढाया, कहा—'इत्ता।'

और सब धम्म-धम्म गलीके पत्थर कूदकर बदन मलते हुए नहाने लगे।

मच्छी रानी हँसती हुई इन चोरोको पकड़नेके लिए दौडने लगी।

वह पास आती कि नहानेवाले उछलकर किनारे हो रहते। बेचारी मछली, पानी छोड़, किनारेकी खुश्कीपर कैसे पैर रख सकती !

पर, सामनेको दौड़नेवाली होकर जो एकदम मुड़कर पीछे लपकी कि एक कुर्त्तेका छोर मुट्ठीमे आ गया। रानी चिल्लाई—'पकड़ लिया' और हँसती हुई हाँफने लगी।

श्री० हरिश्चन्द्र इस चोर-कार्यमे युक्त पकडे गए। और पकड़े जाकर वह भी निर्लज्ज हो हँसने लगे।

नौकरने नूनीका हाथ पकड़कर कहा—चलो, बहूजी बुलाती हैं।

नूनीने हाथ छुटाकर कहा—नहीं जाते।

नौकरने छूटा हुआ हाथ जोरसे पकड़ लिया।

वह मचल पड़ी—हम नही जायेंगे, नहीं जायेंगे !

खेल भग हो गया।

मैने ऊपरसे कहा—छोड दो।

नौकर छोड़कर चला गया।

मै अपनी मेजपर आ गया।

खेल फिर अवश्य आरम्भ हो गया होगा।

बहूजीने पूछा—कहाँ है ?

नौकरने कहा—आती नही—

बहूजीने कहा—इस लिए तुझे भेजा था ? कहे, आती नही ?

नौकर—बाबूजीने मने कर दिया।

'कौन बाबूजी ?'

नौकरकी कुछ आवाज न आई।

'बाबूजी कौन होते हैं !—तुझसे मैने कहा था या और किसीने कहा था ?—चल, ला उसे।'

नौकर बाहर आया, और मैने छज्जेपर पहुँचकर फिर कह दिया—रहने दो, छोड दो।

लड़की सहमी, और फिर खेलने लगी।

नौकरने मेरी ओर देखा—बाबूजी !—

मैने कहा—तुम जाओ, कुछ बात नही है।

नौकर लौटकर आ गया। उसकी बात बहूजीने चुपचाप सुन ली। कुछ भी उन्होंने नही कहा। उन्ही कपड़ो बाहर आई, रोती-पीटती नूनीको खचेड़ती ले चली।

भीतर आकर बोली—तेरे बाबूजी अब आकर रोके न मुझको !

मैने सुन लिया और मै कमरेसे निकलकर उनके सामने नही जा पहुँच सका।

नूनीको एक कोठरीमे मूँद दिया गया।

❦

मूँद तो दिया गया, पर मुँदा रहने दिया जाता कैसे ? क्योंकि माँने बेटीको मूँदा था। और क्या मै जानता नही कि इस बीच वह माँ रो भी ली खूब ?

बहुत था, जी बह जाना था। लेकिन मैंने खाना न खाया, और शामको भी न खाया।

वह क्या गजब किया मैंने ?

क्यों कि जब मैंने कहा—मैंने लड़कीका एक घण्टा पढ़ानेको लिया है। मेरी यही पढ़ाई है। अब तुम इसमें दखल देने नहीं पाओगी। तब उसने आँसुओंसे सब कुछ, सब कुछ, स्वीकार कर लिया।

पर चौथे रोज वह मायके चल दीं।

× × × ×

वह आ गई हैं, और मेरी बात सब झट मान लेती हैं।

पर हाल वही है। क्योंकि लड़कीको पढ़ना है और पिटकर दुबली होगी, तो डाक्टर हैं, और डाक्टरके लिए पैसा है,—पर, लड़कीका पढ़ना है।

मैं कहता हूँ—अच्छा बाबा।

और अकेलेमें नूनीसे मच्छी-मच्छी खेलना चाहता हूँ। और नूनी खेलती नहीं, मुझसे किताबके माने पूछती है।

आलोचक
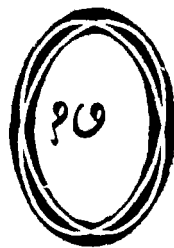
वीरेनने आकर कहा—आप चलते नही हैं ?

मैने कहा—कहाँ चलना होगा ?

"—कान्फरेन्समे नही चलिएगा ?"

यह उसने इस तरह कहा, जैसे पूछता हो—बाजार नहीं चलिएगा ?

वीरेन अच्छा लड़का है। पर अपना पढना उसे याद है। एम० ए० पास कर गया है, और थोड़ी बहुत अविनयसे डरता नही है।

कान्फरेन्स बाजारकी दूकान नही है। इसमे तमाशबीन या ग्राहककी वृत्तिसे जाना ठीक जाना नहीं है। लेकिन वीरेन ऐसा ज्ञानी है कि आलोचक बने बगैर उससे रहा नहीं जाता। आलोचनाका काम सरल नही है। पर, वह काम उत्पादक भी नही है। मैने कहा—वीरेन, भाई आज किस कान्फरेन्समें जाना होगा ?

वीरेन बोला—आज अच्छी चीजकी कान्फरेन्स है। सोशलिस्ट कानफरेन्स है। और वहाँ यह बात नहीं है कि सब देसी नागरी बोलनेवाले मिले। वहाँ पढ़े-लिखे लोग भी आयेंगे, जो अँगरेजीमे बोलेंगे और सेन्स बोलेंगे।

मैंने मिर्जई बदल ली, सोटा लिया और कहा—अच्छा भाई, चलो। हम अँगरेजी जानते हैं, सो उसका दण्ड भी, तुम्हारे साथ भुगतना होगा कि कान्फरेन्समे जायँ और सुने।

वीरेन हर विषयपर कुछ कथन रखता है। वह राय अपनी बनाता है। जो समझमे नही आती, चाहे वह बाबाकी बात हो, चाहे गुरुकी, चाहे शास्त्रकी, वह हिम्मत रखता है कि उसे अस्वीकार कर दे। मैंने कहा—वीरेन, तुम तो सस्कृत भी जानते हो, हिन्दीके लेखक भी हो। सोशलिस्टके लिए कोई हिन्दी शब्द तो बनाओ। अन्यथा सोशलिस्ट शब्दके भावके मूल तक हमसे नहीं पहुँचा जाता।

वीरेनने कहा—समाजवाद, साम्यवाद—ये शब्द तो हैं। हाँ, सोशलिज्मसे अलबत्तह यह हलके हैं। और पंडितजी, आप तो अँगरेजीके इतने बड़े पंडित होकर मेरा मज़ाक करते हैं।

पर मजाककी बात नही थी। अँगरेजी शब्दकी मूल प्रकृति हमारे निकट कुछ परदेसी-सी ही रहती है। यों, अँगरेजी बोल-लिख लेते हैं तो क्या।

हमने पूछा—क्यो भाई, तुम सोशलिस्ट हो?

वीरेनकी मौज यही है कि वह श्रद्धापूर्वक कोई मतावलम्बी नही है। उसने कहा—नही साहब, मैं किसी इज्ममें नहीं हूँ। मै बँध नही सकता। हरएक इज्म मेरे लिए एक साइस है। और सोशलिज्म! हा-हा! आप जानते हैं क्या? एक बार एक विद्वान् सोशलिस्ट मिले, तब बात करते हुए मैने कहा—तुम धोती-बण्डीके ऊपर और घुटे सिरपर एक बहुत बड़ा, बहुत ऊँचा और बहुत अच्छा हैट पाकर जमा लो, और कहते-कूदते फिरो कि देखो, क्या बढिया हैट है, तो हैटका बढियापन मालूम होनेसे पहले लोगोंको तुम्हारी अक्लका बढियापन ही मालूम होगा। हैट प्रशसनीय होकर भी तुम उपहास्य होगे। यह सुनकर मेरे प्रतिपक्षी सोशलिस्ट महाशय बड़े खफा हो गये।

मैंने कहा—वीरेन, तुम किसीके प्रयत्नको दूकानदारीके अलावा क्या कुछ और नही समझ सकते? क्या नेकनीयतीका श्रेय किसीको देना तुम्हारे लिए दुष्कर है? व्यक्तिका आदर तुम्हारे लिए कठिन है?

वीरनने तपाकसे कहा—पंडितजी, वे लोग पुराने होंगे, जो ईमानदार होते होंगे। अब ईमान उत्तर है तो सफलता दक्षिण। यह कानफरेन्से, यह सोशलिज्म, यह कांग्रेस, यह देशभक्ति—सब बाते हैं। सब शगल, सब व्यवसाय।

वीरेन जब इस तरहकी बाते कहता है, तब लगता है कि उसने दुनियाके भीतरके तत्त्वको पा लिया है। जैसे दुनियाकी नस-नस उसने देख ली है। हमे साठ बरसके होनेपर भी ऐसा अविश्वास करना नही आया। और वीरेनकी क्षमता देखो कि भरी जवानीमे विश्वासको धता बतला सकता है। उससे ईश्वरकी बात करके देखो, और वह झट बता सकेगा, किन चालाक आदमियोंकी चालाकीका प्रतीक यह ईश्वर खड़ा है, और कैसे यह ईश्वर रग-रगमे मिथ्या है।

❦

सड़कपर चल रहे थे कि पाससे एक बढिया इक्का गुजर गया। (यह पटनेकी बात कहता हूँ।) घोड़ेके सिरपर कलगी लगी थी, गर्दनमे बसन्ती दुपट्टा

बँधा था, माथेपै बड़ा लाल टीका। इक्का फैन्सी था और जगह-जगह लगी हुई पीतल चमचमा रही थी। सरपट चालसे वह निकला और हमारी आँखे अनायास उसकी ओर उठी। दो स्त्रियॉ उसपर बैठी थी। स्त्रियॉं कहूँ या रमणियॉ ! उम्र दोनोकी बीसके लगभग होगी। रग साँवला, आकृतिमे बुद्धि-प्राचुर्य न था। खादीकी केसरिया साडी थी और कत्थई पाड। सिर तीन-चौथाई खुला था और बाल घने होकर फैले थे। एककी ओर मेरा ध्यान विशेष रूपसे गया। अगले हाथकी हथेलीपर अपना सारा बोझ दिये वह उन्मन, प्रगल्भ ऐसी बैठी थी कि उसे न दुनियाकी परवा है, न दुनियाके कहनेकी। दुनिया है तो हो, रहे, उससे उसका कुछ नही अटका है। आँखे उसकी भरपूर खुली थी। माथेपर एकाध बल था। और जैसे उस त्योरीका सम्बन्ध किसी वस्तु-विशेष या परिस्थिति-विशेषसे न था, प्रत्युत मानो वह ब्रह्माण्ड-भरके लिए था, और किसीके लिए न था।

इक्केवाला, जिसका साफा बूँदीदार था और पहलवानी तरीकेसे बँधा था, पैरकी घटी बजाता हुआ, कोई तराना गुनगुनाता, सरपट, बेखटक इक्केको लिये जा रहा था।

यह दृश्य मेरे मन प्रीतिकर न हुआ। वह भीतरको सकुँच-सा आया। जीमे ग्लानि-सी हुई। यह खद्दरधारिणी महिलाऍ हैं ? यह देश-सेविकाऍ हैं ? ये कहॉ जा रही हैं ? ये क्या चाहती हैं ? सबको क्या पैरो-तले देखे बिना इन्हे चैन नही है ? क्यो ये विजयकी चाहके पीछे ऐसी परेशान हैं ?

वीरेनने कहा—देखा आपने ?

मै चुप रहा। मैने देखा था, लेकिन मेरे लिए यह वाचाल होनेकी बात न थी।

वीरेन बोल उठा—उसने स्त्री-शिक्षापर बहुत-कुछ कहा। उसे खेद न था। वह राष्ट्रको धन्यवाद दे सकता था कि स्त्रियोमे जागरण हुआ है, कि स्त्रियाँ पुरुषको चुनौती दे सकती हैं, कि वह निर्भीक निःशक, हॉ निर्लज्ज भी होकर, अपनी अहताका सिक्का जमाने सामने आई हैं।

वीरेन चाहे जो कहे, मेरा जी भीतर भीतर छोटा हो रहा था। स्त्रियॉ लगर कसकर पुरुषसे बदने मैदानमे आना चाहे, तो बेशक क्यो न आएँ ? रोकनेवाला मै कौन ? लेकिन वे खम ठोककर बदाबदी करने आना चाहे, इसीपर मुझे क्लेश होता है। वह परिस्थिति नहीं भली है, और वह मनोवृत्ति नही शुभ है, जहॉसे यह चाह बनकर उठती है।

वे लड़कियाँ!—और मेरे लिए स्त्रियाँ सब लडकियाँ हैं। उम्रमे बहुत अशक्त हूँ, इसलिए नहीं। पर कौन स्त्री ऐसी है, जो बच्ची नहीं है? स्त्रीमात्र बच्ची है, छोटे-छोटे झूठोंसे खेले बिना उसका जी आधा रहता है। वह सदा बेचारी है, मुझे उसपर अनुकम्पा होती है। वे लडकियाँ!—मैं याद करता हूँ, और मेरा मन सिकुड़ता-सा है।

शिक्षा यदि विनीत न बनाए, तब भी क्या वह मिलनी ही चाहिए? तब भी क्या वह शिक्षा है? जो उलझन पेदा करे वह भी शिक्षा है? जीवन सरल न बने, सुलझा न बने, व्यर्थताके आडम्बरका लालच रहे और बढ़े, तो वह शिक्षा है?

इसी तरहकी बहुत-सी बातें मै सोच गया। मुझे मालूम हुआ, हम बढ़ नही रहे हैं, गिर रहे हैं। और इस तरह यह खुले मुँह और मुखरबुद्धि, शिक्षिता कहलानेवाली हमारी लड़कियाँ इसका प्रमाण हैं।

पर, कान्फरेन्स...

कान्फरेन्स हुई और भाषण हुए और प्रस्ताव हुए और मै दग रह गया। वक्ता लोग धारा-प्रवाह वक्तृता दे सकते थे, और यह बात तनिक उनकी अँगरेजीमे हिचक न डाल पाती थी कि सुननेवालोमेंसे आधेसे अधिक लोग अँगरेजी नही समझते। और वे आधेसे अधिक लोग भी मुग्ध और विश्वस्त थे कि बात मर्मकी और ज्ञानकी कही जा रही है, क्योकि वह अँगरेजीमे है। मैं अँगरेजी जानता हूँ, लेकिन कान्फरेन्समे लोग भूलकर भी बात नहीं करते थे, भाषण ही करते थे और मुझे ऐसा मालूम होता था कि उनके मुँहमेसे पुस्तक शुद्ध और साफ बोल रही है, हृदय नहीं बोल रहा है।

वीरेनने कहा—पडितजी, सुनिए। बात तारीफकी यह है कि बात बड़ी नही है, फिर भी बोला किस बडप्पनके साथ जा सकता है।

मैंने कहा—यहाँ भीड़ बड़ी है। दम घुट आया, चलो बाहर चले, कुछ जल-पान करेंगे।

और मै बाहर आ गया। वीरेन व्याख्यान सुनता रहा। बाहर आकर मैने खुली साँस ली। हवामे वक्ताओंकी वाणी-सा जोश नही था, और मुझे यह प्रीतिवर्धक जान पड़ा।

इतनेहीमे दो कालेजके-से लडकोने मेरे पास आकर विनयपूर्वक प्रणाम किया। उन्होंने कहा—पडितजी, आइए, चलिए अन्दर बैठिए।

मैंने कहा—मैं अभी अन्दरसे आया हूँ, कहो; तुम लोग प्रसन्न तो हो ?

इतनेमे एक तीसरा व्यक्ति एक कुरसी उठा लाया, कहा—पण्डितजी, इसपर बैठिए ।

मैंने कहा—भाई, कष्ट न करो, हम ठीक हैं ।

युवकोंने पूछा—पडितजी, आपकी क्या सम्मति है ? सोशलिज्मके बिना कुछ हो सकता है ?

हमने कहा—भाई, हम पहले समझते थे, ईश्वरके बिना कुछ नही हो सकता । अब यह बात गलत होती जाती है । जो खूब करने-धरनेवाले है, वे ईश्वरपूर्वक तो कुछ नहीं करते हैं । इसलिए अब हम क्या कहे कि किसके बिना क्या नहीं हो सकता ।

युवकोंने बताया—जनसख्याका पिचानबे प्रतिशत अश क्या है ? निर्धन, मजदूर, कृषक । मनुष्य-जातिका भला, यानी इनका भला । जिसमे इनका भला नहीं, उसमे अवश्य मनुष्य-जातिका अकल्याण है । इसलिए अधिकार किसका हो ? शासन किसका हो ? सरकार किसकी हो ? बुद्धि-जीवियोकी नहीं, धनाढयोकी नहीं । काम करनेवालोके हाथमे पैसा हो, उन्हींके हाथमे जमीन, उन्हींके हाथमें कानून बनाना और उन्हीके हाथमे कानून पालन कराना,—यह सोशलिज्म् चाहता है । कोई भी नेकनीयत आदमी यह चाहनेसे कैसे बच सकता है, क्यो पडितजी ?

हमने कहा—ठीक है, बेटा । हम यहाँ जरा हवाके लिए आ गये हैं । हमें किसी बातकी आवश्यकता नही है । तुम लोग हमारे पीछे व्याख्यान सुननेमें क्षति डालना आवश्यक न समझना ।

उन्होने कहा—नही नही, पडितजी ।

और वे फिर मुझसे चाहने लगे कि मै कहूँ सोशलिज्म् मिथ्या है; नही तो मानूँ, सोशलिज़्म मोक्ष है ।

मैने कहा—देखो भाइयो, बहुतसे 'इज्म' हैं । या तो मनुष्य इज्मोके ऊपर है, या नीचे है । नीचे है, तो वह गुलाम है । और गुलामीसे आदमीको छूटना चाहिए । ऊपर है तो यह अर्थ कि इज्म एक वाद है, अपेक्षा-कथन है, और मनुष्यको उस अपेक्षाको न भूलना चाहिए, जो उस वादमें प्रतिफलित है ।

उन्होने ज़िद की कि मुझे प्रश्नसे बचना नही चाहिए, और मुझे बताना होगा कि मैं सोशलिस्ट हूँ या नहीं हूँ।

मैंने कहा कि मैं आदमी अपने ढँगका रहना चाहता हूँ। इसलिए सोशलिस्ट भी अपने ही ढँगका होऊँगा। किताबमे जो ढग नियुक्त है, उस साँचेका सोशलिस्ट शायद मै न होऊँ।

वे जवान लोग मुझसे एकदम उलझना चाहते हैं। और दलीलमे, मुझमें कट्टरता नही है इससे, मुझे जीतका भरोसा नहीं रहता। मै इसलिए दलीलसे बचता हूँ। मैंने इधर-उधर देखा कि कही कुछ खाने-पीनेका साधन है या नही। इस तरह मुझे उखड़ा हुआ-सा देख जवान लोग मुझे धीरे धीरे अकेला छोड़ गये।

तभी मैंने देखा कान्फरन्सके हालकी बाई तरफसे वही दो लड़कियाँ चली जा रही हैं। चाल अनमनी है, और चेहरेपर वही उपेक्षाका भाव है। मानो वे किसी निर्जन स्थानमे घूम रही हैं। आसपास तरह-तरहके आदमी हैं, तरह-तरहके रग हैं—मानो इससे उन्हें कुछ वास्ता न था, इसका कुछ बोध न था। मेरे मनमे वही वितृष्णा फैलने लगी। फीकापन-सा छा आया और वैसे ही अप्रीतिकर विचार उठने लगे।

पैरोमे उनके चप्पल थीं, सिर उघड़ा-सा था, धोती सादी और भारी थी, मुँहपर उदासी और अँधेरा। और सारी आकृति और चालमे कुछ ऐसा फक्कड़पन और अलहड़पन था कि मुझे बिलकुल नही भा रहा था। जैसे उनकी रुचि योग्य न मै हूँ, न कोई और है। जैसे उन्होंने अभीसे सब देखा और सब हेय है। जैसे वे स्वय स्त्री हैं, यह विश्वपर कृपा है। और वे इस कृपाका दान भी कर सकती हैं, पर जगतमें पात्रता नही है। पर देखो, किसीसे उनका लगाव नहीं, किसीसे वास्ता नही, किसीकी तरफ जिम्मेदारी नही, कोई कर्तव्य नही। जैसे छूटी जगली गाये हो।

मैंने चाहा, मै उनकी ओरसे मुँह फेर लूँ। उनको देखकर जीका चैन उडता था। मैंने देखा, दूसरी तरफ खोमचेवालोकी दूकानें हैं। उनके फैले मालकी तरफ देखना अच्छा लगता है। वहाँ कुछ है, जो सुस्वादु है, और मानो हमारा स्वागत करता है। लेकिन मेरा मन, हठकर, उधर-ही-उधर जाता था। हठात् मैंने मुड़कर देखा—वह निरुद्देश्य, निर्व्याज, निश्शक, निर्लज्ज उसी भाँति घूम रही थीं। वे कुछ दूर आती थीं, फिर लौट जाती थीं, फिर आती थीं, फिर लौट जाती थीं।

...क्या ये यो ही हैं ? क्या इन्हे कुछ काम नहीं है ? क्या इन्हें घर प्राप्त नहीं है, कि कुछ झाड़ू-बुहारी करें, चौका-बासन करे ? क्या इन्हे कोई और प्राप्त नही है जिसकी सेवा-टहल करे, परिचर्या करे ? क्या सेवा-कर्म इन्हे दुर्लभ है ? क्या रोटीसे ये बेफिक्र हैं ? इस प्रकार देखना और घूमना—क्या यही इन्हे शेष है ?...अरे, ये क्यो नही अपने घरमे हैं ? क्यो इस तरह यह निष्प्रयोजन बनी हैं ?...

तभी स्थानीय पब्लिक कॉलेजके एक प्रोफेसर बढते हुए आये। उन्होंने कहा—वाह पडितजी ! आप भी पधारे हैं ? आइए, आइए, अन्दर बैठिए।

हमने कहा—हम बाहर ही ठीक हैं। और बातचीत होने लगी।

प्रसग-प्रसगमे उन्होने पूछा—आपने ताजी खबर सुनी है ?

हमने बताया—हमने नही सुनी। कोई भी खबर जब तक ताजी रहती है, हमारे पास तक आना कभी गवारा नही करती। हम तो इस दुनियामें कई दिन लेट होकर जिया करते हैं।

प्रोफेसरने बताया—धरणीको आज सबेरे फॉसी लग गई। हिन्दुस्थानके जीकी चोटकी किसे फिकर है ? सब कोशिश, सब प्रदर्शन, सब अरदास व्यर्थ हुई।

मैं सुनकर सन्न रह गया। यह नही कि हमारे प्रान्तका हर व्यक्ति महीनोसे धरणीकी फॉसीकी खबर सुननेके लिए तैयार न रह रहा था। फिर भी जब वह एकदम घटित घटना बनकर आई, तब उसकी भीषणता बेहद चोट देकर लगी। धरणी मुझसे पढ़ चुका था और अच्छा छात्र था।

बात-बातमे फिर प्रोफेसरने बताया—देखिए, वे दो स्त्रियॉ दीखती हैं न, जानते हैं, कौन हैं ? इधरवाली उसकी पत्नी है, दूसरी उसकी बहिन। दुनियामे अब उनका कौन रहा है !

मेरे मनपर जैसे वज्र पड़ा।—धरणीकी पत्नी और बहिन !

...और, मैं कह दिया करता हूँ, वीरेन आलोचक है !

नादिरा

हम तीन काश्मीरके लिए चले। मै, श्यामजी नारायण एडवोकेट और हृदयनाथ।

श्यामजीभाई प्रतिष्ठा, पैसे और कुनबेके भरे आदमी हैं। हृदयनाथ हृदयका और कुलका रईस है और उसे बुद्धिमान होनेकी तनिक भी चिन्ता नही है। खुले दिल, खुली बात और खुले हाथका आदमी है।

रावलपिण्डी आनेपर मालूम हुआ कि इस साल सर्दी ज्यादा है और अभी काश्मीर जानेके दिन नहीं है। वहाँ बरफ पड़ती होगी।

तब श्यामजी नारायणकी सम्मति हुई कि इतने पन्द्रह बीस रोज यहाँ ही ठहरा जाय। पास ही अटक है, तक्षशिला है। उन्हे देखा जा सकता है। पुरानी जगहे हैं। तक्षशिलामे तो गड़ा नगर ही खुद निकला है।

मुझे बासी लोगोंके इतिहाससे चिढ है। यह बासी इतिहास जिन्दगीके किस काम आता है? इतिहास पढकर बहुत कम लोग जीवनके साथ उसका तारतम्य बैठाते हैं। बहुत कम पुरानी बातोको इस लिए जानते हैं कि उनसे आधुनिक बातोंका सामजस्य और साम्य सिद्ध किया जाए। इतिहास सिरमें भर रखनेकी ही चीज़ है क्या? क्या इतिहास वह चीज़ नहीं है, जिसे पचानेकी भी जरूरत है? भीतर पहुँचे, पके, गले और जीवन-रक्त बनकर हमारी धमनियोंमें प्रवाहित हो, क्या यह जरूरी नहीं है? पर इतिहास और इतिहासके ककालकी ठठरियोमे खूब जान-पूछ और खोज-बीन करनेवाले लोग इतिहासको भोजन बनाते ही नहीं, लादे रखनेको बोझका गट्ठड-सा बना लेते हैं। वह मानो

आलमारियों और दिमागके कोनोंमें जमा रक्खा रहनेवाला शास्त्रीय पदार्थ है। वह उनको सप्राण नहीं बनाता, बोझल करता है। इससे इतिहासज्ञ और इतिहासार्थीसे मेरी उलझ पडनेकी इच्छा होती है।

मैंने कहा—काश्मीरमे बरफ पड़ती है, तो और भी भला है। तब तो जरूर ही चलना चाहिए। यही देखनेका तो मजा होगा।

एडवोकेट धीमेसे मुस्करा दिया। मानो कि बुद्धिमत्ता मेरी बातके साथ यही कर सकती है—सविनोद उपेक्षासे जरा हँस ही सकती है।

मैंने कहा—कहो हृदयनाथ, तुम क्या कहते हो? हिमालय तक्षशिलासे पुराना नहीं है? हिमालयके शीर्षपर और देहपर और उससे भी कही अधिक उसके हृदयमे इतिहाससे कहीं गभीर रहस्य और विलक्षण वैचित्र्य नही है? हम सब सर्दीसे और बरफसे डरते हैं। हम क्यो प्रकृतिके उस स्वरूपसे भयभीत होकर वचित रह जायें, जो हमने कभी पाया नही, पर जो अवश्य रहस्यमय है, विराट् है।

हृदयनाथने कहा—छोड़ो श्याम बाबू, न तक्षशिला चलो, न काश्मीर चलो। पहाड़ीकी तलहटीके किसी गाँवमे चलो। सूखे मैदानसे भी अलग होंगे और पहाड़की तुम्हारी भीष्मता भी पास रहेगी। जब सर्दी सर्दी है और हम ऐसे हैं कि हमारे बदनको वह लगती है, तब कोरी उत्सुकतामे पडकर उसमें झुक पड़ना नादानी है।

मैंने कहना चाहा कि तुम सब लोग भीरु हो। प्रकृतिको खेलने दो और उसके सब खेलोंमे उसका साथ देने लायक अपनेको बनाओ। घबड़ाओ मत और सबमे सौन्दर्य निहारो। लेकिन मैंने कुछ कहा नही और देखने लगा कि एडवोकेट क्या कहते हैं। हृदयनाथने भी उनकी तरफ देखा।

एडवोकेटने मानो "ओह, सब ठीक है—तुम बच्चे हो, तुम्हारी बात ही सही" इस भावसे कहा कि भाई, श्यामबाबू क्या कहते हैं, उनसे भी तो पूछो। और यह कहकर वह फिर मुस्कराए।

मैंने कहा—मैं कहता तो यही हूँ कि काश्मीरके हरियाले और श्यामल वसन्ती रूपपर हम मुग्ध हैं, तो जब धौली हिमकी चादर ओढ़े वह निराभरण हो जाती है तब हम उसकी ओरसे विमुख न हो। इतिहास और पुरातनका लगाव हम छोड़े, विराट्, उज्ज्वल और अधुनातनके प्रति निर्भीक बनें, उसका स्वागत करें,......यो जैसी आपकी इच्छा!

एडवोकेटने कहा—श्याम बाबू, आप तो पूरे कवि हैं। और यह कहकर मानों उन्होंने स्वीकार किया कि मै सहानुभूतिका पात्र हूँ।

हृदयनाथ गंगा गए तो उसका दास है, जमनाके पास जमनादास है ही। जमना जानेपर गंगाकी भक्ति उसे आड़े नही आती और गगा पहुँचकर, जमना आप ही आप पीछे पड़ जाती है। दुनियामे निरे-निरे सदाशय और सत्यार्थी आदमीको ऐसा ही होना होता है। उसे सबकी बातोमे कुछ सच दिखलाई देता है। तब स्पष्ट ही है कि प्रबलकी बात अधिक सच लगती है। क्योंकि ऐसा न होता तो प्रबलके प्रबल होनेका अवसर ही कैसे आता?

उसने कहा—हाँ, श्यामबाबू, आप कविता क्यो नहीं किया करते? करे तो आप कमाल करे।

मैने कहा—'अच्छा, अच्छा,' और मालूम करना चाहा कि अब कहाँ जानेकी ठहरती है!

पूछ-ताछ करनेपर पास ही एक गॉव मिला। वहीं जाना तय हुआ। वह बिल्कुल पहाड़के चरणोमे बसा है, सुन्दर है, और वहाँ जलकी और वनस्पतिकी खूब ही बहार है।

२

गाँवके दाये तटसे पहाड एकदम ऊँचा उठा चला जाता था। उसकी चोटीकी तरफ देखते डर लगता था। एक पहाडकी चोटी ऊपरसे टेढी हो गई थी। ऐसा लगता था—अब गिरी, अब गिरी। वह किस भॉति यो धरतीके प्रति पचहत्तर अंशका कोण बनाये अधरमे लेटी थी, विधाता जाने। रातको काला-काला ॲधेरा-सा वह पहाड़ गुम सुम खड़ा हमे न जाने क्या समझता रहता होगा। हम दिया-बत्ती जलाकर, आगपर रोटी सेककर, बातचीत करने और चलने-फिरनेवाले प्राणी, उसके चरणोमे जी रहे थे। भीतरसे जो पत्थर-पत्थर है, पर ऊपरसे हरियाली ओढे है, जिसमे पानीकी रजत-धाराये लहराती हुई खेलती हैं और जिसकी देहपर जाने कितने प्रकारके विषधर और अमृत-प्राण प्राणी और नाना गुणो और रहस्योको धारण करनेवाली जडी और बूटियाँ, कँटीले झाड और फूलोसे लदी झाडियाँ हैं, जो अनन्त-वैचित्र्य, अनन्त-प्राण, अनन्त-कथा, अनन्त-इतिहास और

अकल्पनीय-मानव-मूल्यको लेकर चुपचाप आकाशकी ओर माथा उठाए खड़ा रहता है—उस पहाड़पर मै सबेरे भी चढने लगता था, शामको भी चढ़ता था।

मै चढता था और विस्मयसे भर-भर जाता था। इस पहाडकी बनावटमें कोई गणित न था और न ज्यामिति-शास्त्रसे कोई परामर्श लिया गया था। गड्ढा कही भी बन सकता था और कोई पत्थर कहींसे भी उभर आ सकता था। जिस झाडीको जहॉ जगह मिले लग जाए, कोई रोक-टोक न थी। और पानी मन चाहे जहॉसे स्रोत फोडकर खिल-खिल हँसता निकल आसकता था!

जिसका सौन्दर्य हमारी व्यवस्था और सज्जाकी परिभाषाकी तौलमे कही अपरिमेय है, जिसकी विराटताके नीचे हम कीडे-से लगते हैं, जो हमे अपनी छायामे आच्छन्न कर लेता है, जो पत्थरका है, पर पानी झरता रहता है, जो मापपर नही बना है, पर जो हमारी माप-विद्याको अपने गहन सौन्दर्यसे विस्मित कर देता है, जो अचल है, पर विशाल है, दृढ है, पर हरा है, रात-सा काला है और आसमान-सा नीला है—मै उस पहाड़को देखता हूँ और सोचता हूँ—इसमे जी नही है? यह मुझसे बात क्यो नही करता? मुझे क्यो इसकी नीरव भाषाकी कुजी प्राप्त नही है?

देखता—छोटी-छोटी गायें, सफेद काली और भूरी; छोटी बड़ी बकरियॉ, झबरीली, चितकबरी और रगीली; खुट-खुट पॉव रखती हुई पहाड़पर चलती चली जाती है और फैल जाती हैं। एक उस चोटीपर है, तो वह देखिए, दूसरी सामनेकी चोटीपर घास चर रही है। चरती जाती है और रह-रहकर चारो तरफ देखती जाती है। इस बडे पहाडके साथ उनका इतना अपनापा है कि उसकी सिरपरकी घासको मुँह भर-भरकर यह गैयॉ बकरियॉ खाती रहती हैं और यह दैत्य पहाड भी उनके पैरोंके नीचे चुपचाप पडा रहता है।

और बकरियोकी कुछ न पूछिए। डर उनके पास नही, फिक्र उनके पास नही, पतली टॉगे और छोटे खुर उनके पास हैं जो डिग नहीं सकते। और उन्हे क्या चाहिए? तो लीजिए, जहाँ हमारी आँखको ठहरने डर लगता है, समुदरसे सात हजार फीट ऊपर, अधर शून्यमे बाहरकी ओर निकली हुई पहाड़की सुग्गेकी-सी उस चोचपर, बेधड़क बकरी पहुँच गई है और अपनी टॉगोको वहॉ थामकर नीचे जगतको ऐसे देखती है मानो सम्राज्ञी हो। देखो-देखो,

वहाँ वह कैसी खड़ी है ! पता ही नहीं चलता कि पिछले दो पैर कैसे टिक रहे हैं ! और अगले दोनो पैरोंकी टापोको कँटीली झाड़ीके माथेपर चढ़ाए उसका सिर खाये जा रही है । अरी भलीमानस, कही गिर न पडियो ! पर, 'गिरे उसके दुश्मन' इस बेफिकर भावसे वह बकरी झाडीका एकएक पत्ता चुन जानेमें लगी है ।

शामका वक्त था । गाँवपर छाया छा गई थी । पहाड़की जिस-तिस उभरी चोटीपर अभी धूपका अवशेष था । घड़ी-दो-घड़ीमे सूरज अब छिप जायगा । बकरियाँ चारो खूँट छाई थी । एक उत्तरके पहाड़की चोटीपर थी, तो दूसरी दक्षिणवालेकी छातीपर । तभी पहाड़मे टकरा-टकराकर बिलकुल गोल बन गई हुई एक गूँज मुझे सुनाई दी । आर्यसमाजी नही हुआ, नही तो समझ जाता कि आकाश घन-घोषसे 'ओ३म्' कह रहा है । वैसा घोर स्वर उससे पहले कानोंमे न पडा था । वह गूँजता था और गूँजता था । चारो ओरकी दीवारोंसे टकराकर नीचेके शून्य अकमे वह घनेपर घना होता हुआ घूम रहा था । धीरे धीरे क्षीण पडता हुआ वह लय हो गया । मैने सोचा, यह किसकी आवाज है ? कोई बहुत उच्च-घोष पुरुष होगा, यदि पुरुष है । थोडी देर बाद वैसी ही एक गूँज फिर सुन पड़ी । इस बार सब कुछ ध्वनिमे एकदम मिल नही गया था, कुछ अलग-अलग ध्वनियाँ भी थी । मात्र स्वर न था, शब्द भी थे । लगा, ध्वनिमे तारतम्य है, और आरोह अवरोह-सा भी है । जान पडा, कोई व्यक्ति ही है, अनहद ओ३म् नही है । किन्तु कौन व्यक्ति शखके समान ऐसा उद्घोषोच्चार कर सकता है । उस ध्वनिमे बृहद शख-सी कठशक्ति और अतुल फफडेका सामर्थ्य था । इस लम्बे-चौडे आदमियोंके प्रान्तमें भी कौन वह आदमी है, जो ऐसा बादलो-सा पुकारता है । वह गूँज धीरे-धीरे गूँज कम और आवाज अधिक होने लगी । वह कुछ स्पष्टतर होने लगी और पास आती हुई-सी लगी । शनैः शनैः उस भीम गर्जनकी गूँज न रही और अब स्वतः वह रव ही कानोंमें पडने लगा । वह रव जहाँसे आता था उस कठके आश्चर्यजनक सामर्थ्यको बतलाता था । मैं रुका रह गया । मै सोचता था, क्या असम्भव है, उस पहाडके साथ गानेवाला व्यक्ति इधरसे ही आ निकले । अवश्य ही वह भरी दाढ़ी, लम्बे डील और चौडे डौलका आदमी होगा । कुछ देर बाद वह ध्वनि राग बनने लगी और चीन्ह पडा अतिशय प्रबल कठसे गाया जा रहा है—

ओ आजा-आ, ओ आजा-आ

मेरे किसुन कन्हाई, आ-आ आजा।

मैंने सोचा इतने जगली और मर्दानी लताड़के साथ इस अँधेरेमे पहाड़के ऊपरसे किसुन कन्हाईको बुलानेवाला कौन है। आवाज निकट ही आती गई—

मेरे बसरीवाले आजा-आ-आ

मेरे बसरीवाले आ-आ-आजा

मुझे मालूम होता था कि गानेवालेको पक्का खटका है कि उसका बसरी-वाला किसुन कन्हाई हलकी टेरपर कान देनेवाला नही है। जैसे कि वह खूब जानता है कि वह किसुनजी बंसरी लेकर इस नीले आसमानके ऊपर कहीं जा बैठा है, और पूरे गलेकी टेर भी वहाँ तक पहुँच जायगी, इसका भरोसा नहीं है। इसीलिए वह कुछ रुककर मानो श्वासका सचय करके दुगुने रवसे फिर गा उठता है—

जसुदाके प्यारे आजा-आ-आ

राधाके प्रीतम आ-आ-आजा

मेरे किसुन कन्हाई आजा-आ-आ

ओरे बसरीवाले आ-आ-आजा

गीत मेरे पास ही आता गया और एकाएक मुझे जोरकी सीटी सुनाई दी। जैसे गार्ड झल्ला गया है कि गाडी क्यो खड़ी है और मनकी पूरी झल्लाहट फूँककर उसने सीटी बजाई है। एक, दो, तीन, रुक-रुककर तीन बार सीटियाँ बजी और उसके बाद फिर गाना शुरू हो गया—

मेरे राज दुलारे आजा-आ-आ

मेरे प्रीतम प्यारे आ-आ-आजा

यह गाना मेरे बहुत ही पास आता गया। ज्यो-ज्यो पास आता, मै अपने कानपर हाथ रखकर, गायककी कठ-शक्तिपर विस्मित होकर रह जाता।

कुछ देर बाद मै देखता हूँ कि जिस ओरसे गानेकी आवाज आ रही थी, उसी ओरसे एक लड़की चली आ रही है। बेगाना है, बेखबर है। मानों जैसे उसे खबर है तो यही कि यहाँ कोई नहीं है और इस सन्नाटेकी वही मल्का है। लम्बे बेपरवाह डगोसे वह बढ़ी चली आ रही है। वह...

तभी मैं हैरतमे रह गया। वह बढ़ी ही चली आ रही है और गाती आ रही है। गाती चली आ रही है—

मोरे बसुरीवाले आजा—आ—आ
ओरे बसुरीवाले आ—आ—आजा

उसको मैने देखा। देखा कि लड़की ही है। उसके कठमे वह घन-घोर स्व कहाँसे आया है? सलवार पहने है जो पिडलियो तक आगए हैं, घुटनोपरसे फटे हैं। ऊपर कमीज लटकी है जिसकी एक बॉह आधी हंाँनेके निकट है, दूसरी बॉह भी पूरी साबित नही है। सिरको जरा छूती और कन्धोपर पड़ी ओढ़नी नामकी एक चीज है। मालूम होता है कि गानेमे उसे विशेष आयासकी आवश्यकता नही होती है। सहज-भावसे ही मानों कदमोका साथ देने भरके लिए वह गाती चली आती है। सत्रह अठारह वर्षकी होगी। उठान उसका औसतसे विशिष्ट ही है। पीन वक्ष, पुष्ट देह, वह पूर्ण युवती है, पर वह पूरी बेगाना भी है। कमीजका काम लटकना ही नही है, अग ढकना भी है, जैसे यह भी हर समय उसे याद नही रहता, सिखाई सीखकी तरह उतर-उतर जाता है। तब, तब अगर आदमीकी निगाहपर उसकी निगाह पड़ जाय, तो वह झटपट अपनी कमीज़-ओढनीको ठीक-सा भी करती है, लेकिन फिर भूल जाती है। वह युवती है, और मै नही कह सकूँगा, सुंदरी नही है। वह धमकके साथ डग बढाती हुई चली आ रही है, गाती आ रही है—

मोरे पीतम प्यारे राजा-आ
मोरे मोहन प्यारे आ-आ-आजा!
ओ आजा-आ-आ! ओ आजा-आ-आ!!

वह मुझसे दस कदमके फासलेपर सहसा रुक गई। गाना भी रुक गया। फिर एकाएक बढी और बढ़ती ही आई और मेरे पास आकर खडी हो गई, मानो पूँछना चाहती है—तुम कौन? मेरे राजमे तुम कौन?

मैंने पूछा—बाले, तुम कौन हो? इस वक्त यहाँ क्या करती हो?

उसने दोनो हाथोको मेरी ऑखोके सामने नचा दिया—'नेई शमुजता' और इसके आगे शायद पश्तोमे कुछ कहा, जिसमे मैं 'मी नादिरा' इतने वाक्याशका यह आशय बना सका कि नाम नादिरा है।

मैंने उससे बात करना चाहा और जानना चाहा कि किस प्रकार वह ठठ

हिन्दीका गाना इतना शुद्ध गा लेती है। पर वह उत्तरमें हँसती, हाथ हिलाती और पश्तोमे कुछ बोल देती और मुझे कुछ विशेष सूचना न प्राप्त होती।

मैंने देखा वह बीच-बीचमे इधर-उधर भी देख लेती है। एक बार इस तरह देखनेमें उसकी निगाह एक तरफ जमी रह गई। मैंने उसी ओर दृष्टि करके देखा कि पहाड़के बहुत ऊँचे कँगूरेपर, एक अकेली बकरी घास चुग रही है। जरा इधर, और सैकड़ो फीट नीचे वह आ पड़ेगी! क्षणभर रुककर दो अँगुली मुँहमें डालकर नादिराने जोरसे सीटी बजाई। एक सीटी, दो सीटी और तब बकरीने मुँह उठाकर शान्तिके साथ चारो ओर देखा। उसी समय नादिराने मुँहको गोल बनाकर एक जोरकी आवाज की। मेरे कान बहिरे होने लगे। बकरी, जो फिर घासको मुँह लगानेको उद्यत थी, एकाएक चिन्तापूर्वक फिर चारों ओर देख उठी। 'पुई' 'पुई' यह आवाज़ नादिराने कई बार की, पर बकरी सुनकर भी मानो कोई कर्त्तव्य स्थिर नही कर सकी, खोई-सी ही रही।

इस समय नादिराके निकट मै जैसा था वैसा न था। उसके निकट जैसे इस समूची दुनियाका ही होना न होना एक-सा था। बस दूर, वह सामने बकरी उसके लिए थी और उसके निजके पास अपने मुँहकी तरह-तरहकी आवाजे थी, जिनको वह बकरी तक भेज सकती थी। इस बार उसने आवाज़ बदलकर तीखे वेदनाके शब्दोमे चीखा—'पुऑ पुआँ'। मुझे लगा जैसे कुएँके तटमे नीचे गिरते-गिरते बालकको दूरसे देखकर असहाया माँ पुकार रही हो '—कुऑ—कुऑ!'

बकरी शायद इसपर चौकड़ी भूल गई। या कहो, होनहार ही आ मड़लाई। मेरे देखते-देखते उसके पैर खिसके, वह सँभली, लड़खड़ाई और नीचे आ गिरी। नीचे—यानी अतलमे!

नादिरा इसपर हिरनकी चालसे एक-साथ भाग छूटी। मै चिल्लाया—'नादिरा! नादिरा!!' और वह पत्थरोंको फलॉगती भागी जा रही थी, भागी जा रही थी। क्या उसे नही मालूम कि शामके बाद रात होती है और कि रात अँधेरी भयावनी होती है? वह और ऊपरकी तरफ जा रही थी, और ऊपरकी तरफ। ऊपर जहाँ आसमान है, निर्जनता है, खतरा है और स्वच्छता है। नीचे तो देखनी भी नहीं थी, नीचे जहाँ गाँव है, आदमी हैं और आसरा है। ऊपर, जहाँ पहाड़ उठते उठते रुक गया है, और जहाँसे बकरीने गिरकर मौत पाई है।

उस लड़कीके माँ है ? बाप है ? बहन है ? भाई है ? उसके कोई शादी करने-वाला है ? क्या वह आदमीको समझती है और क्या आदमी उसे समझता है ? या उसके दिलके दूधको बकरियाँ ही पीयेगी, वे ही समझेगी ? क्या किसी घरकी वह सदस्या है ? किसी माँकी वह बेटी है ? क्या वे लोग अठारह वर्षकी उम्र तक इसकी यही उपयोगिता पाते हैं कि ऊँचे-नीचे पहाडोमे यह बकरी चराती फिरे ?

मैंने कहा—हृदयनाथ, मालूम करना चाहिए, जो बकरीके साथ इतना निजीय है, वह इस आदमीकी दुनियामे किस जगह है ? आदमीकी दुनियाने अपने साथ उसका क्या सम्बन्ध बनने दिया है ?

हृदयनाथने कहा—छोडो छोड़ो । क्या वह ऐसी खूबसूरत थी ?

मैंने माना, हाँ, एक तरहसे खूबसूरत भी थी ।

हृदयनाथ बोला—तुम पाओ, तो उसे ले लो ?

मैंने कहा—मै ले लूँ ? क्यो, इसमे लेनेकी क्या बात है ?

" लेनेकी कुछ भी बात नही है, तो परेशानीका सबब ? "

छिः छि, आदमीमे कैसी तुच्छता भरी है । मैने कहा—

" सबब होगा जो होगा । तुम उठो, आओ चले । देखे, उसका कुछ पता चलता है, या नही । "

मेरी तबीयत थी कि मैं जाऊँ, देखूँ, पहाडपरसे बकरीका क्या बना है और नादिरा क्या करती है ? लेकिन पहाडसे मेरी घनिष्ठ आत्मीयता कब हो सकी है ? अपनी मर्म-कथा वह अनात्मीय पहाड़ मेरे हाथोमे कैसे पकडा देगा ? उसके राह-रास्तोका मुझे बिल्कुल ही पता नही है । तब मैंने इसीपर सतोष माना कि हृदयनाथको साथ लेकर गाँवमे उसकी कुछ खोज-खबर लूँ ।

पता लगाते-लगाते यह लगा कि वह अपने एक दूरके चाचाके यहाँ रहती है । बाप उसका मर गया है और माँने कोई दूसरा घर बसाया है । माँ अपनी जातिमे बहुत सुन्दरी गिनी जाती थी । उसकी तबीयत निराली थी । प्रेममें स्वच्छन्द, कर्त्तव्यमे तत्पर, सकटमे निर्भय और तकरारमे तेज थी । यह लड़की नादिरा, अविवाहित-प्रेमका फल थी । पर वह उसे बहुत प्यारी थी । उसकी माँने उसे अपने पास तब तक रखा, जब तक पतिपर उसका पूरा काबू चला ।

उसने लड़कीको शिक्षा दी कि वह स्वच्छन्द रहे। विपद् सह ले; पर स्वच्छन्दता न खोये। दिन आया कि यह लडकी नादिरा उसके हाथोंसे छूटी और इस गाँवमे अपने चाचाकी शरणमे आ पडी। तबसे वह बढ़ रही है और बकरी चरा रही है। आदमियोंकी दुर्दुराहट उसे मिली है। एक ओर माँका प्रेम और दूसरी ओर सबकी दुत्कार, इतनेहीके द्वारा मनुज प्राणीको वह जितना समझती है, समझती है। और अधिक आदमीको वह नही समझती। घरमें टहलका धन्धा करना पडता है। इतनेपर भी आदमीके सम्पर्कमे आनेके कारण उसकी भाषा वह समझ लेती है। नही तो आदमी उसके लिए जन्तु है, बकरी आदमी है।

मै उसके चाचाके घर पहुँचा। सिरपर सोला हैट था। बिरजिस थी, जिसपर फुल-बूट कसा था, पीछे राइफल लिए आदमी आता था और मेरे एक तरफ़ बाइनोकुलर लटका था, दूसरी तरफ कैमरा था। मैंने पहुँचकर उसके चाचाको बिल्कुल डरा दिया। छोटा कच्चा-सा घर था, जो आदमियोसे ज्यादा मुर्गियों-का था। वे ही इधर-उधर चारों ओर बिखरी फिर रही थी। मैने उससे अडोके मोल-तोलसे बात शुरू की। कहा—बकरियाँ नही है ?

मालूम हुआ, हैं।

तो कहाँ हैं ? चरने गई हैं ? कौन ले गया ?

पड़ोसका एक लडका ले गया है।

वही ले जाता है ?

नहीं, एक लड़की है। नौकर ही समझिए—वह भी ले जाती है।

अब वह नहीं है, कहाँ गई है ?

मालूम नही, दो रोज़से नहीं लौटी, एक बकरी भी कम है। लड़की बडी बदमाश है सा॰ब। (गालीके साथ) कहीं चली गई होगी। सा॰ब, उसे जवानीका जोम है। रोज मार-पीट लेते हैं। उसे अकल नही आती।

मैंने जोरसे कहा—लडकी तुम्हारी रिश्तेमें कुछ होती है ?

रिश्ता ! हमारा उससे रिश्ता होगा ! वह हरामजादी है।

मैंने कहा—दो रोजसे वह तुम्हारे घर नहीं आई। तुमने उसे तलाश करनेके लिए क्या किया ?

(गालीके साथ) आना होगा, आप आकर मरेगी।

मैने कहा—तुमको यह नहीं सूझता कि सर्दी-पालेमे वह पडी हो सकती है। और क्या पता क्या हालत हो? तुम क्या जानते हो कि वह मरी नही है?

उसी समय उस आदमीकी बीबी प्रशस्त धड लिए सहनमे आई और दो-एक मुर्गीके बच्चोको गर्दनसे दबोचकर अन्दर ले गई। वे बच्चे की-की-की प्रोटेस्ट करते हुए उन चौडे हाथोंकी मुट्ठियोमे दबुचकर रह गए।

नादिराके चाचाने जो कहा, उसका आशय यह बनता था कि वह लड़की मरे, तो जहमत दूर हो। पर वह कही मरनेवाली है? किसी यारके घर होगी।

मैं सोचता रह गया। नादिरामे मेरी क्या दिलबस्तगी थी, मुझे समझ न आता था। पर मैं यह जानता था कि नादिरा वैसी निर्दोष है, जैसे कोई शिशु-या पशु ही हो सकता है। उसकी निर्दोषता, किन्तु मनुष्यके निकट कभी प्रमाणित और प्रतिष्ठित नहीं हो सकेगी। तब मै उसके हितमे क्या कर सकता था? ..क्या कर सकता था? मेरे मनमे एक बार उठा कि क्या मैंने विवाह न करनेकी कसम खाई है? लेकिन यह विचार मैने धकेलकर अपनेसे परे हटा दिया। मैं सोचता रहा और अन्तमे मैने पाया, बिना सोचे-समझे मै उस आदमीसे पूँछ रहा हूँ—उसकी उम्र कितनी है?

करीब सत्रह वर्ष उसने उम्र बताई।

मैने दस रुपएका नोट निकालकर उसकी तरफ बढाया, कहा—उसको ढूँढ़कर ला सकते हो, तो और भी इनाम मिलेगा!

मैने देखा, इसपर वह गर्म होना चाहता है। वह मेरी तरफ निगाह बाँधकर देख रहा है। मैने मुस्कराकर एक नोट और निकाल दिया। वह शायद तौल रहा था कि इन्हे फेकना ठीक है या जेबमे रखना ठीक है! मैने एक और भी नोट उसे दे दिया। वह मेरी तरफ देखता ही रहा। मै बिल्कुल नही जानता था कि मैं क्या कर रहा हूँ। लेकिन उस आदमीको क्रम-क्रमसे रुपएके महत्त्वकी पहिचानकी ओर बढ़ते देखनेमें मुझे स्वाद आ रहा था। मामूली हालतोमे ठीक ही बात उसके लिए ठीक बात है, उचित ही उचित है। रुपएका बोझ, हाँ, किसी खास तरफ हो जाय, तब बेशक उचित-अनुचितके मापमे फेर-फार हो जाता है।

मेरे दिये तीस रुपएके नोट हाथमे थामकर उसने कहा—बहुत अच्छा हुजूर!

मैने कहा—और भी इनाम मिलेगा।

नादिरा मिल गई। वह पहाड़ी जड़ी-बूटीकी मददसे मरती-मरती बकरीको मौतके मुँहसे खीच लानेके यत्नमे संलग्न थी। मै नहीं जानता कि उसे पता होगा कि दिनका दिन निकल गया है, रातकी रात निकल गई है. कि उसने खाया नहीं है और यह कि जहाँ है वह घोर जगल है। हो भी सकता है कि उस बेवकूफको यह पता न हो।

बकरी मरी नहीं, पर जिई भी नही। जब खोज लगाकर उसका चाचा जैसे-तैसे वहाँ पहुँच सका और बहुतसे प्रेमके सम्बोधन खर्च करके उसे घर ले चलनेका आग्रही हो गया, तब बकरीको साथ लेकर नादिरा साथ-साथ चल दी। दूसरे रोज बकरी मर गई और नादिरा जैसे मतिशून्य हो गई।

एक दिन साढे आठ-नौका रातका वक्त होगा कि देखता हूँ—झूठे गोटेसे टॅका नीले रगका सलवार और रगीनसी ओढ़नी ओढ़े नादिरा मेरे डेरेमें आकर खडी हो गई है। जैसे इसी तरह वह ऊपरसे लटकाकर यहाँ छोड दी गई है। नही जानती, क्या उससे चाहा जा रहा है और क्या उसे करना है। चचलता और स्वच्छन्दता उसे एकदम छोड़ गई है और वह किकर्त्तव्य-विमूढ़ है।

मैने कहा—नादिरा!

उसने न मेरी आँखोंके सामने हाथ हिलाये, न पश्तो बोली, न हँसी। उसके गोटेके कपड़े देखकर मेरे मनमे करुणा उठी। यह कपडे, जो शायद मॅगनू हो, शायद घराऊ हो, उसपर ऐसे धरे हैं जैसे मूरतपर उढा रक्खे हो और उनके नीचे वह भी अडिग, अचल, बनी मूरत-सी खड़ी है!

मैने कहा—नादिरा!

वह चुप।

मेरे मनमे करुणा ही करुणा भर गई। इस वन-कन्यापर यह झूठा बाना कैसा? इसके नीचे एक क्षण भी क्या वह वैसी हरियाली, प्रफुल्ल रह सकेगी?

मैने कहा—नादिरा, क्या है?

चुप।

मैने कहा—'जाओ, घरपर कुछ काम करना। हम लोग दो-एक रोजमे चले जायेगे।' कहनेके साथ मैने हँसकर एक अँगुली अपने सीनेपर रखी,

एक दूरीकी तरफ इशारा किया और फिर उसी अँगुलीको नादिराके सीनेकी ओर उठाया, साथ कहा भी—' हम जा रहे हैं दूर। दिलमे हमें रखोगी न?' और मै हँसा।

वह चुप।

उस मूक प्राणीकी उस आबद्ध, अलकृत और सधाई हुई निष्प्राणा हालतको देखकर मेरा मन आप-ही-आप अतिशय कातर, भीना हो आया।

मैंने अपने एक विश्वस्त नौकरके साथ उसे घर भिजवा दिया।

अगले रोज दिनमे जब मै उससे अन्तिम विदा लेने गया, तो मुझे मालूम हुआ वह खाटमे पड़ी है। उसके सख्त चोट आई है। बात यह थी कि कल उसके चाचाने बेहद उसे पीटा था। उसके वापिस घर पहुँचते ही चाचाने माँगा था—'ला, क्या लाई!'

वह तअज्जुबमे पड़कर चुप रह गई थी।

चाचा ऐसा आदमी न था कि उसकी भतीजी नोट-के-नोट लाए और चाचा बहकाएमे आ जाए और रुपए वसूल न कर ले। भतीजीकी कमाईके रुपए पानेके लिए उसने भतीजीको मारते-मारते बेदम कर दिया। शायद मौतके आजानेसे रुपए मिलनेकी सम्भावना ही एकदम समाप्त हो जाती थी, इस कारण मारना अगले दिनपर स्थगित कर दिया गया हो।

उस समय मुझे कुछ नहीं सूझा। मैं भीतर घुस गया। झकोली चारपाईपर ढेर वह नादिरा पड़ी थी। कई जगह सूजन थी, कई जगह घाव थे। उसने मेरी ओर आँखे करके देखा। वे आँखे हिरनकी आँखे थीं। उनमे न अभियोग था, न दर्द। जैसे उसे न अपेक्षा है, न उसके लिए कुछ अनपेक्षित है।

मैने कहा—नादिरा!

शायद मेरे सम्बोधनके स्वरने उसे छुआ।

मैंने और उसके समीप झुककर कहा—नादिरा!

उसने दोनो हाथोमे मेरा हाथ ले लिया। उसकी आँखे डबडबा आई। उसकी देह भी उस समय जैसे एक साथ कटकित हो आई थी। भरे कटोरेसी अपनी हिरनीकी आँखे मुझपर लगाकर वह जाने किस भावसे मुझे देख उठी। उस समय मेरे शरीरकी शिरा शिराने जैसे साक्ष्य दी—' अरे, यह तो स्त्री है! अरे, यह प्रणयिनी कब नहीं है?'

मै—

तभी मैने लौटकर देखा, उस चाचाके चेहरेपर दुर्लक्ष्य, दुर्निवार कोई उद्धत विचार फैलता जा रहा है और वह धीरे-धीरे बढ़ रहा है।

मै अपना हाथ छुडाऊँ कि दोनो हाथोसे उसे दाबकर नादिराने कपोतीकी कूजन-सी करके कहा—बाबू ! बाबू !

मै देख सका, उस बढते आते हुए चाचाके हाथमे पीछे छुरा है।

मैने एक साथ बढकर बूटकी एक ठोकर उसे दी। वह लड़खडा आया। जेबसे सौ रुपएका एक नोट निकालकर उसकी तरफ फेंकते हुए कहा—'ले ! ले !' और मै चला आया।

मै चला आया और अब तक भी मैं नही जानता हूँ कि नादिराको कभी किसीने स्त्री बननेका अवसर दिया कि नहीं। सोचता हूँ कि क्या उसका मातृत्व अपनी सार्थकताके लिए गोदमे मनुज-शिशु भी कभी पाएगा, या कि वह सम्पूर्ण भावसे बकरी जैसे प्राणियोके प्रति ही विसर्जित होता रहेगा?

क्या हो ?
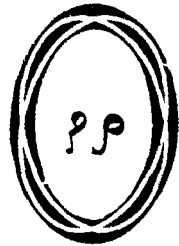
जब दिनकरको फाँसीकी सजा सुनाई गई, तब उसने जजकी ओर मुस्कराकर कहा—थैंक यू। लेकिन शामको अपनी अकेली कोठरीमे सोचने लगा कि इसमे हँसकर 'थैंक यू' कहनेकी बात नहीं है। कोई यदि यह निर्णय दे देता है कि कुछ दिनोके बाद मुझे जीना नही होगा, तब क्या उस निर्णायकका उस निर्णयके लिए कृतज्ञ होना चाहिए ?.. क्या मुझमे कृतज्ञता है ? क्या मुझमे खुशी है ? तब मैने क्यो यह झूठा आचरण किया कि मैने जजको धन्यवाद दिया ? धन्यवाद मुझमे न था।.. लेकिन क्या यह है कि रोऊँ नही, इसलिए मैं हँसा ? मैं समझता हूँ, यह भी ठीक बात नहीं है। रोनेकी भी कोई जरूरत इस समय मेरे भीतर नही है। यह ठीक है कि निर्णयमे मात्र इतना ही नहीं है कि अमुक तिथि तक मै जीऊँ। जीवन उस तिथि तक चुक जाय, और फिर मौत सरकती हुई आ जाय, व्यवस्था इतनी ही नही है। व्यवस्था यह भी है कि मैं मारा जाऊँ, गलेमे फन्दा अटकाकर मेरी जान मुझमेसे खीचकर तोड़ ली जाय। यह बात, अगर मैं कहता हूँ सुखकी है, तो झूठ कहता हूँ। यह सुखकी बात हो सकती थी कि अमुक क्षणके बाद मै पाऊँ—मैं नही जी रहा हूँ। लेकिन जीते-जी मार दिया जाऊँ, (और फाँसी और क्या है ? और हत्या भी और क्या है ?) यह सुखकर बात नही है। इसको तो सामने देखकर वितृष्णा ही होती है। या हाँ, उन्मत्त, अन्धा आकर्षण हो सकता है। किन्तु मुझे आकर्षण नहीं है। मुझे वह समूची वस्तु कुछ मैली मालूम होती है, अपावन, अशुचि, असुन्दर। मैं उस ओर देखना नहीं चाहता हूँ।.. तो क्या जी फिर रोनेको आता है ? नहीं, मेरे भीतर अभीतक इस फाँसीकी बातको लेकर तनिक भी रोना

नहीं आ सका है। मैंने कुछ किया। मै जानता हूँ, मैने वह किया। वह करते समय भी मै जानता था कि उसके अन्तमें यही चीज हो सकती है, फॉसी !, जिसको मैं अब भी ठीक नहीं जानता कि क्या है। इस फॉसीके परिणामके व्यापक भावके इतने भागको मै जानता था कि जिनसे मै बोलता हूँ, मिलता हूँ, जिनसे प्रेम लेता और जिनको प्रेम देता हूँ, जिनके भीतर अपनेको फैलाकर और जिन्हे अपने भीतर धारण करके मेरा जीवन सम्भव बना चलता है; वे सब मेरे लिए न रहेगे, मै उनके लिए न रहूँगा।...मै उनके लिए न रहूँगा! तब क्या कोई होगा जिसके लिए रहूँगा? नही-नही, बिल्कुल तिरोहित, अशेष, असत् हो जाऊँगा। विश्वके चेतना-पिण्डमे कोई मेरे व्यक्तित्वके अस्तित्वका भास या विधाताके बही-खातेमे कोई हिसाब शेष रहे भी, तो उस शेष रहनेको किस तरहकी गिनतीमें रक्खा जा सकता है? इस सर्वतोभावेन तिरोभाव होनेकी सभावनाको मैंने तब भी सामने रक्खा। अब भी सामने वही है। इस लिए घबराहट मुझमें भीतरसे कोई नही होती।...मात्र इतना ही है कि फाँसी स्त्रीलिंग पाकर भी सुस्वरूपा नही है। आकार प्रकारमें असुन्दर वस्तु है। इससे उस ओर देखना कुछ प्रीति-वर्धक नही होता।

किन्तु अब तक, जीवनके इस निश्चित छोरपर आ लगने तक, मैंने अपनेही-को माना है। जो समझा है, किया है। उसके करनेसे भी नही बचा हूँ, उसके परिणामसे भी नहीं बचा हूँ। मुझे अपनेमें खेद नहीं है, पर अब आकर मुझे यह बोध हो रहा है कि क्या मैं बिल्कुल अपना ही था? जिन्होंने मेरे साथ आशायें और प्रत्याशायें बाँधीं, भविष्य बाँधा, प्रेम बाँधा, अपना जीवन ही बाँध लिया, जो मेरी आसको लेकर जीते थे और जिनकी आकाक्षायें मेरी ओर ही ऑख बिछाये बैठी रहती थी, उनका भी तो मुझमे कुछ था। उन लोगोको मैंने अपना क्या दिया? जिसे हक समझा, आदर्श समझा, उसीका सब-का-सब क्या मै न हो रहा? किन्तु इन लोगोको क्या मेरा कोई भाग प्राप्य नही था? यदि मैंने अपनेको उनके प्रति विसर्जित नही किया और जीवनके धागेको बीचसे ही काटकर झट उसके परले किनारे आन बैठा, तो क्या मैने अपना कर्म पूरा किया? क्या उचित किया?

माना, देश है। माना, आदर्श है। माना, भारत माता भी है। और मान लिया, गुलामीकी बेड़ियोंको तोड़ना भी कुछ है। लेकिन अपनी सगी माँ

अपनी क्या कुछ नहीं है ? बाप कुछ नही है ? भाई कुछ नहीं है ? और वह बेचारी अबोधा कच्ची हरियाली-सी पत्नी कुछ नही है ?

मैंने कहा और मैं कहता हूँ, मुझे खेद नही है। पछतावे, जो पछतावे। मै अकप हूँ। लौटना मै नही चाहता। लौटने जैसी चीज साथ लेकर मै नही चलता। फाँसी आती है, तो आती रहे। मुझे उस तरफसे बेफिकरी है। मुझे क्षणके लिए भी माँगना नही है कि—'अरी तू ठहर। मुझे इतना यह और कर लेने दे।' मेरे मनमे तनिक भी जिज्ञासा नही है कि 'अरी क्यो, तू लौट नही सकती ?' मै अपने भाग्यसे कोई सवाल-जवाब नही करना चाहता। मै चुनौती देकर चलता हूँ। मै कहता हूँ, मै यह हूँ। अब भविष्य अपना जाने कि उसे क्या होना है। भविष्यका जो भी विधाता हो, मुझे उसके समक्ष कोई प्रार्थना नहीं है। मै बस अपने वर्तमानका विधाता हुआ चलता हूँ। आगेसे मुझे मतलब नही है। आगे फाँसी है कि स्वर्ग, जाननेका मेरा कोई सरोकार नही है। इसलिए, मै कहता हूँ कि फाँसीकी कोठरीमे हूँ, इसमे कोई गलत बात मै नही पाता। मै इतना जानता हूँ कि, जो समझता हूँ, करता हूँ। जो पुरस्कार आता है, वह आ जाय। जो दण्ड आता है, वह आ जाय। मुझे यह भी जाननेसे क्या वास्ता कि यह दड है अथवा पुरस्कार ? कि विधना रुष्ट है कि तुष्ट ?

लेकिन, बात लौटनेकी नही है। जब कि कहता हूँ कि पत्नीके, माताके, पिताके, भाईके प्रति मैंने अपना दान नही किया, तो अभिप्राय यह है कि मै किसीके लिए खपा नही, विसर्जित नही हुआ। मैंने अपनेको बचाया। या हो सकता है, मैंने अपनेको वारा नही, खोया। राष्ट्रपर मैंने अपनेको दे डाला; पर राष्ट्र क्या है ? आदर्शपर मैंने अपनेको वारा है. पर, वह आदर्श क्या है ? वह राष्ट्र और वह आदर्श क्या इतनी तुच्छ वस्तुये हैं कि पत्नीको उससे बाहर ठहरना होगा ? माता, पिता, भाई—यह सब उसकी परिधिमे बाहर रहेंगे ? क्या उसकी परिधि इतनी सँकरी है ?

ठहरो, इन बातोसे कुछ नही उठना है। लौटना व्यर्थ है, दुष्कर है, मुझे अमान्य है। तब जो मैंने नही किया, वह क्यो सोचता हूँ ? बहुत कुछ है, जो मै करता, पर नही किया। मनमे अरमान क्या इस लिए हैं कि वे पूरे हो ? कल्पना क्या इसलिए है कि वह सब सिद्ध हो ? हम आसमान इस लिए नहीं देखते कि आसमान हम बन ही जायेगे, लेकिन आदमीकी हसरत-अरमान, उच्चाकाँक्षाये इसलिए भी नही हैं कि वे आदमीको पशु बनाये, पस्त बनाये।

वे पूरी नहीं होगी, ठीक, पर अधूरी रहनेके मानी यह नही कि वे हमें अवि-श्वासी पाये, विफलता और अकृत-कार्यताके बोझसे दबे पाये।

...पत्नीकी अवस्था बीस वर्षकी है। पन्द्रह वर्षकी थी, जब मै अमरीका गया। अठारह वर्षकी थी, जब लौटा। मुझे देखने न पाई थी और प्रतीक्षामे थी, कि कब मै उसकी बनाई चाय पीने भीतर पहुँचता हूँ कि पकड़ा गया। अब वह बीस वर्षकी है और इक्कीस वर्षकी न हो पाएगी कि मै फाँसी पाकर समाप्त हो चुकूँगा!...

वह कौन है? मेरी पत्नी है। पत्नी क्या? पत्नी वह, जिसके साथ विवाह हुआ हो। विवाह! यह विवाह अद्‌भुत तत्त्व है। मनुष्यने उससे बढकर और क्या रचा है? एक अनजान कन्या दूसरे बिलकुल अनजान कुमारके साथ कुछ ही क्षणोंमे, जिस महा-अद्भुत मन्त्रके उच्चारद्वारा आपसमे ऐसे हो जाते हैं कि वे किसी भी ओरसे दो शेष न रहे, अभिन्न-जीवन हो जाये, उसको विवाह कहते हैं। उस विवाहके अर्थ हैं—मरेंगे, तो दोनो मरेंगे. जियेंगे, तो दोनो जियेंगे, *सुख-दुःख, जीवन-मरण, हानि-लाभ, यश-अपयश, सबमे दोनो एकस सहभागी* होंगे।.. विवाह हुआ और वह कठिनाईमे पन्द्रह वर्षकी कन्या मुझमे मिला दी गई। . अब मै फाँसीकी कोठरीमे हूँ, वह घरमे है।...

मनुष्यने विवाह सिरजा। माना, मनुष्य और मनुष्यके बीचके सम्बन्धकी दृष्टिसे विवाहसे सुन्दरतर युग-युगमे मनुष्यने दूसरी कृति नही प्रस्तुत की, किन्तु विवाहका रक्षण जहाँ न हो सके, वहाँ? जो न कर सके, उसके लिए? उस स्थल-पर और उस व्यक्तिके लिए भी क्या विवाह टिकेगा? क्या ऐसे समय अरक्षित-का रक्षा और वंचितको हक पानेका कोई यत्न नही हो सकेगा?

मै मरता हूँ किन्तु क्या उस अबोधा, किशोरिकाका पत्नित्व निष्ठुर पतित्वकी प्रतीक्षा करते हुए चिरकाल तक, अस्तकाल तक, परकाल तक बैठा रहेगा? मै अपने कामोंके लिए मरा, यह मेरे कामका पुरस्कार है, या चाहे उसका दण्ड है। किन्तु, जिसका अपने जीवनके साथ तो आ मिलने दिया, लेकिन जो मेरी उन पुरस्करणीय अथवा दण्डनीय करतूतोंके लिए तनिक भी उत्तर-दाता नही है, वह बेचारी भी क्या उस आँचसे झुलसे? मै एक शब्दमे मान लूँ कि विवाहकी रक्षा मुझसे नही हुई। विवाहके नेमका निभाव मैने नही किया। मै अपनेको उससे तुड़ाकर अब यहाँ मृत्युके तटपर फाँसीके मल्लाहोंकी प्रतीक्षा करता बैठा हूँ। तब क्या वह विवाह उस नवीनाको वंचिता, उस फेरोंकी गुनहगारको अरक्षणीया बना रखनेके लिए ही टिका रहेगा?

लेकिन विवाह भी क्या चीज है ? विवाहने मुझे पति बना दिया। क्या पतिका यह अर्थ था कि मै पत्नीके प्रति एक दिनके लिए भी प्राप्य न बनूँ और बहुत जल्दी अपनी मौतको खोज लेकर उस नवोढाके लिए चिर-अप्राप्य और चिर-शोध्य बन जाऊँ ? किन्तु विवाह ही तो है कि पत्नीके लिए सदा मैं ही आराध्य रहूँगा। और जब सदेह 'मुझ'को सेवाके लिए वह नही पा सकेगी, तब विगत-देह रूपमे ही उसे अपनी पूजा मुझे भेजते रहनी होगी।

जिसने मनकी भक्ति और स्नेहको इस प्रकार एकनिष्ठाके साथ अमुक एक ध्येयकी ओर उन्मुख बन उमड़ते रहने और झरते रहनेका उपाय प्रस्तुत कर दिया, वह मनुष्यकी अनुपम कृति है—विवाह। अब यहाँ इस पार आकर मै उस सस्थाका महत्त्व देखता हूँ। वह सस्था चाहे समाजकी व्यावहारिक आवश्यकतामेंसे ही निकली हो, पर वह वर्धिष्णु भावसे मनुष्यकी परोन्मुख वृत्तियोंको अपनेमे धारण करती रही है।.. किन्तु इसी विवाह-सस्थाका परिणाम अत्याचार क्यों हो ?

कुलवन्त पच्चीस वर्षका तो होगा। वह सुषमाकी तरफसे किनारा करता भी नहीं दीखता। इस ओर वह अनुग्रहार्थी भी हो, तो मुझे विस्मय न होगा। आखिर तो जवान है। उसे कोई आपत्ति नही होनी चाहिए। ऊपरी सकोच ? —सो मै समझा-बुझा दूँगा।

लेकिन सुषमाको राह कैसे लाना होगा ? वह क्या मेरी बात भी सुनेगी ? सुने भी, तो क्या तनिक भी अपने मनपर उसे ठहरने देगी ? नही–नही, वह नहीं मानेगी। वह शिक्षिता नही है। बेचारी सतियोंकी कहानियोंको पकड़ बैठी है। वह किस तरह मान सकेगी ?

पर मै फॉसीके प्रति कितना ही निस्सग हूँ, मेरी समाप्तिका अर्थ सदाके लिए सुषमाका सुहाग पुँछ जाना यदि होगा, तो उस मौतमे मुझ कलक रहेगी ही।... .. नही, वह नही विधवा होगी। मै मरूँगा, किन्तु मै उसे विधवा नही होने दूँगा।.

अगले रोज जब माता-पिता और उसके भाई उससे मिलने आए, तब लम्बा घूँघट काढ़े हुए, सिमटी सिमटाई उसकी पत्नी भी आई। सब लोग बाते करने लगे और सुषमा घूँघटमे बद, पीछे, एक ओर चुपचाप बैठी रही।

ऐसे समय जब कि विदा अन्तिम होती है, तब कहनेको पास कोई बात नही मालूम होती। जीवनके सब व्यापार मानो उस महाघटनाके सामने अति तुच्छ हो पडते हैं। वही बात यहाँ थी। सबके मन उस समय ऐसे पककर भरे

हुए थे कि मुँह किसीका खुलता ही न था। उस नीरवताके त्रासको तोड़ते हुए अतमे दिनकरने ही अपनी ओरसे बढ़कर पूछा—हिरिया, अब कैसी है, बाबूजी?...और क्यो कुलवन्त, कैसे हो?

पिताने कहा—उसने पछाड़ दिया है।

और कुलवन्तने कुछ गुन-गुन किया।

बात फिर खत्म होती-सी मालूम हुई। सबके मनमे इतना कुछ था कि किस ओरसे उसमेसे किस तारको छेड़कर मनके व्यथा-पिण्डको छिलने दे, यह किसीको सूझ न पड़ता था।

इतनेमें दिनकरकी माँने सुषमाके पास जाकर भराए कठसे कहा—बेटी, अब बोल तो ले। अब काहेकी लाज!

सुषमा वहीं जमी रह गई। कुछ भी बोलने-बतलाने पतिके पास न जा सकी।

उस समय सबके कठ भर आए और सब सयत्न हुए कि उठते हुए आँसू वे भीतर ही पी जाँय, कही वे ढरकें नही।

उस समय पिता मुख ऊपर उठाकर निरुद्देश्य भावसे बोल उठे—'ओह, तीन बज गए!' और रूमाल निकालकर बेमालूम तौरपर आँख और नाकका पानी उन्होने पोछ लिया और ऊपरकी ही ओर शून्य मुद्रामे ताकते रह गए।

तभी खुले तौरपर काँपते कठसे माँने सुषमाका हाथ पकड़कर उठाते हुए कहा—'बेटा, लाज-शरम अब कै घड़ीकी है। तेरा भाग्य अब फूटा ही रक्खा है। आखिरी घड़ी मिल-बोल तो ले।' फिर भी जब सुषमा बिलकुल नहीं उठ सकी, तो माँने बाँह पकड़कर उसे उठाया और दिनकरके पास ला बिठाया। सुषमा वहाँ आकर सिमटती हुई ही बैठ गई।

माँने दिनकरसे कहा—बेटा, इस नन्हीको तो समझा। यह तो घरमे भी किसीसे नहीं बोलती है।

दिनकर लौटना अब भी नहीं चाहता है। वह कर्रा ही बना है, पर मन जाने उसका कैसा-कैसा होने लगा।

उसने हँसकर कहा—पगली है।

माँने कहा—बेटा, इसपर तो तुझे तरस करना था।

यह सुनकर पिता बेहद अवश, कातर हो पड़े। बोले—'कुछ बात नहीं,' 'कुछ बात नहीं,' और अवगुण्ठनावृत सुषमाके सिरपर अपने बड़े चौड़े दाये हाथको ला रखा। उसे सिरपर फेरते हुए कहा—बेटा, हमारा बीरन बहादुर है, चोर-डाकू नही है। देखो, कितने उसकी जय बोलते हैं। वह स्वर्गको जा रहा

है। ऐसे लाल क्या सबके होते हैं? धीरज रख, मेरे बेटे, मेरे बटुए... । यह कहते-कहते पिताके आँसू तार-तार झरने लगे। उस समय किसीके भी आँसू रोके न रुके। पर, अवगुण्ठनके भीतरकी उन आँखोमे क्या हुआ, यह किसीको पता न चल सका।

थोड़ी देरमे दिनकरने पिताजीको अलग ले जाकर कहा—पिताजी, मेरी एक साध है। फाँसीके दिनसे पहले पहले सुषमा और कुलवन्तका विवाह कर दीजिए।

पिताने कहा—क्या कहते हो बेटा? सुषमाको तुम नही जानते।

दिनकरने कहा—पिताजी, मुझे कुछ भी और इच्छा नहीं है। यह नही करेंगे, तो मेरी गति नही होगी।

पिताने कहा—सुषमाको तुम समझा दो बेटा, तो हमे तो खुशी ही होगी।

थोड़ी देरमे माता-पिता आदिको कुछ काम निकल आया और एकान्त पाकर दिनकरने पत्नीसे कहा—सुषमा, मेरी एक बात सुन सकती हो?...

जरूर सुन लेगी। सुनाओ, वह चुप है।

".. मैने तुम्हे दुःख-ही-दुःख दिया। .."

वह चुप है।

"मै कैसे कहूँ, तुम मेरी बात मानो लेकिन मरतेकी एक बात यो भी मान लेते है। मैं अब मौतसे कितनी दूर हूँ?—"

सुषमा चुप ही है।

"मै सुषमा, यह जानता हुआ मरना चाहता हूँ—"

अरे दिनकर, ऐसी बात धीमी चालसे नही, झटपट कह डालो कि एक ही घूँटमे वह गटक ली जाय। कैसी कड़वी बात कह रहे हो, सो अटको नही, क्योकि सुषमा चुप है और उसके भीतर मन भी है।

"यह जानता हुआ मरना चाहता हूँ कि मै अकेला मर रहा हूँ—अकेला।—"

अरे, कह जाओ न, कह जाओ। सुषमा चुप है।

"अकेला। यह पक्का ज्ञान लेकर मरना चाहता हूँ कि मेरे मरनेसे तुम विधवा नही बनोगी। ."

चुप।

"कुलवन्तको तुम जानती हो..."

तब सुषमाने घूँघटके भीतरसे ही आहिस्तासे कहा—"मुझे तुम एक जहरकी पुड़िया दे जाओ। बस।"

दिनकर एकदम भूला-सा हो गया। उसने सुना—

"बस, मुझे और कुछ न चाहिए। मैंने तुमसे क्या माँगा है? अब यह माँगती हूँ।—"

दिनकरके भीतरसे पिण्डाकार एक घनी व्यथा उठी,—वह गलेतक भर आई—मुझे फाँसी लगनी है सुषमा। आज, कल...चाहो तो अँगुलीपै दिन गिना दूँ। ऐसे समय मुझसे तुम यही कह सकती हो, मेरी सुषमा?

दिनकरकी वाणीसे सुषमा भीतर-ही-भीतर काँप गई—मेरे राजा, तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ। पर, राजा मेरे, तुम मुझे कैसी समझते हो?

दिनकरको इसपर एक क्षण उत्तर नहीं सूझा। रुककर उसने कहा—कैसी समझता हूँ? कैसी समझता हूँ? ऐसी समझता हूँ कि जहरका प्याला दूँगा, उसको भी मुझे देखते-देखते खुशीसे तुम पीओगी।

सुषमाने कहा—यही तुम कहते हो?

दिनकर चुप।

"यही तुम कहते हो?"

चुप।

"मेरे प्यारे, कहो, तुम मेरे राजा हो। और एक बार फिर कहो, यही तुम कहते हो।"

दिनकर अपनेमें छोटे-में-छोटा ही होता गया और मानो सुषमाके स्वरने किसी ओर उसके लिए मार्ग नहीं छोड़ा। उसने कहा—सुषमा, मैं पति हूँ न, तब यही कहता हूँ।

धन्य, सुषमाने दिनकरके चरण छुए। घूँघट हट गया, बोली—भगवान् ऊपर सब देखता है। पर मेरे लिए तो तुम हो। भगवान् मेरे लिए और कौन है, शास्तर और कौनसा है। तुम्ही तो सब कुछ हो। मेरे पास और कोई धरम-करम नहीं है, मेरे मालिक।

और घूँघट हटाकर उसने अच्छी तरह जान लिया कि इनके जीते-जी कुल-वन्तसे वह विवाह कर लेगी। हाँ, जीते-जी। अरे, जहरके प्यालेसे भी वह अब मुँह किस भाँति मोड़ेगी? हँसकर पी डालेगी ही नहीं, स्वादसे जिन्दगी भर घूँट-घूँट पीती रहेगी।

समाप्त

जैनेन्द्रजीकी रचनाओंपर सम्मतियाँ

परख (उपन्यास)

आचार्य द्विवेदीजी—" सच जानिए 'परख'में विधवा-विषयक आक्रोश पढ़कर मेरा हृदय द्रवीभूत हो गया। लेखकको मानवी स्वभावका अच्छा ज्ञान मालूम होता है। उपन्यासो और कहानियोमे यही गुण सर्वापेक्षा अधिक स्पृहणीय होता भी है।" १०।१०।३०

मुंशी प्रेमचन्द्रजी बी०ए०—" जैनेन्द्रजीने जो कुछ लिखा है, बहुत ही सुन्दर लिखा है। भाषा, चरित्र, चुटकियाँ सभी बातें अपने ढगकी निराली हैं। उनमें साधारणसी बातको भी कुछ इस ढगसे कहनेकी शक्ति है, जो तुरन्त आकर्षित करती है। उनकी भाषामें एक खास लोच, एक खास अंदाज है। इसके साथ ही वह उन रियलिस्टोमे नहीं हैं, जिन्हे नग्न चित्रोंमे ही आनन्द आता है। 'सुन्दर' को भी वे कभी हाथसे नहीं जाने देते। 'परख' है, तो छोटी किताब, पर हिन्दीमें एक चीज है। भाषा इतनी सजीव, शैली इतनी आकर्षक, चरित्र इतना मार्मिक कि चित्त मुग्ध हो जाता है।..."

प्रो० विश्वेश्वर, सिद्धान्तशिरोमणि—" 'परख' अभी पढ़कर समाप्त की है। उठाई है तबसे एक क्षणको भी नहीं छूटी—न नींद, न उचाट, न थकावट, कैसा आकर्षण है! कितनी मनोरंजक है! कहीं रुलाना, कहीं हँसाना और फिर कही एकदम गभीर दार्शनिक बना देना यह जैनेन्द्र बाबूकी लेखनीकी करामात है। एक जगह तो बहा—बहा इतना बहा कि खूब सिसक सिसककर रोया। 'कट्टो' का चरित्र कितना उज्ज्वल है! 'सत्य' के हृदयमें 'कट्टो' और 'गरिमा' को लेकर जो अन्तर्द्वन्द्व हुआ है, वह और घटनाओंका घात-प्रतिघात कितना सुन्दर और स्वाभाविक है। इस अन्तर्द्वन्द्व और घात-प्रतिघातको इतने सुन्दर और स्वाभाविक रूपमे निबाह ले जाना यही

गो लेखककी सफलता है। चरित्र-चित्रणके सौन्दर्यके साथ आख्यान-वस्तुकी सरसताने मिलकर पुस्तकको और ऊँचा उठा दिया है।..."

पं० अवध उपाध्याय—"परख भारतीय जीवनका एक जीता जागता चित्र है। विषय सर्वसुन्दर तथा उपादेय है। प्लाट सरल तथा मनोहर है। लेखकके सरस अनुभवोंका व्यक्तीकरण प्रशसनीय तथा अनुकरणीय है। भाषा और भावोंका मेल अपूर्व है। लेखककी अनुभूति बड़ी गहरी तथा उनकी पैठ मनुष्य-स्वभावके अन्तस्तलतक है। पढ़ते समय कई स्थानोंपर हृदय हिल जाता है, उसमे एक बड़ी भारी हलचल मच जाती है और सहृदयता आनन्दके मारे नाच उठती है।......जैनेन्द्रजीमें प्रतिभा है, कवित्व है और अमर साहित्यकी सृष्टि करनेकी शक्ति है। केवल इसी एक उपन्यासले हिन्दीमें उनका नाम अमर रहेगा...।"

वातायन (कहानियाँ)

कविवर मैथिलीशरण गुप्त—"वातायनकी जैसी मौलिक कहानियाँ प्रकाशित करनेका आपको जो श्रेय मिला वह किसी भी प्रकाशकके लिए गौरवका विषय है। यह बात नहीं कि इन कहानियोंपर कुछ कहनेकी जगह नही, परन्तु श्रीजैनेन्द्रकुमारजीके वातायनमे बैठकर जिन सरस और पवित्र भावोंके दर्शन हुए वे एक नई वेष-भूषामें। आशा है, **हिन्दी-साहित्यके कथा-क्षेत्रमें हमने रवि और शरद् बाबूको एक साथ ही पाया और अब पाया।**" ११–९–३१

बाबू सियारामशरण गुप्त—"वातायन हम लोगोंको खूब पसन्द आया है। जैनेन्द्रकुमारजीमे मुझे वह प्रतिभा दीख पडती है जिससे बहुत कुछकी आशा की जा सकती है। उनका अवतरण हिन्दी साहित्यकी एक विशिष्ट घटना है। उनकी रचनाने हिन्दीका गौरव बढ़ाया है।" २–९–३१

प्रताप—(साप्ताहिक) ता० ६–१२–३१—"मेरी दृष्टिमें अभी तक हिन्दीमें कोई भी गल्प-संग्रह इतना अच्छा नही निकला।. जिस प्रकार प्रेमचन्दजीने हिन्दीमें एक नये प्रकारकी सुन्दर महावरेदार भाषाका प्रवाह चलाकर उसमे सुन्दरता पैदा की, उसी तरह जैनेन्द्रकुमारजीने भी

भाषाकी एक नई ही शैली चलाई है। इनकी भाषामे जो लोच, जो मीठापन, जो सुन्दरता और स्वाभाविकता है, वह इन कहानियोके विषयमें इतनी सजती है कि केवल भाषाका स्वाद चखनेके लिए ही 'वातायन' को एक बार पढ़ जानेकी इच्छा होती है। भाषाके साथ ही साथ लेखकको कोमलसे कोमल भावोको मधुरसे मधुर रूपमें व्यक्त करनेकी कला प्राप्त है। इन कहानियोंकी भाषा और भाव-व्यजनाकी अपूर्वता रवीन्द्रबाबू, शरदबाबू और पाश्चात्य उपन्यासकारोंकी याद दिलाती है। भाषाकी स्वाभाविकताने इसमे और भी जान डाल दी है। लेखक मनोविज्ञानके भी अच्छे पारखी जान पड़ते हैं।... मनोभावोंका चित्रण बडी सूक्ष्मतासे किया है।... ''

कर्मवीर (साप्ताहिक) २२-८-३१—'' श्रीजैनेन्द्रकुमारजी हमारे साहित्यके क्षितिजपर चमकनेवाले नक्षत्र हैं। उनकी भाषामे ऐसी लोच और आकर्षण होते हैं कि पढ़नेवाला मुग्ध हो जाता है। बात साधारण होती है, पर जैनेन्द्रकुमारजीकी लेखनीमे ऐसा जादू है कि वही भाव सजीव और मौलिक बन जाता है। 'वातायन' मे जीवनकी एक साधारण घटना उठा ली गई है। भावना और कवित्वकी कूचीसे उसका ऐसा चित्र खींचा गया है कि पढनेवालेके मनपर वह जादूका सा असर करता है। एकके बाद एक कहानी पढ़ते जाइए, उसीमे आप समरस होते जायँगे। निस्सन्देह जैनेन्द्रकुमारजीमे प्रतिभा है, कविता है और अमर साहित्य रचनेकी शक्ति। ''

लीडर (अँग्रेजी) २१-१-३२—'' हिन्दीमे जो ऐसे थोडेसे दर असल कहानी-लेखक है जो कि कुछ मौलिक वस्तु मौलिक ढगसे देनेकी कोशिश करते हैं, उनमे बाबू जैनेन्द्रकुमारजीने हालमें ही एककी वृद्धि की है। उनकी कहानियोमे यह चमत्कार है कि वे बहुत ही सरल हिन्दीमे लिखते हैं और उनका वर्णन बिल्कुल असलियतके अनुसार होता है। प्रायः मनोविज्ञानका कोई एक प्रश्न उनकी कहानियोका कथा-वस्तु होता है और इस कारण पाठक-पर उनका अच्छा प्रभाव पडता है..। ''

राजकुमार रघुवीरसिंह एम० ए०, एल एल० बी० (सीतामऊ)—''वातायन पढ डाला। बहुत ही सुन्दर वस्तु है। पढ़कर गर्व होता है।'' १६-११-३१

मूल्य—परखका १) और वातायनका १॥)